ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal

द्विभाषी राष्ट्रसेवक

वर्ष : 72 ● अंक : 12 ● मार्च 2023

उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ और विश्वनाथ चारिआलि राष्ट्रभाषा प्रबोध विद्यालय परिचालना समिति के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित संगोष्ठी में कई हिंदी पुस्तकों का लोकार्पण किया गया। पुस्तक लोकार्पण की एक झलक।

RNI NO. ASSBIL/2009/31008 ISSN : 2321-4945

एक हृदय हो भारत जननी

द्विभाषी राष्ट्रसेवक

(भाषा, साहित्य, समाज, कला व संस्कृति विषयक शोध-पत्रिका)

UGC CARE Listed Journal

वर्ष : 72 अंक : 12 मार्च, 2023

परामर्श मंडल

श्री भारतभूषण महंत
कार्याध्यक्ष, असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति
गुवाहाटी (असम)

प्रो. आर.एस. सर्राजु
सम कुलपति, हैदराबाद विश्वविद्यालय
तेलंगाना-500046

प्रो. प्रदीप के शर्मा
प्रोफेसर, हिंदी विभाग
सिक्किम केंद्रीय विश्वविद्यालय
काजी रोड, गंगटोक, सिक्किम - 737101

डॉ. दीपक प्रकाश त्यागी
प्रोफेसर, हिंदी विभाग
दीन दयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय
गोरखपुर (उत्तर प्रदेश)

डॉ. दिलीप कुमार मेधि
प्रोफेसर, हिंदी विभाग
गौहाटी विश्वविद्यालय, गुवाहाटी (असम)

डॉ. अमूल्य चंद्र बर्मन
पूर्व अध्यक्ष, हिंदी विभाग
कॉटन विश्वविद्यालय, गुवाहाटी (असम)

डॉ. अच्युत शर्मा
पूर्व अध्यक्ष, हिंदी विभाग
गौहाटी विश्वविद्यालय, गुवाहाटी (असम)

प्रधान संपादक

डॉ. क्षीरदा कुमार शइकीया
मंत्री, असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति

संपादक

प्रो. मोहन
हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली-1

कार्यकारी संपादक

रामनाथ प्रसाद
प्रभारी साहित्य सचिव
असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति

असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गुवाहाटी

DWIBHASHI RASTRASEWAK : An UGC CARE Listed Bilingual (Hindi & Assamese) Journal, Focused on Language, Literature Society, Art and Culture, Partially funded by Central Hindi Directorate, Govt. of India and Published by Asom Rastrabhasha Prachar Samiti, Rupnagar, Guwahati-781032.

प्रकाशक :

असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति

गुवाहाटी-32

संपादकीय कार्यालय :

प्रधान संपादक, द्विभाषी राष्ट्रसेवक

असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति

सेवा मंदिर पथ, रूपनगर, गुवाहाटी-32

फोन : 9101541395, 9101541380

ई-मेल : rastrasewak51@gmail.com

मूल्य : रु. 50/- (प्रति अंक)

शब्द संयोजन : रतिकांत कलिता

आवरण पृष्ठ : इंटरनेट से साभार

असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की ओर से मंत्री डॉ. क्षीरदा कुमार शइकीया द्वारा सराइघाट फोटो टाइप्स प्रा.लि., इंडस्ट्रियल इस्टेट, गुवाहाटी-781021 में मुद्रित, प्रकाशित एवं प्रसारित।

सर्वाधिकार : **असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गुवाहाटी-32**

'द्विभाषी राष्ट्रसेवक' में प्रकाशित रचनाओं के विचारों से असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति का सहमत होना आवश्यक नहीं है। प्रकाशित सामग्री के उपयोग हेतु प्रकाशक की अनुमति आवश्यक है। सभी कानूनी विवादों का निपटारा गुवाहाटी न्यायालय के अधीनस्थ होगा।

विषय सूची

हिंदी विभाग

क्रम	विषय	लेखक	पृष्ठ
	संपादकीय		4
1.	भारतीय दार्शनिक परंपरा में योग और शिक्षा	✍ डॉ. सरोज राय	5
2.	राजभाषा हिंदी एवं अनुवाद कार्य के प्रचार-प्रसार में 'शब्द भारती' (हिंदी संसाधन केंद्र), गुवाहाटी का योगदान	✍ डॉ. कुसुम कुंज मालाकार	11
3.	भारतेंदु की गजलों में राष्ट्रीयता	✍ डॉ. जियाउर रहमान जाफरी	19
4.	समकालीन हिंदी कविताओं में अभिव्यक्त विचारों का अंतर्विरोध	✍ डॉ. अखिल चंद्र कलिता	27
5.	रमेशचंद्र शाह के उपन्यासों में नारी की दोहरी भूमिका	✍ अनिता मीणा/डॉ. रेणु वर्मा	33
6.	मन्नू भंडारी की आत्मकथा 'एक कहानी यह भी' में चित्रित समाज का बदलता स्वरूप	✍ कसीरा जहाँ	39
7.	जयशंकर प्रसाद और शरतचंद्र चट्टोपाध्याय के कथा साहित्य में नारी दृष्टि	✍ संगीता पॉल	44
8.	इंदिरा गोस्वामी का उपन्यास 'अ-इतिहास' और राजधानी दिल्ली	✍ मिनहाज अली	49
9.	कृष्णा सोबती के उपन्यास 'समय सरगम' में नारी की संवेदनात्मक दृष्टि	✍ नितुश्री दास	53
10.	बिहार के लोक गीतों में अभिव्यक्त स्त्रियों की सामाजिक दशा	✍ आशुतोष नंदन	57
11.	हिंदू धर्म संस्कृति में नारी का स्थान	✍ आनंद कुमार/ ✍ डॉ. सुनिता सिरोही	64
12.	संगोष्ठी समाचार		69

অসমীয়া বিভাগ

12.	কথনবিজ্ঞানৰ আধাৰত দমিতাৰ দস্তাবেজৰ কথন শৈলীৰ বিশ্লেষণ	✍ ড° গীতাঞ্জলি হাজৰিকা	70
13.	হোমেন বৰগোহাঞিৰ 'হালধীয়া চৰায়ে বাও ধান খায়' উপন্যাসত নিম্নবর্গ চেতনা ঃ এক আলোচনা	✍ দীপক দাস	76
14.	চাহ-জনগোষ্ঠীৰ সামাজিক লোকাচাৰ	✍ কস্তুৰী বৰা	81
15.	অসমত উদ্যোগীকৰণৰ বিকাশত সত্রৰ ভূমিকা	✍ শ্রীমতী উর্মিমালা মহন্ত/ ✍ ড° স্মৃতিশিখা চৌধুৰী	89
16.	নগেন শইকীয়াৰ 'ধূলিৰ ধেমালি' আত্মজীৱনীত তদানীন্তন সমাজ জীৱনৰ প্রতিচ্ছবি ঃ এক অধ্যয়ন	✍ হিৰণ্য কুমাৰ বৰা/ ✍ প্রণিতা কাকতি	97
17.	নৱবর্ষৰ অপেক্ষাত (কৱিতা)	✍ ড°ৰাজীৰ শইকীয়া	104

संपादकीय

आधी आबादी

'कोमल है कमजोर नहीं, शक्ति का नाम ही नारी है,
सबको जीवन देने वाली, मौत भी जिससे हारी है।'

नारी सभ्यता, संस्कृति, संस्कारों तथा संपूर्ण मानवता की जननी और संरक्षिका है। नारी की शक्ति और सामर्थ्य के कारण उसे धर्मग्रंथों में पूजनीय स्थान मिला है। नारी अपनी क्षमता और योग्यता का जीवंत उदाहरण प्राचीन काल से देती आई है।

विश्वभर में हर साल 8 मार्च का दिन अंतरराष्ट्रीय महिला दिवस के रूप में मनाया जाता है। यह दिन खासतौर पर महिलाओं और उनसे जुड़े मुद्दों को समर्पित है।

महिला दिवस को मनाने के पीछे साल 1908 में न्यूयॉर्क में हुई एक रैली का अहम योगदान है। दरअसल, इस साल न्यूयॉर्क में 12 से 15 हजार महिलाओं ने एक रैली का आयोजन किया था। रैली करने वाली इन महिलाओं की मांग थी कि उनकी नौकरी के कुछ घंटे कम किए जाए। साथ ही उन्हें वेतन भी उनके काम के मुताबिक दिया जाए। इसके साथ ही इन लोगों की यह भी मांग थी कि उन्हें वोट देने का भी अधिकार मिले। इस आंदोलन के एक साल बाद अमेरिका के सोशलिस्ट पार्टी ने पहले नेशनल वीमेन डे की घोषणा की। बाद में साल 1911 में डेनमार्क, स्विट्जरलैंड, ऑस्ट्रिया, जर्मनी में पहला अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस मनाया गया। इसके बाद 8 मार्च, 1975 को संयुक्त राष्ट्र ने महिला दिवस को आधिकारिक तौर पर मान्यता दी। इसके बाद से हर साल इस दिन को एक विशेष थीम के साथ मनाने का सिलसिला शुरू हुआ। इस साल की थीम है - 'डिजिटऑल : लैंगिक समानता के लिए नवाचार और प्रौद्योगिकी' (DigitALL : Innovation and technology for gender equality)।

इस दिन को मनाने का खास मकसद समाज में महिलाओं को बराबरी का हक दिलाना है। इस दिन महिलाओं के अधिकारों की तरफ लोगों का ध्यान आकर्षित करने और उन्हें जागरुक करने के मकसद से कई कार्यक्रम और कैंपेन भी आयोजित किए जाते हैं।

वर्तमान युग में परिवार, समाज, राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर महिलाओं की वास्तविक शक्ति, सत्ता, समानता, स्वायत्तता, अस्तित्व और अधिकारों की माँग होने के कारण नारी-विमर्श साहित्यिक, सामाजिक, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय विषय के रूप में उभरकर खड़ा हुआ है। नारी-विमर्श के विषय ने जहां एक ओर स्त्री स्वातंत्र्य को प्रतिष्ठित किया है तो दूसरी ओर नारी जीवन से संबंधित कुछ जटिलताओं को भी शामिल किया है। खैर, यह विस्तृत चर्चा का विषय है।

यह स्वीकार्य है कि स्त्री-पुरुष संबंधों में असमानता और भेदभावपूर्ण रवैये से उपजी विसंगतियों के कारण आज नारी-विमर्श विषय विश्व साहित्य का केंद्रबिंदु या प्राणतत्व बन गया है। आधी आबादी या स्त्रीवादी साहित्य का अध्ययन हर दृष्टि से समाज और पूरी मानवता के विकास के लिए अत्यंत आवश्यक है। जिस देश में दो बच्चों की माँ मेरी कॉम जैसी साधारण-सी महिला मुक्केबाजी में विश्व चैंपियन बन सकती है, उस देश में नारी का सम्मान सदा आदरपूर्वक रहेगा, इसमें दो राय नहीं। आज महिला का केवल खेल जगत में ही नहीं, वरन् साहित्य-संस्कृति, ज्ञान-विज्ञान व राजकाज में भी सराहनीय योगदान है।

इस अंक में सामान्य आलेखों के साथ स्त्री विमर्श पर कतिपय आलेख भी शामिल किए गए हैं। आशा है यह अंक भी सुधि पाठकों, मान्य आचार्यों, शोधार्थियों और अध्येताओं को पसंद आएगा। ❑

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

आलेख

भारतीय दार्शनिक परंपरा में योग और शिक्षा

डॉ. सरोज राय

सहायक आचार्या–शिक्षा विभाग
जैन विश्वभारती संस्थान
(मान्य विश्वविद्यालय)
लाडनूं–नागौर (राजस्थान)–341306
मो. 9468839229
ई–मेल : saroja877@gmail.com

सारांश :

योग आज की आवश्यकता और आने वाले कल की संस्कृति है। समाज की वर्तमान आवश्यकता की पूर्ति हेतु योग के साथ शिक्षा, उच्च शिक्षण संस्थानों की भूमिका भी आवश्यक होने वाली है। आज इस दिशा में दृष्टि की आवश्यकता है कि भौतिकता और आध्यात्मिकता में समन्वय और संतुलन के दृष्टिकोण से मनुष्य का समग्र स्वास्थ्य, शारीरिक मानसिक व आध्यत्मिक स्वास्थ्य के लिए मूल्यवान है। क्योंकि जितनी पुरातन इस देश की संस्कृति और सभ्यता है, उतनी ही पुरातन योग का इतिहास भी है। योग और शिक्षा को यदि अध्यात्म विज्ञान की दृष्टिकोण से देखा जाए तो विभिन्न शारीरिक, मनोशारीरिक, मानसिक एवं भावात्मक पीड़ा पर काफी हद तक नियंत्रण किया जा सकता है। आंतरिक वेदनाओं को कम करने के लिए योगाभ्यास की आवश्यकता होती है।

भारतीय दार्शनिक परंपरा में योग शिक्षा समय के साथ लोगों को मानसिक तनाव से मुक्ति, साथ ही मन और मस्तिष्क को शांति पहुँचाने में लाभकारी है। योग विद्या हमेशा से हमारी धरोहर रही है। इसलिए योग के साथ चित्तवृत्तियों का निरोध करते हुए कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग, ध्यानयोग, अष्टांगयोग के माध्यम से अध्यात्म, विज्ञान का सुंदर समन्वय का विकास करते हुए, स्वाध्याय, सदाचार, अहिंसा, आत्मा के द्वारा आत्मा को देखने का प्रयास करके, ईश्वर की अवस्था को ज्ञान और ज्ञाता के रूप में समझने की सम्यक दृष्टि प्रदान करनी चाहिए।

मुख्य शब्द : भारतीय, दार्शनिक, परंपरा, योग और शिक्षा।

प्रस्तावना :

भारतीय दार्शनिक परंपरा में योग का अत्यधिक महत्व रहा है। भगवान शंकर के बाद वैदिक ऋषि–मुनियों से ही योग का प्रारंभ माना जाता है, इसके बाद महर्षि पतंजलि ने योग को व्यवस्थित रूप प्रदान किया। ''योग के बिना विद्वान का कोई भी यज्ञकर्म सिद्ध नहीं होता। वह योग क्या है? वक्त संहिता

में कहा गया है-योग चित्तवृत्तियों का निरोध है, वह कर्तव्य कर्ममात्र में व्याप्त है। योगाभ्यास का प्रामाणिक चित्रण लगभग 3000 ई.पू. सिंधु घाटी की सभ्यता के समय की मोहरों और मूर्तियों में मिलता है। योग पर लिखा गया 'योग सूत्र-200 ई.पू.' सुव्यवस्थित प्रामाणिक ग्रंथ है। वैदिक काल में योग का बहुत महत्व था। ब्रह्मचर्य आश्रम में वेदों की शिक्षा के साथ ही शस्त्र और योग की शिक्षा भी दी जाती थी। प्रथम बार महर्षि पातंजलि ने वेद में बिखरी योग विद्या का सही-सही रूप में वर्गीकरण किया। योग भारतीय संस्कृति एवं चिंतन धारा की अमूल्य निधि है, जो सृष्टि के आदि काल से लेकर भारतीय परंपरा के सभी दर्शनों में विद्यमान है। योग का संबंध मनुष्य की अंतरात्मा से है। योग वह साधन है, जिसके द्वारा मनुष्य अपने जीवन में दिव्यता अर्थात पूर्णता को प्राप्त करता है। योग अमृत है, योग ब्रह्म विद्या है, जिससे जीव का रूपांतरण ब्रह्म के रूप में किया जा सकता है।

योग विद्या भारतीय संस्कृति के सुदृढ़ आधार स्तंभों में से एक है। योग के द्वारा भारतीय संस्कृति के दार्शनिक पक्षों की पुष्टि हुई है। योग की स्थिति समस्त ऐंद्रिय व्यापारों से विरक्ति में है। इंद्रियों के सारे द्वारों को बंद करके मन को हृदय में तथा प्राण वायु को सिर की चोटी पर स्थिर करके मनुष्य अपने योग में स्थापित होता है। मनुष्य को योग में सफलता या सिद्धि तभी मिलती है, जब वह योग के सिद्धांतों को व्यावहारिक रूप देकर, जीवन में आत्मसात करे। भारतीय ऋषि परंपरा ने जन-जन के लिए प्रेरणादायी मार्गदर्शक की भूमिका निभाई है। योग का प्रारंभ मानव संस्कृति के विकास के साथ आध्यात्मिक उत्थान हेतु हुआ था। भारतीय ऋषियों, संतों ने इस विद्या को विकसित किया तथा मानवीय समस्याओं के समाधान के साथ-साथ नैतिक, आध्यात्मिक, शैक्षिक, धार्मिक, सामाजिक उत्थान हेतु मार्ग दर्शन की भूमिका निभाई।

योग आज की आवश्यकता और आने वाले कल की संस्कृति है। समाज की वर्तमान आवश्यकता की पूर्ति हेतु योग के साथ शिक्षा, उच्च शिक्षण संस्थानों की भूमिका भी आवश्यक होने वाली है। आज इस दिशा में दृष्टि की आवश्यकता है कि भौतिकता और आध्यात्मिकता में समन्वय और संतुलन के दृष्टिकोण से मनुष्य का समग्र स्वास्थ्य, शारीरिक मानसिक और आध्यत्मिक स्वास्थ्य के लिए मूल्यवान है। क्योंकि जितनी पुरातन इस देश की संस्कृति और सभ्यता है, उतनी ही पुरातन योग का इतिहास भी है। योग और शिक्षा को यदि अध्यात्म विज्ञान की दृष्टिकोण से देखा जाए तो विभिन्न शारीरकि, मनोशारीरिक, मानसिक एवं भावात्मक पीड़ा पर काफी हद तक नियंत्रण किया जा सकता है। आंतरिक वेदनाओं को कम करने के लिए योगाभ्यास की आवश्यकता होती है। योग की प्रक्रिया में नर्वस सिस्टम पर नियंत्रण पाने की मस्तिष्क की शिराओं एवं तंतुओं को सुव्यवस्थित करने का रहस्य सन्निहित है। भारतीय दार्शनिक परंपरा में योग को शाश्वत विज्ञान, साधना पद्धति की श्रेष्ठ विद्या की उपाधि दी गई है। इस विज्ञान के माध्यम से शरीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक, शैक्षिक, सामाजिक, भावनात्मक स्तर पर स्वास्थ्य शिक्षा, अध्यात्म के समन्वयात्मक स्वरूप को प्राप्त किया जा सकता है।

वैदिक योग परंपरा :

योग का ज्ञान मनुष्य की अंतरात्मा से संबंधित होने के कारण योग का इतिहास वर्तमान से कम-से-कम पाँच हजार वर्ष पुराना है। योग की महत्ता को सिद्ध करते हुए ऋग्वेद में कहा गया है कि योग भारतीय जीवन पद्धति का महत्वपूर्ण अंग है। योग एक शाश्वत नियम है, भारत की अमूल्य वैदिक संपत्ति है। दर्शनशास्त्र महर्षियों की योग विद्या का ही परिणाम हे। स्मृति, पुराण, चिकित्सा, ज्योतिष शास्त्र आदि अन्य समस्त विद्याएँ ऋषियों के योगाभ्यास का ही परिणाम हैं। अर्थात समस्त संस्कृत साहित्य में योग का गुणगान हुआ है। एकाग्रता, समाधि तथा योग तीनों शब्द एक ही अर्थ के प्रतिपादक हैं। संसार का समस्त व्यावहारिक परमार्थिक कार्य बिना योग के पूर्ण नहीं हो सकता तथा मनुष्य अपने लौकिक जीवन की किसी भी अभीष्ट को सिद्ध नहीं कर सकेगा।

वेदों में योग :

योग भारतीय जीवन पद्धति का एक अति विशिष्ट

अंग है, और वेद भारतीय संस्कृति का सबसे प्राचीन ग्रंथ है। सृष्टि के आरंभ में अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा चार ऋषियों को परमात्मा ने वेद ज्ञान प्रदान किया। योग शब्द सर्वप्रथम ऋग्वेद में देखने को मिलता है। योग की महत्ता को सिद्ध करते हुए ऋग्वेद में कहा गया है कि विद्वानों का कोई भी यज्ञ-कर्म बिना योग के सफल नहीं होता है। योग द्वारा ज्ञान प्राप्ति के लिए ऋग्वेद में ईश्वर से प्रार्थना की गई है। ऐसा कहा गया है-ईश्वर की कृपा से हमें योग सिद्धि होकर विवेक ख्याति तथा ऋतंभरा ज्ञान प्राप्त हो।

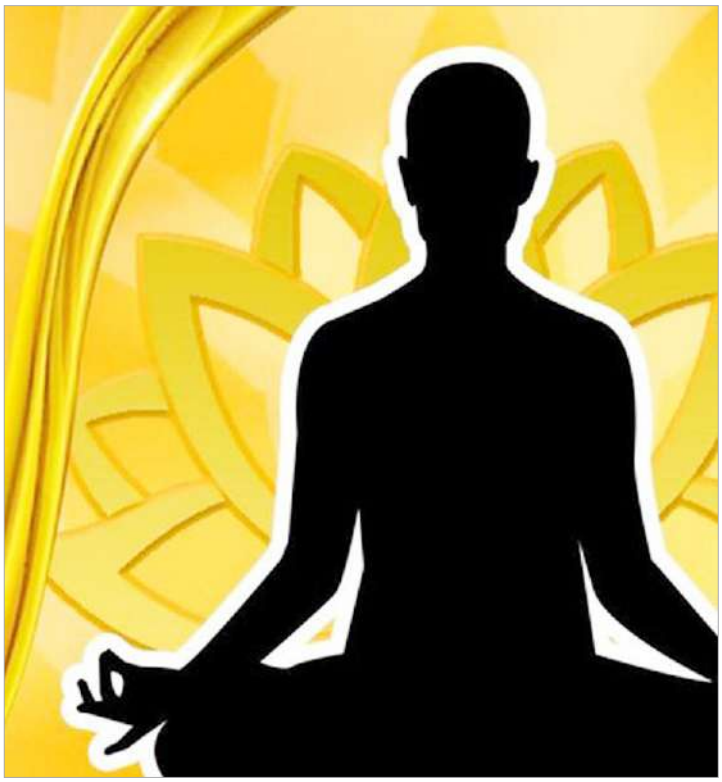

यजुर्वेद में योग :

यजुर्वेद में कहा गया है कि योग के प्रधान लक्ष्य को, वृत्तियों को, तत्व प्राप्ति के दिव्य स्वरूप में लगाएँ। यजुर्वेद में आगे कहा गया है कि योग के माध्यम से हमारी इंद्रियों का प्रकाश बाहर न जाकर बुद्धि और मन की स्थिरता में सहायक हो तथा बाह्य विषयों से लौटकर हमारी इंद्रियों में स्थिरतापूर्वक स्थापित हो जाए। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि योग का निरूपण भले ही पारिभाषिक शब्दों में न हुआ हो, किंतु वेदों में मंत्रों के द्वारा प्राकृतिक वस्तुओं तथा विभिन्न आधारों के माध्यम से स्तुति कर योग के स्वरूप को वर्णित किया गया है।

उपनिषदों में योग :

उपनिषद काल में योग का सर्वांगीण विकास एवं संवर्द्धन हुआ है। इस काल में कठ, मुण्डक, श्वतोश्वर, वृहदारण्यक तथा छन्दोग्योपनिषद आदि में योग की पर्याप्त चर्चा की गई है। उपनिषद में योग शब्द आध्यात्मिक अर्थ में प्रयुक्त हुआ है तथा योग के क्रियात्मक पक्ष के स्वरूप को भी स्पष्ट किया गया है। उपनिषदों की संख्या 108 के लगभग मानी गई है। इसमें कहीं-न-कहीं योग का वर्णन विशेष रूप से किया गया है। योग साधना से होने वाले परिणाम का वर्णन करते हुए कहा गया कि शरीर निरोग हो जाता है, आरोग्य रहता है, विषयों के प्रति लालसा मिट जाती है, नेत्रों को आकर्षित करने वाली कांति प्राप्त हो जाती है तथा आत्मा के शुद्ध स्वरूप का साक्षात्कार होता है। उपनिषदों में योग के विभिन्न रूपों की भी चर्चा की गई है। योग के चार भेद-मंत्र योग, लय योग, राज योग, हठयोग को विस्तारित करते हुए चारों योगों को महायोग की संज्ञा दी गई है। इस प्रकार उपनिषदों में योग-साधना की प्रत्येक विधा का वर्णन सरलता एवं बोधगम्यता से किया गया है। लेकिन मूल रूप से उपनिषदों में योग को आध्यात्मिक अर्थ में प्रयुक्त किया गया है।

महाभारत में योग :

पाँचवें वेद के रूप में स्वीकृत महाभारत भारतीय संस्कृति एवं धर्म का प्रतिनिधि ग्रंथ है। 18 पर्वों में विभक्त इस महाग्रंथ में योग संबंधी प्रक्रियाओं का विस्तृत वर्णन किया गया है। संयम और योगाभ्यास के द्वारा मन को एकाग्र कर योगी के लिए समता और शांति की

प्राप्ति आवश्यक है। महाभारत में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि योगी को समता की शरण में जाना चाहिए। इसके लिए अहिंसा, क्षमाभाव, अपने दोषों को ध्यान के द्वारा नष्ट करना तथा अजर, अमर, सनातन, परमात्मा का आत्मा से अनुभव का वर्णन किया गया है।

श्रीमद्भगवद्गीता :

गीता को आध्यात्मिक ग्रंथों में सबसे अधिक महत्वपूर्ण ग्रंथ माना जाता है तथा गीता महाभारत का ही एक अंग है। गीता के प्रत्येक अध्याय के साथ 'योग' शब्द जोड़ा गया है। योग की विभिन्न पद्धतियों का गीता में वर्णन किया गया है, क्योंकि गीता का योग विलक्षण है। गीता विशुद्ध रूप से योग शास्त्र है। पातंजल योग दर्शन में चित्तवृत्तियों के निरोध को योग कहा गया है, अर्थात योग के परिणामस्वरूप चित्तवृत्तियों का निरोध हो जाता है। पातंजल योग दर्शन में जो परिणाम बताया गया है, उसी को गीता में योग कहा गया है। गीता में इस योग की प्राप्ति के लिए कर्मयोग, ज्ञान योग, भक्तियोग, ध्यानयोग, अष्टांगयोग आदि साधनों का वर्णन किया गया है। गीता में श्रीकृष्ण ने योग की प्राप्ति के लिए दो साधन बताए हैं-कर्मयोग और सांख्योग। साधक की बुद्धि जब परमात्मा में अचल और स्थिर हो जाती है, उस स्थति में योग की प्राप्ति हो जाती है। गीता को भक्ति, ज्ञान और कर्म की त्रिवेणी माना जाता है तथा इन तीनों योगों का समन्वय ही सबसे बड़ी विशेषता है। इस प्रकार गीता में योग, योगी, और योगाभ्यास का विस्तार से सूत्रात्मक उल्लेख किया गया है।

स्मृति ग्रंथों में योग :

भारतीय दार्शनिक परंपरा में स्मृति ग्रंथ का भी विशेष महत्व है। इसमें योग साधना के परम लक्ष्य की प्राप्ति की बात की गई है। अर्थात योगी को यज्ञ, दान स्वाध्याय सदाचार अहिंसा का पालन करते हुए, योग का आश्रय लेकर योग की क्रिया विधि करनी चाहिए तथा योग से आत्मा के द्वारा आत्मा को देखने का प्रयास करना चाहिए। क्योंकि केवल योग की एक मात्र साधन है, जिससे मनुष्यों को अपनी इंद्रियों को वश में करने की क्षमता उत्पन्न होती है। इस प्रकार स्मृति ग्रंथ में योग का वैज्ञानिक स्वरूप तथा व्यावहारिक स्वरूप प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

पुराणों में योग :

पुराणों में योग का अत्यधिक वर्णन मिलता है, क्योंकि पुराणों का उद्गम प्राचीन काल से ही माना जाता है। यौगिक क्रियाओं का वर्णन विभिन्न पुराणों में देखने को मिलता है, जिनमें भागवत पुराण का स्थान सर्वोपरि है। भागवत पुराण में ध्यान योग यम-नियम तथा अष्टांगयोग आदि अट्ठारह सिद्धियों का उल्लेख प्राप्त है। इसके अतिरिक्त इसमें प्राणायाम के महत्व को दर्शाते हुए कहा गया है कि अगर्भ प्राणायाम से सगर्भ प्राणायाम सौ गुणा अधिक प्रभावशाली होता है तथा योगाख्यान वर्णन में योग का विषद वर्णन किया गया है।

योगवाशिष्ठ में योग :

योगवाशिष्ठ ग्रंथ का उच्च स्थान है। इसमें गुरु वशिष्ठ द्वारा दिए गए उपदेशों के माध्यम से योग का वर्णन किया गया है। योग से मनुष्य अपने वास्तविक स्वरूप को जानकर एकत्व की दृढ़ भावना से शांत होकर आत्मतत्व में विलीन हो जाता है। द्रष्टा के रूप में स्वयं को असत् मानकर आत्म स्वरूप में स्थित होने का तथा योग का अभ्यास करना श्रेयस्कर है। मन की महत्ता को दर्शाते हुए कहा गया है कि मन की पूर्ण शांति के लिए कर्तत्व भाग का त्याग, समाधि का अभ्यास, ज्ञानयुक्ति, अहंभाव का नाश तथा प्राणनिरोध के माध्यम से मन को शांत करना अथवा तत्व का दृढ़ अभ्यास करने तथा ज्ञान की प्राप्ति के लिए सदाचार और सद्विचार के परिपालन को महत्व दिया गया है।

पातंजल योग :

वैदिक योग परंपरा में महर्षि पतंजलि का योग दर्शन और क्रिया विधि अनुपम है। उन्होंने वैदिक संहिताओं और ब्राह्मण ग्रंथों तथा उपनिषदों में वर्णित योग सिद्धांतों एवं यौगिक-प्रक्रियाओं को संकलित एवं परिमार्जित कर नया स्वरूप प्रदान किया है। महर्षि पतंजलि के अनुसार चित्त की वृत्तियों का निरोध अर्थात रोकना ही योग है। पातंजल योग सूत्र का आधार सांख्यदर्शन है।

ज्ञान योग-साधना से होने वाले मनुष्य की चेतना विषयों से मुक्त होकर अंत:करण में प्रवृत्त होती है।

दार्शनिक परम्परा में योग और शिक्षा का निष्कर्ष:

● विद्यार्थियों के मानसिक विकास में योग साधना के माध्यम से चित्तवृत्तियों का निरोध करके ईश्वर अर्थात गुरु को सर्वज्ञता के बीज रूप को समझने योग्य तथा चेतन विषयों के योग-साधना से मुक्त करके अंत:करण का अनुभव ज्ञान, वैराग्य और समाधि के माध्यम से किया जा सकता है। वर्तमान समय में सापेक्ष ज्ञान की आवश्यकता है। इसके लिए यौगिक क्रियाओं यम-नियम अष्टांग सर्वोपरि है। क्योंकि इसके माध्यम से विद्यार्थियों का मानसिक विकास साथ शारीरिक विकास में सहयोगी भूमिका निभाता है।

● योग वह साधन है, जिसका नियमित अभ्यास करने से शारीरिक एवं मानसिक दोनों ही दृष्टियों से लाभप्रद है। क्योंकि यौगिक क्रियाओं और यौगिक अभ्यास से शरीर और मन दोनों का पूर्णता, सरलता, बोधगम्यता का विकास होता है।

● योगासन तथा अन्य यौगिक क्रियाएँ औषधि और चिकित्सा के रूप में कार्य करते हैं। शरीर का तापक्रम सामान्य बनाए रखने, श्वसन क्रिया को नियंत्रित करने से शारीरिक क्षमता तथा कार्यकुशलता में वृद्धि होती है।

● पाचन संस्थान, रक्त परिभ्रमण, नाड़ी संस्थान, अस्थि संस्थान, उत्पादक-विसर्जक संस्थान, शरीर के उचित विकास तथा आंतरिक स्वच्छता के माध्यम से विजातीय तथा हानिकारक पदार्थों को शरीर से निकाल

पातंजल योग के अनुसार चित्त की वृत्तियाँ पाँच प्रकार की होती हैं- प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा, स्मृति। जिस वृत्ति से बोध अर्थात प्रभा उत्पन्न हुआ हो, उसका नाम प्रमाण है। विपर्यय मिथ्याज्ञान है, जो वास्तविक रूप को नहीं दर्शाता। जो ज्ञान शब्द से उत्पन्न हुआ हो, जो वस्तु की सत्ता की अपेक्षा न रखता हो, उसे विकल्प ज्ञान कहते हैं। जाग्रत तथा स्वप्नावस्था के अभाव को निद्रा कहते हैं। किसी विषय अनुभव तथा अनुभव किए हुए विषय का खो जाना स्मृति कहलाता है। चित्त की वृत्तियों के दो उपाय बताए गए हैं-अभ्यास और वैराग्य, जिनका अनुभव या ज्ञान वेद और शास्त्रों को सुनने से होता है वह समाधि की प्राप्ति में सहायक होता है। चित्त की एकाग्रता और स्थिरता पातंजल योग में ईश्वर प्राणिधान से शीघ्रतम समाधि लाभ होता है।

ईश्वर को सर्वज्ञता के बीज के रूप में कहा गया है तथा ईश्वर की अवस्था को विशेष रूप से समझाने का प्रयास किया गया है। योगी का ज्ञान सातिशय अवस्था अर्थात सापेक्ष होता है। पातंजल योग में प्रत्येक चेतन का

कर रोगमुक्त बनाने में योग विद्या व योग क्रिया सहयोगी होती हैं।

● मनुष्य जीवन के चार उद्देश्य हैं- अर्थ, धर्म, काम मोक्ष। शिक्षा के द्वारा इन उद्देश्यों की पूर्ति सहायक होती है। सजग मस्तिष्क संवेगात्मक विकास में सकारात्मक संवेगों की उपस्थिति में योग साधना आंतरिक वेदनाओं को कम करके भावात्मक पीड़ा पर इंद्रिय निग्रह द्वारा, एकाग्रता समाधि और साधना द्वारा नियंत्रण करने में महत्वपूर्ण है।

● योग क्रिया, यौगिक अभ्यास से विद्यार्थियों की दिनचर्या नियमित, संयमित होती है। इसलिए नैतिकता के सभी शत्रुओं पर विजय प्राप्त करके प्रेम, दया, सहानुभूति तथा इंद्रियों पर प्रशिक्षण, प्राणों की शुद्धता का विकास किया जा सकता है।

● योग इंद्रिय निग्रह तथा मन की चंचलता पर नियंत्रण करने के लिए भाईचारे, प्रेम, सहिष्णुता, शांति सहयोग आत्म संयम, धैर्य आदि का उचित विकास करके, सामाजिक गुणों से युक्त करके, आदर्श विश्व समाज के निर्माण में, सामाजिक गुणों के अर्जन में सहायक होता है।

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि भारतीय दार्शनिक परंपरा में योग और शिक्षा समय के साथ लोगों को मानसिक तनाव से मुक्ति, साथ ही मन और मस्तिष्क को शांति पहुँचाने में लाभकारी है। योग विद्या हमेशा से हमारी धरोहर रही है। इसलिए योग के साथ चित्तवृत्तियों का निरोध करते हुए कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग, ध्यानयोग, अष्टांगयोग के माध्यम से अध्यात्म, विज्ञान का सुंदर समन्वय का विकास करते हुए, स्वाध्याय, सदाचार, अहिंसा, आत्मा के द्वारा आत्मा को देखने का प्रयास करके, ईश्वर की अवस्था को ज्ञान और ज्ञाता के रूप में समझने की सम्यक दृष्टि प्रदान करनी चाहिए। क्योंकि योग ही ऐसा साधन है, जो भौतिकता के अस्तित्व को आध्यात्मिक अस्तित्व में परिवर्तित, परिमार्जित कर, समन्वय और संतुलन का सूत्र स्थापित करके मनुष्य के समग्र स्वास्थ्य के लिए मूल्यवान है। ❑

संदर्भ सूची :

1. आचार्य, अर्जुन (2016) 'योग शिक्षा एवं प्रशिक्षण' आम्रपाली सर्किल, वैशाली नगर, जयपुर, राजस्थान
2. राम, आचार्य शील के (2014) 'सनातन भारतीय योग-साधना एवं उसकी विविध ध्यान विधियां', कल्पना प्रकाशन जहांगीर पुरी, दिल्ली
3. तिवारी, अनिता, तिवारी, एन.के. (2011) ''भारतीय धर्म एवं दर्शन में योग'' यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन प्रकाश दीप बिल्डिंग, अंसारी रोड, दरिया गंज, नई दिल्ली
4. सिंह, राम हर्ष (2011) ''योग एवं यौगिक चिकित्सा'', चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, जवाहर नगर, बंगलो रोड, दिल्ली
5. कुमार, कामख्या, जोशी, भसु प्रकाश (2009) 'योग रहस्य', स्टेण्डर्ड पब्लिकेशंस, राजौरी गार्डन, नई दिल्ली
6. मिश्रा, जे.पी.एन (2008) योग वैशिष्ट्य, जैन विश्वभारती विश्वविद्यालय, लाडनू, नागौर, राजस्थान
7. कुमार, कामाख्या, चिदानंद मूर्ति, बी.टी. (2007) ''योग महाविज्ञान'', स्टेण्डर्ड प्रकाशक, राजपुरी, उत्तम नगर, नई दिल्ली
8. दशोरा, नंदलाल (1994) ''ध्यान योग चिकित्सा'', रणधीर, प्रकाशन हरिद्वार, उ.प्र.
9. सरस्वती, स्वामी कर्मानन्द (1998) ''रोग और योग'', योग पब्लिकेशंस ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

अध्ययन

राजभाषा हिंदी एवं अनुवाद कार्य के प्रचार-प्रसार में 'शब्द भारती' (हिंदी संसाधन केंद्र), गुवाहाटी का योगदान

डॉ. कुसुम कुंज मालाकार

विभागाध्यक्ष एवं सहयोगी प्राध्यापक
हिंदी विभाग
कॉटन विश्वविद्यालय
गुवाहाटी, असम-781001
मो. 98640-23568

''हिंदी हमारी भारत की शान है
इसी से हम सबकी पहचान हैं।''

इन्हीं विचारों से अनुप्राणित होकर तथा स्वयं को भारत के अन्य प्रांतों के साथ एक सूत्र में जुड़ने के प्रयास से असम के कुछ हिंदी प्रेमियों के अथाह उद्यम के फलस्वरूप गुवाहाटी शहर में शब्द भारती (हिंदी संसाधन केंद्र) नामक संस्था की नींव रखी गई थी। इसका मूल उद्देश्य हिंदी को राजभाषा के रूप में स्वीकार करते हुए इसके प्रचार-प्रसार के लिए प्रयत्न करना रहा है। हिंदी प्रेमी हिंदी को राजभाषा व राष्ट्रभाषा बनाने का जो सपना देख रहे थे, उनमें असम प्रांत भी एक प्रबल समर्थक रहा है। आजादी के बाद जब 14 सितंबर, 1949 को संविधान सभा में कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी और श्री गोपालस्वामी आयंगर के हिंदी को राजभाषा बनाने का प्रस्ताव स्वीकार कर, इसे 26 जनवरी 1950 से लागू किया गया। संपूर्ण देश के साथ-साथ असम ने भी इसके पक्ष में खड़े होकर इसका समर्थन किया। 'भारत की राजभाषा हिंदी तथा इसकी लिपि होगी देवनागरी' इस खबर से संपूर्ण भारत में एक खुशी की लहर दौड़ गई। तब से आज तक राजभाषा हिंदी के प्रचार-प्रसार में अनेक संस्थाओं का उदय हुआ, जिनका उद्देश्य इसका प्रचार- प्रसार करते हुए समस्त जन तक इसको पहुँचाने का रहा। इसी प्रयास में असम के गुवाहाटी शहर में 'शब्द भारती' (हिंदी संसाधन केंद्र) का भी उदय हुआ। इस संस्था का उदय मूलत: अनुवाद कार्य के लिए हुआ था। चूँकि हिंदी के साथ-साथ अंग्रेजी भी भारत की राजभाषा का दर्जा प्राप्त कर चुकी थी, इसलिए समस्त देशवासियों के लिए यह भी जरूरी था कि वे हिंदी के साथ- साथ अंग्रेजी के भी जानकार हों। इसी प्रयास से असम के गुवाहाटी शहर में 'शब्द भारती'(हिंदी संसाधन केंद्र) की नींव रखी गई।

शब्द भारती (हिंदी संसाधन केंद्र) का शुभारंभ :

शब्द भारती का गठन भारत सरकार की राजभाषा नीति और शिक्षा नीति के परिप्रेक्ष्य में 1999 में हुआ। राजभाषा हिंदी को एक अहिंदी भाषी प्रांत में

प्रचार-प्रसार के उद्देश्य से इस संस्था का उदय हुआ। हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार के साथ-साथ सभी को राष्ट्रीय एकता के सूत्र में पिरोने के सपने लिए इसका उदय हुआ। हमारे संविधान के 351 अनुच्छेद के अनुसार हिंदी भाषा का प्रचार-प्रसार करने तथा इसके लिए आवश्यक व्यवस्थाएँ करने के उद्देश्य से ही इस संस्था का गठन किया गया। यह पूर्वोत्तर भारत के सभी सरकारी तथा गैर-सरकारी कार्यालयों में हिंदी को राजभाषा तथा राष्ट्रभाषा के रूप में लागू करने के साथ-साथ राजभाषा और राष्ट्रभाषा हिंदी में समन्वय एवं कार्यान्वयन करने वाली संस्था है। इसका मूल उद्देश्य हिंदी तथा अन्य प्रांतीय भाषाओं को अनुवाद कार्य के जरिए विकसित और समृद्ध करना रहा है।

शब्द भारती (हिंदी संसाधन केंद्र) का प्रमुख उद्देश्य:

किसी भी कार्य का कोई-न-कोई उद्देश्य अवश्य होता है। ठीक उसी प्रकार इस संस्था का गठन कुछ विशेष उद्देश्यों की पूर्ति हेतु किया गया था। अहिंदी प्रांत असम में राजभाषा हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए शब्द भारती का गठन हुआ था, जो आज तक अपने निर्धारित लक्ष्य को साथ लिए चल रहा है। इस संस्था का उद्देश्य चूँकि हिंदी का प्रचार-प्रसार करना रहा है, इसलिए हिंदी भाषा के माध्यम से अहिंदी क्षेत्र के अलग-अलग भाषा-भाषियों, जाति-उप जातियों के बीच अपने देश की भावात्मक तथा राष्ट्रीय एकता को बनाए रखना था। इसी आधार पर इस संस्था के नियमावली तथा नीति-निर्देशिकाएँ भी बनाए गए।

संस्था के प्रमुख कार्यकलाप व उद्देश्य निम्नलिखित हैं :-

अपने लक्ष्य को प्राप्त करने हेतु इस संस्था की कुछ निर्धारित कार्यक्रम मौजूद हैं। जिनमें

● राजभाषा और राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी के विकास और प्रचार-प्रसार हेतु विविध संस्था जैसे कार्यालयों, महाविद्यालयों तथा व्यक्तियों की सहायता एवं परामर्श देना।

● एक वर्षीय हिंदी-अंग्रेजी भाषा में अनुवाद का डिप्लोमा कोर्स का प्रशिक्षण देना।

● राजभाषा हिंदी से संबंधित रोजगार, हिंदी में अनुवाद का महत्व तथा तकनीकी पक्ष में हिंदी का प्रयोग आदि विषयों पर प्रशिक्षण एवं कार्यशालाओं का आयोजन।

● राजभाषा हिंदी के कार्यान्वयन संबंधी अनेक शोधपरक कार्य का आयोजन, पुरस्कार एवं प्रोत्साहन हेतु स्कॉलरशिप सुविधाएं प्रदान करना।

● प्रयोजन मूलक हिंदी की शिक्षा देना, जिनमें मूलत: अनुवाद कार्य, रोजगारोन्मुखी प्रशिक्षण आदि शामिल हैं। साथ ही साथ पूर्वोत्तर के सभी क्षेत्रीय भाषाओं तथा बोलियों से परस्पर हिंदी में अनुवाद कार्य करना तथा इसके लिए शोधपरक अध्येता वृत्ति व फेलोशिप प्रदान की व्यवस्था करना।

● हिंदी भाषा के जरिए पूर्वोत्तर की सभी भाषाओं व बोलियों के बीच समन्वयन करना।

● हिंदी भाषा का देवनागरी लिपि में टाइपिंग की व्यवस्था करना तथा कंप्यूटर में आशुलिपि प्रशिक्षण की व्यवस्था करना।

● पूर्वोत्तर राज्यों में राजभाषा के प्रचार प्रसार हेतु हिंदी में संगोष्ठी, कार्यशालाओं, लेखन शिविरों तथा सम्मेलनों का आयोजन।

● प्रांतीय भाषाओं की पुस्तकों का हिंदी में अनुवाद करना। साथ ही साथ हिंदी की लोकप्रिय पुस्तकों, कार्यालयीन और प्रयोजन मूलक हिंदी तथा अनुवाद से संबंधित पुस्तकों, कोशों की आपूर्ति और प्रकाशन करना।

● भारत सरकार के राजभाषा विभाग (गृह मंत्रालय) तथा शिक्षा विभाग (मानव संसाधन विकास मंत्रालय) और संबंधित राज्य सरकारों एवं भारतीय ज्ञानपीठ तथा साहित्य अकादेमी सहित विभिन्न सांस्कृतिक संगठनों के साथ हिंदी का विकासन्वयन / सम्बद्ध करना ।

शब्द भारती संस्था की पृष्ठभूमि :

सन 1994 में मोहन कोईराला जो आज संस्था के सचिव हैं, उन्हें एक पत्र मिला, जिसे तत्कालीन दिल्ली के प्रोफेसर विमलेश कांति वर्मा जी ने भेजा था। वे तत्कालीन भारतीय अनुवाद परिषद के सचिव भी थे। वे उन दिनों पूर्वोत्तर भारत पर एक पुस्तक लिख रहे थे,

जिसके लिए उन्हें पूर्वोत्तर की कुछ साहित्यिक सामग्रियों की आवश्यकता थी, जिसे इन्होंने भेज दी। फिर 1995 में किसी काम के प्रशिक्षण हेतु जब कोईराला जी दिल्ली गए, तब उनसे पुन: मुलाकात हुई। तब वे भारतीय अनुवाद परिषद के बारखंबा रोड स्थित कार्यालय में थे। इस दौरान कई घंटे बातें हुईं और विद्यार्थियों के कल्याण के लिए उन्होंने पूर्वोत्तर में इस प्रकार की संस्था का गठन करने का प्रस्ताव दिया।

वापस लौटकर कोईराला जी ने इसके बारे में सोचा और संस्था के लिए विविध प्रयास किए। वे सबसे पहले जी.एल.अग्रवाल जी से मिले, जो पूर्वांचल प्रहरी समाचारपत्र के तत्कालीन संपादक थे। उनसे इस विषय पर चर्चा की। लेकिन यह सिलसिला लगभग करीब दो साल तक चला और यह कार्य सफल नहीं हो सका। फिर उसी समय भारतीय जनता पार्टी, गुवाहाटी महानगर के सदस्य बनमाली शर्मा से इनकी इस सिलसिले में बात हुई। उन्होंने भी आश्वासन देते हुए इनका उत्साहवर्द्धन किया। पुन: एक साल के बाद उन्होंने कोईराला जी को इस सिलसिले में मिलने हेतु बुलाया और इन्हें तब के गुवाहाटी के जयानगर में स्थित केंद्रीय हिंदी संस्थान के कार्यालय ले गए। वहाँ एक सभा ही रही थी, जिसमें हिंदी के प्रचारक मौजूद थे, जिनमें असम के डीपीआई बरदलै साहब के साथ-साथ हिंदी के प्रचारक और असम राज्य राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के मंत्री सूर्यवंशी चौधरी भी शामिल थे। इनके सामने भी कोईराला जी ने अपना प्रस्ताव रखा, जिस पर उन्हें सिर्फ प्रोत्साहन ही मिला और पुन: दो वर्ष बीत गए।

लेकिन फिर एक दिन अचानक सूर्यवंशी चौधरी का एक आदमी इनके पास आया और इन्हें पाँच हजार रुपए का ड्राफ्ट देकर सूर्यवंशी जी से मिलने को कहा। उनसे मिलने के बाद उन्होंने इस पाठ्यक्रम को उनकी समिति के अधीन चलाने की बात कही और पैसों की मदद करने तक की बात भी कही। फिर कोईराला जी ने दिल्ली में डॉ. विमलेश जी को फोन किया और उनसे पाठ्यक्रम चलाने की अनुमति माँग ली। इस प्रकार 16 अगस्त, 1999 में दिसपुर हायर सेकेंडरी स्कूल में वाकसेतु अनुवाद पाठ्यक्रम का शुभारंभ हुआ।

संस्था के कार्यरत कर्मचारी :

साल 2001 में जब शब्द भारती का स्वतंत्र रूप से गठन किया गया, तब उस नवगठित समिति में डॉ. अच्युत शर्मा, (गौहाटी विश्वविद्यालय) जी इसके अध्यक्ष बने और अनिल कुमार और श्री मातबर सिंह चौहान इसके उपाध्यक्ष। मोहन कोईराला जी को सचिव बनाया गया। इस प्रकार यह सिलसिला चल पड़ा। इसके एक वर्ष पश्चात ही के.सी. दास कॉमर्स कॉलेज के हिंदी के विभागाध्यक्ष डॉ. राधेश्याम तिवारी को भी इसका उपाध्यक्ष बनाया गया और उसी वर्ष श्री मातबर सिंह चौहान को ब्यूरो का अध्यक्ष बनाया गया था, जिससे शब्द भारती को आर्थिक सहायता मिल सके। क्योंकि ब्यूरो में अनुवाद का काम करते हुए अच्छी आमदनी होती थी, जो इस संस्था के लिए उस समय आवश्यक भी था। तत्पश्चात डॉ. नंद किशोर सिंह और डॉ. विवेक कुमार श्रीवास्तव के परामर्शानुसार इसके संविधान में संशोधन करते हुए पूरे पूर्वोत्तर के आठ राज्यों के 20 श्रेष्ठ विद्वान तथा वरिष्ठ नागरिकों को इसका संरक्षक बनाया गया।

जब पहली बार संस्था की नींव रखी गई, तब मोहन कोईराला जी ने अपने साथ तत्कालीन अन्य राजभाषा अधिकारियों व लेखकों को इस संस्था में अध्यापन कार्य के लिए जोड़ा। इसमें सर्वप्रथम जुड़ने वालों व्यक्तियों में थे यूको बैंक के राजभाषा अधिकारी डॉ. अजयेन्द्र नाथ त्रिवेदी, असम सेंसस के राजभाषा अधिकारी मातबर सिंह चौहान और सेंटिनल के संपादक अनिल कुमार जी आदि। इन व्यक्तियों के सान्निध्य में यह संस्था चल पड़ी। संस्था के दूसरे वर्ष अर्थात 2001 में अध्यापन कार्य हेतु कुछ और लोग जुड़े, जिनमें मुख्यत: गुवाहाटी विश्वविद्यालय के डॉ. अच्युत शर्मा और स्टेट बैंक के राजभाषा अधिकारी कालीचरण बासफोर, इलाहाबाद बैंक के विनय दूबे और यूनाइटेड एश्योरेन्स कंपनी के राजभाषा अधिकारी डॉ. दीनेश कुमार शर्मा आदि थे। 2008 में राजीव गांधी विश्वविद्यालय इटानगर के प्रोफेसर अनंत कुमार नाथ शब्द भारती के नए अध्यक्ष बने और सन 2012 में गुवाहाटी विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के विभागाध्यक्ष डॉ. दिलीप कुमार मेधि जी को इसका

उपाध्यक्ष बनाया गया, जो अभी तक निरंतर अपनी सेवा दे रहे हैं।

इनके अतिरिक्त शब्द भारती में प्रत्येक वर्ष नए-नए उत्साही युवाओं को अपने संकायों से जोड़ता आ रहा हैं, जिनमें 2011 से 2017 तक लोचन माखीजा, प्रवीण भारद्वाज, डॉ. चंद्रलेखा शर्मा, दिव्य ज्योति डेका, डॉ. संजय सिंह, बी.बी. मुर्मु, के. के. पांडेय, कमल कुमार, वीरेन्द्र कुमार सिंह, नीरज श्रीवास्तव आदि थे। जबकि 2018 से मनोज कुमार, दीपक कुमार, गौरांग पाल, सुश्री बिनीता ब्रह्म, सागरिका दत्त, रामेश्वर शर्मा, हिटलर सिंह, गुणेश्वर सइकिया, सरस्वती सिंहा, तृप्ति रानी आचार्य आदि को जोड़ा गया और यह सभी आज भी इस संस्था के सक्रिय कार्यकर्ता हैं।

संस्था का भवन :

प्रारंभ में संस्था का कोई अपना भवन या मकान नहीं था। संस्था के पाठ्यक्रमों को चलाने हेतु दिसपुर हायर सेकेंडरी स्कूल का सिर्फ एक कमरा मिला था, जो सिर्फ शनिवार और रविवार दो दिनों के लिए ही उपलब्ध था। संस्था का एक वर्ष बिता ही था कि इसी बीच दिसपुर हायर सेकेंडरी स्कूल ऑथरिटी ने अगले साल जगह देने से इनकार कर दिया। इसके बाद कोईराला जी राम नगीना सिंह जी से मिले, जो पूर्वांचल विद्यापीठ स्कूल तथा विल्डवर्थ लिमिटेड के मालिक थे। उन्होंने इस कार्यक्रम के लिए अपने स्कूल में जगह दे दी। इस प्रकार पुन: 2000 से यह पाठ्यक्रम पूर्वांचल विद्यापीठ स्कूल में चलने लगा।

लेकिन जब राम नगीना सिंह के लड़कों के हाथ इस विद्यालय का संचालन का दायित्व आया, तब वे शब्द भारती को जगह देने में आपत्ति करने लगे। फिर 2004 में गुवाहाटी के कनक भवन में मासिक 4000 रुपए पर एक किराए का मकान लेकर पूरी संस्था वहीं स्थानांतरित कर दी गई। सन 2004 से 2016 करीब 12 वर्षों तक शब्द भारती के समस्त कार्यक्रमों का संचालन यहीं से होता रहा। हालाँकि 2015-16 में असम सरकार ने कनक भवन के क्षेत्र को कॉमर्शियल घोषित कर दिया, जिससे यहाँ का किराया बढ़ गया। इसके बाद डॉ. अनंत कुमार नाथ के परामर्श से संस्था को उनके बेलतला स्थित मकान में स्थानांतरित कर दिया गया। किंतु पाठदान की सुविधा अभी भी न होने के कारण पाठदान व प्रशिक्षण की व्यवस्था शनिवार और रविवार को किराया देकर बेलतला कॉलेज में ही किया जाता रहा।

संस्था का नामकरण :

शब्द भारती (हिंदी संसाधन केंद्र) असम के गुवाहाटी शहर में राजभाषा हिंदी की एक सफल एवं सुव्यवस्थित प्रचारक रही है। यह संस्था यहाँ नि:स्वार्थ हिंदी की सेवा कर रही है। यह प्रयास किसी एक दिन का नहीं, बल्कि इसके पीछे एक संघर्षमय इतिहास है।

इस संस्था का प्रारंभिक नाम शब्द भारती नहीं था, बल्कि असम राज्य के राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के अधीन चलने वाला वाकसेतु अनुवाद पाठ्यक्रम था। लेकिन संस्था के तीसरे वर्ष ही कुछ विवाद खड़ा हो गया, जिसके कारण सभी फेकल्टी ने इसके अधीन रहकर काम न करने का फैसला किया। इसके लिए अब इसे एक स्वतंत्र संस्थान बनाने तथा उसके अधीन वाकसेतु अनुवाद पाठ्यक्रम चलाने की परिकल्पना की जाने लगी। सबसे पहले एक ड्राफट तैयार किया गया। इस दौरान कोईराला जी कई विद्वानों से मिले और उनसे इस सिलसिले में बात की, जिनमें श्री अजयेन्द्र नाथ त्रिवेदी जी प्रमुख थे। उन्होंने 'शब्द सरस्वती' नाम से एक संस्थान बनाने की सलाह दी, जहाँ राजभाषा हिंदी से संबंधित सब कुछ उपलब्ध हो। इनके अतिरिक्त डॉ. परेश चंद्र देवशर्मा, नॉर्थ गुवाहाटी हिंदी टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज, डॉ. विवेक कुमार श्रीवास्तव, गुवाहाटी विश्वविद्यालय, हिंदी विभाग तथा प्रागज्योतिष कॉलेज के हिंदी विभाग के अध्यक्ष डॉ. नंद किशोर सिंह आदि अनेक अनुभवी व्यक्तियों से सलाह-मशवरा के बाद अंतत: ड्राफ्ट में संशोधन किया गया और नए बनने वाले संस्थान का नाम 'शब्द सरस्वती' के बदले 'शब्द भारती' रखा गया। इस प्रकार 2001 की 4 जनवरी को 'शब्द भारती' का गठन हुआ। इसके साथ ही अजयेन्द्र त्रिवेदी जी ने इसके लिए 'हिंदी संसाधन केंद्र' टैगलाइन रखने का प्रस्ताव दिया। इसी कारण शब्द भारती का पूरा

नाम केवल शब्द भारती न होकर 'शब्द भारती (हिंदी संसाधन केंद्र)' नाम से पंजीकृत किया गया।

शब्द भारती की उपलब्धियाँ:

शब्द भारती आज असम प्रांत के हिंदी प्रचारक संस्थाओं में प्रमुख है। इस संस्था ने यहाँ के बच्चों को हिंदी का व्यावहारिक रूप से प्रयोग करना सिखाया। हिंदी भाषा के जरिए किस प्रकार सुनहरा भविष्य लिखा जा सकता है, उसका प्रमाण भी दिया। इस संस्था के जरिए ही पूर्वांचल के विद्यार्थी अनुवाद करने तथा इसमें महारत हासिल करते हुए राज्य तथा केंद्रीय सरकार के अनेक विभागों में अनुवादक के पद पर कार्य कर रहे हैं। राजभाषा हिंदी से किस प्रकार अन्य विभागों में नौकरियाँ ली जा सकती हैं, यह इस संस्था ने सिखलाया। चाहे वह मीडिया का क्षेत्र हो या बैंक तथा रेलवे का, मनोरंजन का हों या फिर विज्ञान का या फिर हो खेल का।

एक अच्छा अनुवादक बनकर किस प्रकार हम सफल हो सकते हैं तथा सरकारी नौकरियों के सपने देख सकते हैं, यह इस संस्था ने सिखलाया है। अनुवादक तथा इंटरप्रीटर बनकर अपने लक्ष्य तक आप कैसे पहुँच सकते है; यह संस्था आपको इसी बात की शिक्षा देती है।

पंजीकृत एवं सफल परीक्षार्थी :

शब्द भारती संस्था की शुरुआत केवल 7-8 विद्यार्थियों के साथ हुई थी। लेकिन पिछले 23 वर्षों में इस संस्था ने निरंतर अनेक विद्यार्थियों के जीवन को सँवारने में महत्वपूर्ण काम किया है। मूलत: यह कहा जा सकता है कि यह संस्था आज भी अपने निर्धारित लक्ष्य की ओर अग्रसर है। शब्द भारती द्वारा उपलब्ध कराए गए आँकड़ों के अनुसार संस्था की स्थापना से लेकर वर्ष 2022 तक 463 छात्रों का संस्था में पंजीकरण किया गया, जिनमें से 425 ने कोर्स पूरा किया। इनमें लगभग तीन सौ से अधिक छात्रों को सरकारी, अर्द्धसरकारी, निजी और बहुराष्ट्रीय कंपनियों में नौकरी लग चुकी है।

आज शब्द भारती के लिए यह गर्व का विषय है कि वह रोजगारोन्मुख तथा व्यवहारमूलक पाठ्यक्रम का प्रशिक्षण दे रही है। उसकी महत्ता व उपादेयता एवं प्रासंगिकता को देखकर भारत सरकार ने भी इसे सरकारी नौकरियों के लिए मान्यता प्रदान की है। अब असम तथा पूर्वांचल के युवा इस संस्थान से प्रशिक्षण प्राप्त करने के उपरांत देश के किसी भी कोने में अनुवादक का कार्य कर सकते हैं। और यह बात सही भी है, क्योंकि आज यहाँ के युवा देश के कोने-कोने में सरकारी तथा गैर सरकारी संस्थानों में कार्यरत हैं। इस अनुवाद पाठ्यक्रम की निरंतर बढ़ती हुई लोकप्रियता का ही परिणाम है कि अब इस पाठ्यक्रम की दूसरी शाखाएँ पूर्वोत्तर के अनेक राज्यों के साथ-साथ अनेक विश्वविद्यालयों में भी जैसे- अरुणाचल प्रदेश, नगालैंड, दुलियाजान और तेजपुर में आदि में खोली जा रही हैं।

अनुवाद के क्षेत्र में शब्द भारती :

अनुवाद का क्षेत्र आज विस्तृत हो गया है। आज यह हमारे जीवन का एक अनिवार्य शर्त की तरह बन चुका है, जिसके बिना मानों हम हमारे जीवन की कल्पना तक भी नहीं कर सकते। इसी से शब्द भारती द्वारा आयोजित वाकसेतु अनुवाद डिप्लोमा पाठ्यक्रम (Post Graduate Diploma in Translation) का महत्व भी स्पष्ट हो जाता हैं।

लगभग 20 वर्षों से शब्द भारती (हिंदी संसाधन केंद्र) अनुवाद के लिए एक वर्षीय स्नातकोत्तर डिप्लोमा कोर्स करवाती आ रही है। 2003 से आज तक यह संस्था अनुवाद और हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार के कार्य में सक्रिय होकर काम कर रही है। इसके लिए यहाँ के अनेक भाषाविद, प्राध्यापक तथा विद्वान भी नि:स्वार्थ भाव से प्रयासरत हैं। इसके फलस्वरूप अनेक युवाओं को राज्य तथा केंद्रीय सरकार के अनेक विभागों में अनुवादक के पद पर कार्य करने का मौका मिल सका। इसी कोर्स के द्वारा आज यहाँ के युवक भारतवर्ष के विभिन्न सरकारी तथा गैर-सरकारी के साथ-साथ कई अन्य निजी संस्थानों में नौकरी प्राप्त कर अपने पैरों पर खड़ा होने में समर्थ हो सके हैं।

यह संस्था प्रारंभ से ही अनुवाद से जुड़े हुए विषयों पर तथा अनुवाद संबंधित जागरूकता फैलाने हेतु मासिक एवं वार्षिक गोष्ठी एवं कार्याशालाओं का निरंतर आयोजन करती आ रही हैं। साथ-ही-साथ नए अनुवादकों को

प्रोत्साहित करने हेतु उन्हें सम्मानित एवं पुरस्कृत करने जैसे अनेक महत्वपूर्ण कार्य भी कर रही है।

अनुवाद ब्यूरो का पुनर्गठन :

शब्द भारती की यह एक नवीन पहल है, जिसके माध्यम से एक ऐसे मंच की कल्पना की गई है, जहाँ अनुवाद कार्य में इच्छुक विद्यार्थी काम करते हुए अनुभव के साथ-साथ धनार्जन भी कर सकें। इस अनुवाद ब्यूरो का हाल ही में पुनर्गठन किया गया, जिसके तहत न्यूनतम 28 विद्यार्थियों को काम पर रखने का प्रावधान किया गया है। आशा करते हैं कि उचित मार्गदर्शन में यह मंच असम के युवाओं के लिए सफल सिद्ध होगा।

पुस्तक प्रकाशन, विक्रय और प्रदर्शन :

शब्द भारती के उल्लेखनीय कार्यों में एक पुस्तक प्रकाशन भी रहा है, जिसकी शुरुआत 2013 से ही हो चुकी है।

अभी तक संस्था ने यहाँ के स्थानीय लेखकों तथा अनुवादकों द्वारा लिखे या अनुवादित हिंदी की कई पुस्तकों का आइएसबीएन में प्रकाशित करने की सुविधा प्रदान की है। इसके साथ उन पुस्तकों के लिए विक्रय का एक मजबूत नेटवर्क भी बनाया है। पूर्वोत्तर भारत में हिंदी पुस्तकों का जो अभाव रहा है, उसे दूर करना भी इस संस्था के उद्देश्यों में शामिल है।

'शब्द भारती' अपने पाठ्यक्रमों की पुस्तक 'अनुवाद सुधा भाग-1', और 'अनुवाद सुधा भाग-2' का प्रकाशन स्वयं ही करती है। इसके बाद अब हर साल हिंदी की पुस्तकों का प्रकाशन कार्य भी किया जाता रहा है, जिनमें प्रमुख है- 2019 में नव बोरा द्वारा अनुदित 'मोर जीवन सोवरण', जिसका हिंदी में 'मेरे जीवन की यादें', नाम से प्रकाशित किया गया।

2017 में 'इम्प्रेशन' और अजित बरदलै की असमिया कविताओं का हिंदी अनुवाद 'धूप की सुगंध की तलाश में', इससे पहले 2016 में करबी देवी, साहल कुमार और मोहन कोईराला की मौलिक कविताओं का संकलन 'बरसाती चांदनी का सफर', 2015 में हीराबाला देवी द्वारा बांगला से अनुवाद किया गया ग्रंथ 'गौड़ीय नृत्य की नृत्य परंपरा धारा का ओझा नृत्य' और प्रोफेसर दिलीप कुमार मेधि द्वारा संपादित 'भारतीय भक्ति आंदोलन और पूर्वोत्तर भारत के भक्ति आंदोलन में शंकरदेव और माधवदेव का योगदान', साथ ही साथ 2014 में ज्योतिष कुमार देव की मौलिक हिंदी कविताओं का संकलन 'जिन्दगी एक सौगात' और शब्द भारती द्वारा प्रकाशित शोध आलेखों का संकलन 'प्रेमचंद साहित्य का मूल्यांकन: वर्तमान के संदर्भ में' आदि उल्लेखनीय रहे हैं।

एसएससी कोर्स :

साल 2018 में संस्था द्वारा यह प्रयास किया गया कि एसएससी या अन्य सरकारी एजेंसियों द्वारा ली जाने वाली हिंदी अनुवादक की प्रतियोगी परीक्षाओं के लिए 'शब्द भारती' एक अभ्यास कोर्स शुरू करेगी, जो बिल्कुल नि:शुल्क होगा। आज इस कोर्स के जरिए अनेक विद्यार्थी अभ्यास करते हुए अनुवादक की नौकरी पा रहे हैं।

हिंदी की प्रथम ई-पत्रिका :

शब्द भारती की अन्य उपलब्धियों में से एक यह भी है कि इस संस्था ने सर्वप्रथम अहिंदी प्रांत में हिंदी भाषा की प्रथम ई-पत्रिका 'अनुवाद भारती' का सफल प्रकाशन किया। यह पत्रिका अहिंदी प्रांत में एक क्रांतिकारी कदम है, जिसके द्वारा अहिंदी प्रांत में हिंदी लेखन को प्रोत्साहन मिल सकेगा। शब्द भारती की इस ई-पत्रिका के प्रथम अंक में वर्तमान छात्र-छात्राओं, संकाय सदस्यों और हिंदी प्रेमियों की विविध, सुंदर, पठनीय और सुरुचिपूर्ण रचनाओं का समावेश रहा है।

'अनुवाद भारती' शब्द भारती की वार्षिक पत्रिका है, जिसके माध्यम से इसके पंजीकृत छात्र-छात्राओं के साथ-साथ अनेक शोधार्थी तथा प्राध्यापक व विद्वान अपनी रचनात्मक प्रतिभा का परिचय देते आ रहे हैं। अनुवाद भारती का यह सुनहरा सफर निरंतर जारी रहे, इसके लिए हम सबको प्रयास करना होगा।

'अनुवादश्री' पुरस्कार :

अभी तक जिन महान अनुवादकों को उनके अनुवाद-सेवा के लिए शब्द भारती ने 'अनुवादश्री' पुरस्कार प्रदान किया है, उनमें से निम्नलिखित नाम उल्लेखनीय हैं- श्रीमती निरूपमा फूकन (डिब्रूगढ़), नवारुण वर्मा (गुवाहाटी), चित्र महंत (गुवाहाटी), लोकनाथ भराली

(गुवाहाटी), डॉ. थानेश्वर शर्मा (गुवाहाटी), गिरिजा बरुवा (गुवाहाटी), दिनकर कुमार और वन्ति आशा चलिहा (गुवाहाटी), डॉ. भूषण पाठक (भवानीपुर)। 2014 से विभिन्न कारणों से 'अनुवादश्री' पुरस्कार नहीं दिया जा रहा है।

शैक्षणिक भ्रमण :

साल 2018 से संस्था द्वारा रियायत दर पर विद्यार्थियों के लिए अध्ययन यात्रा की शुरुआत की गई है, जिनमें पहली यात्रा बिहार के राजगीर, बोध गया आदि जगहों पर कराई गई तो वहीं दूसरी यात्रा 2019 में दार्जिलिंग और पशुपति के लिए कराई गई। हालाँकि इससे पहले भी संस्था की तरफ से पिकनिक के लिए विद्यार्थियों को किलिंग, सीताजखला, हाहिम, बोको, चंद्रपुर और उमत्रु का भ्रमण कराया गया है।

संवर्द्धन कार्य :

यह कार्य इस संस्था की एक नवीन सोच का परिणाम है, क्योंकि अक्सर देखा जाता है कि कुछ विद्यार्थी इस पाठ्यक्रम में भाग लेना भी चाहते हैं तो अपने घर से दूर गुवाहाटी में आकर रहने और पढ़ने में समर्थ नहीं होते। इसके निवारण हेतु शब्द भारती अब अपने प्रोग्रामों का विस्तार जगह-जगह करने लगी है। इसका सफल उदाहरण है हाल ही में किया गया एक कार्यक्रम, जो नीरजुलि, अरुणाचल प्रदेश में दो साल के लिए चलाया गया। उसके बाद कोहिमा, नागालैंड में भी यह कार्यक्रम दो साल तक चलाया गया। इसके बाद नगांव कॉलेज के तत्वावधान में भी दो वर्ष का यह कार्यक्रम चलाया गया। और पिछले वर्ष से यह कार्यक्रम लंका कॉलेज के हिंदी विभाग के अंतर्गत डॉ. गुणेश्वर सइकिया और हिटलर सिंह के नेतृत्व में चलाया जा रहा है।

शब्द भारती द्वारा किए गए कल्याणमूलक कार्य :

शब्द भारती संस्था के गठन का उद्देश्य ही समाज कल्याण था। पहले हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार का दायित्व निभाकर सबके लिए हिंदी को सुलभ बनाने का कार्य किया। वहीं दूसरी ओर अनुवाद तथा इंटरप्रेटर जैसे कोर्स की शुरुआत करते हुए बेरोजगार युवाओं का मार्गदर्शन किया। इसके बाद 2019 से शब्द भारती ने बीपीएल परिवार के विद्यार्थियों को पढ़ाने के लिए शुल्क में रियायत देने की व्यवस्था की। इसके साथ-साथ शब्द भारती द्वारा आयोजित कम्पेटेटिव परीक्षा में ज्यादा अंक लाने वाले कॉलेज, विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों को भी शुल्क में रियायत देने की सुविधा प्रदान की।

इनके अतिरिक्त शब्द भारती ने अनेक विद्यार्थियों को विभिन्न कल्याणकारी कार्यक्रमों से जोड़ा ताकि उनका मानसिक विकास त्वरित गति से हो और वे किसी भी सरकारी तथा गैर-सरकारी कार्यालयों में जाने के लिए अपना मनोबल दृढ़ कर सकें। आज विभिन्न प्राइवेट एजेंसियों के साथ शब्द भारती की बातचीत हो रही है कि इनके विद्यार्थियों को जॉब में रखने की सुविधा प्रदान की जाए। आज अनुवाद तथा राजभाषा अधिकारी संबंधित नौकरी के विज्ञापन, प्राइवेट एजेंसियों की नौकरी संबंधी विज्ञापन आदि भी हवाट्सएप ग्रुप में परिचालित कर विद्यार्थियों को उत्साहित करने का काम किया जा रहा है। साथ ही समय-समय पर विभिन्न प्रतियोगिताओं का आयोजन करके भी विद्यार्थियों को प्रोत्साहित करने का काम यह संस्था बखूबी कर रही है।

उपसंहार :

'शब्द भारती' एक हिंदी प्रचारक संस्था है। आज इसके लगभग 17 वर्ष पूरे हो चुके हैं। यह संस्था प्रारंभ से ही असम के गुवाहाटी शहर में हिंदी की नि:स्वार्थ सेवा करती आ रही है। यहाँ यह भी समझने की बात है कि इस कार्य में इसका मार्ग कभी आसान नहीं रहा। इस संस्था ने अपने जीवन के अनेक वसंत के साथ-साथ अनेक समस्याएँ भी झेली हैं, किंतु इतना होने पर भी यह आज भी उसी जोश और हौसले के साथ असम के गुवाहाटी शहर के साथ ही अन्य प्रांतों में हिंदी की नि:स्वार्थ सेवा हेतु आज भी अडिग होकर खड़ी है।

इतिहास गवाह है कि स्वतंत्र भारत में महात्मा गांधी, रवीन्द्रनाथ टैगोर, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, पंडित नेहरू और सुभाष चन्द्र बोस आदि महापुरुषों ने हिंदी को राष्ट्रभाषा व केंद्र सरकार की राजभाषा के रूप में अपनाने की जो परिकल्पना की थी, उस दिशा में शब्द भारती (हिंदी संसाधन केंद्र) का योगदान सराहनीय रहा है। हालाँकि

हिंदी भारत की राष्ट्रभाषा अब तक तो नहीं बन सकी है, लेकिन राजभाषा के रूप में इसे 1949 में स्वीकार किया गया। इसके पश्चात संविधान के अनुच्छेद 351 के तहत जो हिंदी की प्रचार- प्रसार की बातें कही गई थीं, उसी उद्देश्य व लक्ष्य को आगे रखकर शब्द भारती प्रयास करती आ रही है।

आज शब्द भारती असम प्रांत में अधिकतर हिंदी प्रेमी व विद्यार्थियों का वह मंच बनकर सामने आई है, जहाँ सौहार्द्र है, जो सभी को एकजुट होकर काम करने का माहौल बनाने में सक्षम है। यह खुशी की बात है कि आज हमारे युवा वर्ग, संकाय तथा अन्य सदस्य शब्द भारती को और अधिक निखारने हेतु तत्पर होकर काम में लगे हैं। आज शब्द भारती केवल मात्र एक शैक्षणिक संस्थान ही नहीं, बल्कि असम के सैकड़ों बेरोजगार युवाओं के लिए एक नवीन आशा की किरण है, जहाँ से वे अपने सपनों की उड़ान भर सकते हैं और अपने निर्धारित मंजिल को हासिल करने में सक्षम हो सकते हैं। ❑

संदर्भ :

- संपादक डॉ. अच्युत शर्मा : अनुवाद भारती (स्मारिका) द्वितीय स्थापना वर्ष समारोह, 6 मार्च, 2005, प्रकाशक शब्द भारती (हिंदी संसाधन केंद्र), गुवाहाटी-6, असम ।
- संपादक प्रो. अनंत कुमार नाथ : अनुवाद भारती (स्मारिका) सातवाँ स्थापना वर्ष समारोह, 8 अगस्त, 2010, प्रकाशक शब्द भारती (हिंदी संसाधन केंद्र), गुवाहाटी-6, असम ।
- संपादक डॉ. संजय कुमार सिंह : अनुवाद भारती (स्मारिका) आठवाँ स्थापना वर्ष समारोह, जून, 2012, प्रकाशक - शब्द भारती (हिंदी संसाधन केंद्र), गुवाहाटी-6, असम ।
- श्री मनोज कुमार : अनुवाद भारती: प्रवेशांक, वर्ष -2020, ई-पत्रिका, प्रकाशक - शब्द भारती (हिंदी संसाधन केंद्र), सप्तर्षि पथ, बनगाँव, बेलतला, गुवाहाटी-28, असम।

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

राष्ट्रबोध

भारतेंदु की गजलों में राष्ट्रीयता

डॉ. जियाउर रहमान जाफरी

सहायक प्रोफेसर
स्नातकोत्तर हिंदी विभाग
मिर्जा गालिब कॉलेज गया, बिहार
9934847941, 6205254255
zeaurrahmanjafri786@gmail.com

भारतेंदु का जन्म 1850 में और मृत्यु 1885 में हुई। कहने का अर्थ यह है कि भारतेंदु ने जिंदगी के सिर्फ पैंतीस वसंत देखे। जैसा कि तुलसी के बारे में कहा जाता है कि वह जन्म के साथ राम – राम बोलने लगे थे, इसलिए उनके बचपन का नाम ही रामबोला पड़ गया। वो स्थिति भारतेंदु के साथ नहीं रही होगी। इस प्रकार हम देखते हैं कि साहित्य रचना करने के लिए भारतेंदु के पास मुश्किल से उन्नीस–बीस वर्ष रहे होंगे। इसी उन्नीस से बीस सालों में उन्होंने गद्य–पद्य की शायद ही कोई विधा हो, जिसमें अधिकारपूर्वक न लिखा हो। उन्होंने साहित्य में कई नई और मर चुकी विधाओं को पुन: जीवित किया। दूसरी भाषाओं से अनुवाद करते हुए उन्होंने हिंदी की समृद्धि की। सिर्फ साहित्य ही नहीं, उन्होंने धर्म पर भी लिखा। रीति–रिवाज और समकालीन बुराइयों पर भी खुलकर अपनी बातें रखीं। कई पत्र–पत्रिकाओं का संपादन किया, साथ ही कई संगठन की स्थापना की। यह उनका प्रभाव था कि उनकी मृत्यु के बाद भी रामलीला मंडली, हिंदी नाट्य समिति, भारतेंदु नाटक मंडली और काशी नागरिक नाटक मंडली जैसी संस्थाएँ खुलती रहीं।

भारतेंदु के पूरे साहित्य में जो सबसे बड़ी चिंता है, वह सामाजिक कुरीतियों और देश की स्वाधीनता को लेकर है। उनमें धर्म के प्रति भी भक्ति है, लेकिन यह इबादत भी देशभक्ति से जुड़ी हुई है। भारतेंदु का समय नवोत्थान का समय था। भारत गुलामी का दंश झेल रहा था और समाज में भाँति–भाँति की बुराइयाँ प्रचलित थीं। देश की बड़ी आबादी बिना वस्त्र और भोजन के दिन गुजार रही थी और देश की महत्वपूर्ण निधियाँ विदेशों में जा रही थीं। धर्म के नाम पर पूरी तरह से पाखंड चल रहा था। भारतेंदु का दिल यह सब देखकर तड़प रहा था। उन्होंने अपने तेरह नाटकों में से लगभग नौ नाटकों में इसी सामाजिक बुराई पर कटाक्ष किया है। 'वैदिक हिंसा हिंसा न भवति' से लेकर 'भारत– दुर्दशा' और 'अंधेर नगरी' इसके उदाहरण हैं। 'सत्य हरिश्चंद्र' नाटक मैं भारतेंदु सिर्फ सत्य का पाठ नहीं पढ़ाते, बल्कि यह बताते हैं कि राजा का धर्म क्या होना चाहिए और जब राजा अपने धर्म का

निर्वाह ठीक तरह से नहीं कर पाता है तो वहाँ से भलाई रुखसत हो जाती है। 'सत्य हरिश्चंद्र' नाटक का एक ऐसा ही पात्र कहता है- 'मरे रे मरे.... जले रे जले.. कहां जाएं सारी पृथ्वी तो हरिश्चंद्र के पुण्य से ऐसी पवित्र हो रही है कि कहीं हम ठहर नहीं सकते।'

यह ऐसा समय है, जहाँ का सम्राट एक ऐसा ब्रिटिश शासक बना हुआ है, जिसके पास न धर्म है ना इंसानियत। भारतेंदु अपने नाटक अंधेरी नगरी में इसी अन्यायी राजा को फाँसी के फंदे पर लटका कर यह सिद्ध करते हैं कि एक दिन ऐसे चौपट राजाओं से मुक्ति मिल कर रहेगी, जो राजा गुनहगार को नहीं कारीगर, चूने वाले, भिश्ती, कसाई आदि को दंड के लिए चुनता है। ऐसा नहीं है कि भारतेंदु की कथनी और करनी में फर्क है। वो सिर्फ लिखते नहीं करके भी दिखाते हैं। इसलिए उन्होंने अंग्रेज की ऑनरेरी मजिस्ट्री छोड़ दी थी।

भारतेंदु जिस समाज में जी रहे थे, उस समाज की स्त्रियाँ हाशिये पर थीं। भारतेंदु को पता था कि जिस समाज की स्त्री मुख्यधारा में शामिल नहीं होती, वह समाज कभी तरक्की नहीं कर पाता। इसलिए भारतेंदु अपने नाटकों में स्त्री की दीन-हीन दशा का वर्णन न कर उसे एक मजबूत कड़ी के रूप में दिखाते हैं। उनके नाटक 'नील देवी' की क्षत्राणी वीरता की मिसाल पेश करती है। भारतेंदु का मन करता है कि भारत की नारी भी अंग्रेजों की तरह शाना ब शाना खड़ी रहें। वो लिखते हैं- 'जब मुझे अंग्रेज रमनी निज निज पति गण के साथ प्रसन्न वदन इधर से उधर फर फर पुतली की भांति फिरती हुई दिखलाई पड़ती हैं, तब इस देश की सीधी साधी स्त्रियों की अवस्था का स्मरण हो आता है और यही बात मेरे दुख का कारण बनती है।'

भारतेंदु का स्पष्ट मानना है कि नारी जाति के उद्बोधन के बिना राष्ट्र की उन्नति संभव नहीं है। भारतेंदु न स्त्री की दुर्दशा देखने के कायल हैं और न वह भारत के ऐसे हालात को बर्दाश्त कर रहे हैं। 'हा हा भारत दुर्दशा नहीं देखी जाई' लिखकर वह अपनी चिर तकलीफ का बयान करते हैं। शायद यही कारण है कि डॉ. श्यामसुंदर दास, हिंदी साहित्य में राष्ट्रय भावना का आरंभ भारतेंदु के नाटक 'भारत दुर्दशा' से मानते हैं। भारतेंदु में देशभक्ति इतनी गहरी है कि वह देश के लिए तलवार उठाने पर भी आमादा हो जाते हैं और 'उठहु वीर तरवार खींचि' की घोषणा कर देते हैं। उन्हें पता है कि देश की परतंत्रता का सबसे बड़ा कारण आपसी मतभेद है, और बिना इसे दूर किए ब्रिटिश हुकूमत से लोहा लेना संभव नहीं है। भारतेंदु की बहुत सारी कविताएँ हैं, जिसमें वह राष्ट्रीय एकता पर बल देते हैं-

'इनसौ कछु आसा नहिं यह तो सब विधि बुधि बल हीन
बिना एकता बुद्धि कला के भए सब ही विधि दीन'

इसके लिए भारतेंदु चीख-चीख कर जगाते हैं। उन्हें पता है कि अगर हम सोए रह गए तो फिर जाग नहीं पाएँगे। उन्हें हैरत है कि भारत डूब रहा है और हम सुख के नींद ले रहे हैं। ऐसे में भारतेंदु जागरण के गीत गाते हैं-

'डूबत भारत नाथ बेगि जागो अब जागो
आलस सब एहि दहन हेतु चहुँ दिसि सों लागो'

भारतेंदु जानते हैं कि हमारे देश की सभ्यता सब देशों से ज्यादा विकसित थी। ऐसा भारत आज कहाँ पहुँच गया है-

'जो भारत जग में रहौ सब सों उत्तम देश
ताही भारत में रहों अब नहिं सु:ख को लेस'

भारतेंदु ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि वह ऐसी कृपा करें कि भारत के पुराने दिन लौट आएँ-

'जागो जागो अब सांवरे
सब कोउ रुख तुमरो ताकत'

भारतेंदु का जन्म बनारस में हुआ था। बनारस सदा से ही धर्म और दर्शन का महत्वपूर्ण केंद्र रहा है। यह अलग बात है कि बनारस की जमीन में धर्म के नाम पर ठग और पाखंड भी खूब देखे हैं। बनारस साहित्य का केंद्र भी रहा है। वर्ग भाषा को लोकप्रिय बनाने में बनारस के साहित्यकारों की महती भूमिका रही है। भारतेंदु पर इस माहौल का प्रभाव पड़ा और उनके अंदर बाल्यावस्था से ही साहित्य के बीज फूटने लगे। भारतेंदु एक साहित्यकार के साथ समाज सुधारक भी थे। यह अलग बात है कि उनके साहित्य के आगे उनके सोशल रिफॉर्मर का रूप दब-सा गया है। उन्होंने वाराणसी की धर्म नगरी में रहकर भी धार्मिक कट्टरता और अंधविश्वास

की आलोचना की। कट्टर वैष्णव होने के बावजूद उन्होंने वैष्णव धर्म के दोष बताए। बाल विवाह का विरोध किया। स्त्री शिक्षा पर उनका हमेशा ध्यान रहा है। यहाँ तक कि उन्होंने बालिकाओं के लिए स्कूल भी खोले, जो आज हरिश्चंद्र डिग्री कॉलेज के नाम से जाना जाता है। अपने बनारस के बारे में उन्होंने लिखा है कि-

'बनारस की जमीं नाजां हैं जिसकी पायबोसी पर
अदब से जिसके आगे चर्ख ने गर्दन झुकाई है'

भारतेंदु ने लिखने के साथ लेखकों को बनाने का भी काम किया। हरिश्चंद्र पत्रिका ने भारतेंदु युग के कई लेखकों का निर्माण किया। भारतेंदु एक देशभक्त साहित्यकार थे। देश की दुर्दशा से उनका भी हृदय क्षुब्ध होता था। देश की गौरव-गाथा कहने वाले प्रतीक चिह्न उन्हें दुख पहुँचाते थे-

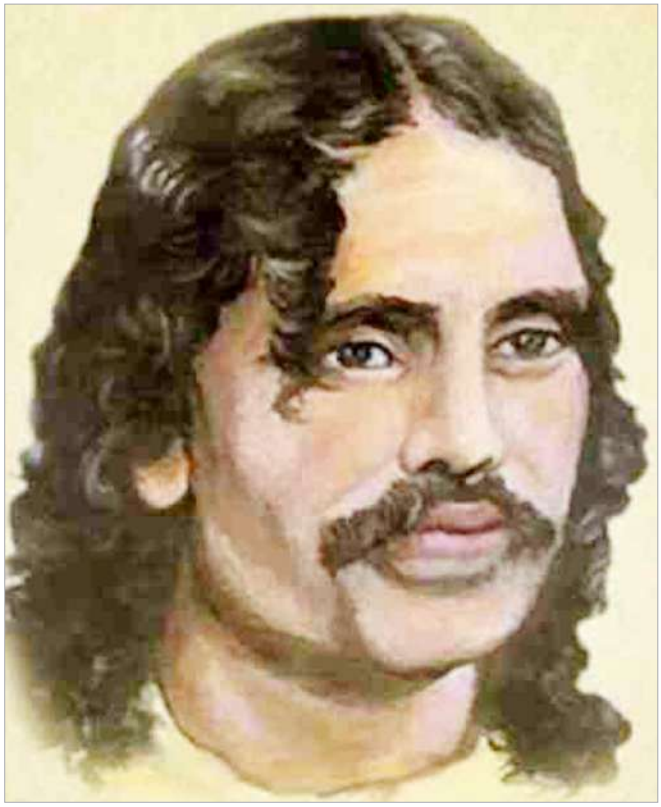

'हाय पंचानद हा पानीपत
अजहुं रहे तुम धरनि विरात'

भारतेंदु देश की तरह निज भाषा का भी सम्मान करते थे। वह चाहते थे कि निज भाषा राजकाज की भाषा बने। निज भाषा से उनका मतलब हिंदी भाषा से था। वो हिंदी के पक्षधर थे, जबकि हिंदी उनकी मातृभाषा नहीं थी। उन्होंने उर्दू -फारसी का भी अध्ययन किया था। भारतेंदु हिंदी को उर्दू से अलग कर नहीं देखते थे। एक जगह उन्होंने लिखा है- हिंदी और उर्दू में अंतर क्यों है? हम बिना संकोच के उत्तर देते हैं भाषाओं में अंतर नहीं है, क्योंकि व्याकरण के व्यक्तियों और नियम दोनों के एक हैं। हिंदी और उर्दू ही नहीं, भारतेंदु हिंदू और मुसलमान को भी एक नजर से देखते थे। उन्हें पता था देश को मजबूती तभी मिलेगी, जब यह दोनों संप्रदाय एक-दूसरे के निकट आएँगे। बलिया के एक ऐतिहासिक भाषण में उन्होंने कहा था- यह समय इन झगड़ों का नहीं है। हिंदू, जैन, मुसलमान सब आपस में मिलिए। यहाँ तक कि उन्होंने मुसलमानों से खासतौर से अपील की थी- 'ऐसी बातें जो हिंदुओं का जी दुखाने वाला हो न करें.. चलो हिंदुओं के साथ तुम भी दौड़ो एक - एक दो होंगे। अपने लड़कों को अच्छी तालीम दो, पेंशन और वजीफा या नौकरी का भरोसा छोड़ो।'

आज धर्म के नाम पर जितनी नफरत है, भारतेंदु धर्मों के बीच उतनी ही मोहब्बत बढ़ाने का प्रयत्न करते थे। गुणाकर मुले की मानें तो- 'भारतेंदु इस्लाम के प्रशंसक थे पर यह भी सच है कि उनकी कृतियों में यत्र तत्र कुछ ऐसे कथन मिलते हैं जिससे मुसलमानों की भावना को कुछ चोट पहुंच सकती है। पर हमें यह स्वीकार करना होगा कि भारतेंदु बुनियादी तौर पर समन्वयवादी थे।'

वास्तव में भारतेंदु में दूरदर्शिता की कोई कमी नहीं थी। वह एक सजग लेखक थे, जो अपने वक्त और हालात से मुँह मोड़ कर नहीं रह सकते थे। उन्होंने अपने गुरु राजा शिवप्रसाद सितारे हिंद की तरह अंग्रेजों की चापलूसी और बखान नहीं किया। हाँ, अंग्रेजों की कुछ

चीजें हैं, जो उन्हें अच्छी लगी तो उन्होंने उसकी तारीफ की। लेकिन कहीं से इसे राजभक्ति की संज्ञा नहीं दी जा सकती। अगर उनमें राज भक्ति होती तो वह ऐसा नहीं लिखते, जैसा उन्होंने 26 फरवरी, 1874 के कवि वचन सुधा में लिखा था- 'क्या यह अनीति नहीं है कि अनुमानत: दो सौ वर्ष हुए इनका अधिकार किस देश में है। उन्होंने हमारे धन-धान्य की वृद्धि में कोई उपाय नहीं किया। केवल अपनी भाषा सिखाई और सब व्यापार और धन अपने हस्तगत किए।'

अंग्रेजों ने सबसे पहले भारत के फलते-फूलते कपड़ा उद्योग और कृषि को अपना निशाना बनाया। भारतेंदु उनकी बुरी नियत जानते थे, इसलिए उन्होंने जनता से विलायती कपड़े पहनने की अपील की । वह चाहते थे कि लोग हिंदुस्तानी कपड़े पहनें। कवि वचन सुधा में उन्होंने स्पष्ट लिखा- 'हम लोग आज के दिन से कोई विलायती कपड़े न पहनेंगे और जो कपड़ा पहले से मोल ले चुके हैं और आज की मिती तक हमारे पास है उनको तो नष्ट हो जाने तक काम में ला देंगे, पर नवीन मोल लेकर किसी भांति का भी विलायती कपड़े न पहनेंगे। हिंदुस्तान ही का बना कपड़ा पहनेंगे।'

कहना ना होगा गांधी ने जिस खादी और देसी उद्योग की बात की थी, भारतेंदु उसे पहले ही उठा चुके थे। असल में अंग्रेज हम भारतीयों पर अपना लिबास, अपनी भाषा, अपना रहन-सहन, अपनी संस्कृति को लादना चाहते थे ताकि भारत का अंग्रेजीकरण हो सके और यहाँ का उत्पादन आसानी से इंग्लैंड जा सके। भारतेंदु ने अंग्रेजों की इस धूर्तता का पहले ही पर्दाफाश कर दिया था। उन्हें पता था कि अंग्रेजों की यह कूटनीति बहुत दिनों तक चलने वाली नहीं है। उन्होंने 1874 में ही यह घोषणा कर दी कि अंग्रेज इस देश को छोड़कर एक दिन भागेगा। 6 जुलाई, 1874 के कवि वचन सुधा में वह लिखते हैं- आज जिस प्रकार अमेरिका उपनिवेषित होकर स्वाधीन हुआ, वैसे भी भारतवर्ष भी स्वाधीनता लाभ कर सकता है।

भारतेंदु का हृदय देश की दशा पर दुखी था। भारतेंदु जहाँ अंग्रेजों की खबर लेते हैं, वहीं देश के लोगों की अकर्मण्यता और काहिलीपन पर भी सवाल खड़े करते हैं। वह भगवान से प्रार्थना करते हैं कि वह उसकी बुजदिली और काहिली को दूर कर दे-

'डूबत भारत नाम बेगी जागो अब जागो
आलस सब एही दहन हेतु चहु दिसि सों जागो'

भारतेंदु उसे जगाते हैं, जो आराम से सोए हुए हैं, भले देश जल रहा हो। भारतेंदु उन्हें भी पहचानते हैं, जो देश में फूट डालने की कोशिश कर रहे हैं और राजसत्ता उनकी फूट पड़ने से खुश हो रही है। सीधी-सी बात है उससे उनकी कार्य सिद्धि हो रही है -

बैर फूट ही सो भयो सब भारत को नास
तबहु न छाडत महि सब बंधे मोह के फांस'

भारतेंदु का प्रसिद्ध प्रसन्न अंधेर नगरी भी इसी जड़ता को केंद्र बिंदु बनाकर लिखा गया था। यहाँ जिस शासक का जिक्र है वह कोई और नहीं अंग्रेज है, और टके सेर में सब कुछ ले लेने वाले आलसी हम सब भारतीय हैं। पूरा नाटक समाजिक कुरीतियों, कुप्रथा, मूर्खता और विदेशी सम्राट की धांधली पर करारा प्रहार करता है। भारतेंदु ऐसे लोगों के लिए बार-बार उद्बोधन के गीत गाते हैं-

'जागो जागो रे भाई
सोबत निसि बैस गंवाई
जागो रे भाई
निसि को कौन कहै दिन बीत्यो काल रीति चली आई'

यह सिर्फ एक रात की बात नहीं है, हम युगों- युगों से सोए पड़े हैं। भारतेंदु बार-बार सुषुप्तावस्था के बीच चेतना जगाने का काम कर रहे हैं।

भारतेंदु मात्र कविता, नाटक, प्रहसन, भाण, मुकरी स्यापा, मुक्तक, लेख, भाषण आदि से ही देशभक्ति नहीं जताते हैं, बल्कि उनकी गजलों में भी यही ललकार है। यह अलग बात है कि भारतेंदु की गजलों को लेकर अब तक स्वतंत्र मूल्यांकन नहीं हो सका। बस जहाँ जरूरत पड़ी जिक्र भर कर दिया गया।

भारतेंदु हिंदी में गजलें रसा के तखल्लुस (उपनाम) से लिखते थे। यानी उनका पूरा नाम शायरी में भारतेंदु हरिश्चंद्र रसा था। हिंदी में गजल की शुरुआत को लेकर विद्वानों के अलग-अलग विचार हैं। आलोचक का एक वर्ग अमीर खुसरो, दूसरा कबीर तो तीसरा भारतेंदु या

निराला को हिंदी का पहला गजलकार मानता है। वस्तुस्थिति जो भी हो, हिंदी गजल को वास्तविक रूप में रखने का श्रेय भारतेंदु हरिश्चंद्र और उसे स्थापित करने का श्रेय दुष्यंत कुमार को जाता है। अगर दुष्यंत ने होते तो आज हिंदी गजल जहाँ है वहाँ नहीं होती, जैसा कि रोहिताश्व अस्थाना का भी कथन है कि- 'व्यापक स्तर पर हिंदी गजल का विकास सूर्यकांत त्रिपाठी निराला और दुष्यंत के समय से ही हुआ, किंतु स्फूट रूप में गजल के तत्व हिंदी पद साहित्य के इतिहास में पूर्व भारतेंदु युग से ही मिलते रहे हैं।'

भारतेंदु की नजरों में तीन सवाल मूल रूप से दिखलाई पड़ते हैं। उनकी अधिकतर गजलें प्रेम संबंधी हैं। इसमें व्यक्तिगत प्रेम भी है और राष्ट्रप्रेम भी। दूसरे प्रकार की गजलों में व्यंग्य की प्रवृत्ति पाई जाती है और तीसरे प्रकार की वह गजलें हैं, जिसमें सामाजिकता के दर्शन होते हैं। हिंदी गजल परंपरा में भारतेंदु की सबसे बड़ी देन यह है कि उन्होंने खड़ी बोली हिंदी में उर्दू बहरों का प्रयोग कुशलतापूर्वक किया है। रोहिताश्व अस्थाना मानते हैं कि उनकी नजरों में प्रेम की मधुर चासनी टपक पड़ती है। भारतेंदु की एक गजल में महारानी विक्टोरिया के गुणों का बखान किया गया है, साथ ही उनके भारत आगमन पर मुबारकबाद दी गई है-

उसको शहंशाही हर बार मुबारक होवे
केसर ए हिंद का दरबार मुबारक होवे
बाद मुद्दत के हैं देहली के फिरे दिन यारब
तख्ते ताऊस तिलाकार मुबारक होवे
बागबाँ फूलों से आबाद रहे शहने चमन
बुलबुलों गुलशन ए बेखार मुबारक होवे
जम्जमो में तेरे बस कर दिए लब बंद रसा
यह मुबारक तेरी गुम्मार मुबारक होवे'

हम जानते हैं कि महारानी विक्टोरिया का भारत के प्रति नजरिया कुछ अलग तरह का था। उन्हें भारत की चीजें पसंद थीं। वह भारत की खबर रखती थीं। उन्हें यहाँ के मसाले अच्छे लगते थे, वह विवाह के बाद भी पति को राजकाज से दूर रखती थीं और भारत में मुंशी अब्दुल करीम से उनके रागात्मक संबंध प्राय: चर्चा में रहते थे।

भारतेंदु आधुनिक युग के प्रवर्तक थे। भारतेंदु ने साहित्य की लगभग हर विधा में लेखन की और साहित्य की लगभग तमाम रसों का आस्वादन कराया। वे जब नाटक लिखते हैं तो उनमें राष्ट्र भावना होती है। उनके निबंधों में सामाजिक सुधार का जिक्र रहता है। कविताओं में जहाँ असंतोष और भक्ति भावना है, वहीं जब वह गजल लिखते हैं तो उसमें प्रेम का स्वर सर चढ़कर बोलता है। जाने-माने गजल आलोचक ज्ञानप्रकाश विवेक की मानें तो- 'हरिश्चंद्र भारतेंदु की गजलें बेशक प्रेम परक हैं, लेकिन गजलीयत लोच और नाद सौंदर्य उत्तम है।'

भारत पर परतंत्रता की बेड़ियाँ हैं। यहाँ के कच्चे माल इंग्लैंड जा रहे हैं। भारतीयों को न खाने का अन्न और न पहने का वस्त्र है। ऐसे में भारतेंदु का दिल कलपता है और उनकी गजल यों मुकम्मल होती है-

'आ गई सर पर कजा तो सारा सामां रह गया
ऐ फलक क्या-क्या हमारे दिल में अरमां रह गया
बागबां है चार दिन की बागे आलम में बहार
फूल सब मुरझा गए खाली बयांबां रह गया
इतना एहसां और कर लिल्लाह ऐ दस्ते जुनूं
बाकी गरदन में फकत तारे गिरेबां रह गया'

शायद ही किसी ने परतंत्र भारत में इस तरह की गजलें लिखी हों। भारतेंदु पहले शायर हैं, जो अंग्रेजी राज्य में अंग्रेज संबोधन के साथ गजलें, कविताएँ और मुकरियाँ लिखते हैं।

उनका दिल देश की हालत देखकर मायूस है। ऐसे में वह मजीद सताने से मना करते हैं-

'दिल आतिशे हिजरां से जलाना नहीं अच्छा
ऐ शोला रुखो आग लगाना नहीं अच्छा
सोने दो शबे वसले गरीबां है अभी से
ऐ मर्ग ठहर जा अभी आना नहीं अच्छा'

ब्रिटिश साम्राज्य का सारा ध्यान अपनी तरफ है। ऐसे में भारतेंदु शेर लिखते हैं-

'उठाकर नाज से दामन भला किधर को चले
इधर तो देखिए बहर-ए-खुदा किधर को चले'

वह हुकूमत को चैलेंज देते हैं और माजी की याद कराते हैं कि-

'या चार दिन के तमाशे हैं आइ दुनिया के
रहा जहां में सिकंदर ना और जम बाकी'

भारतेंदु अपनी गजलों में अंग्रेज शासकों के लिए मसीहा शब्द का व्यंग्यात्मक प्रयोग करते हैं-

'सैकड़ों मुर्दे जलाए ओ मसीहा नाज से
मौत शर्मिंदा हुई क्या क्या तेरे एजाज से'

भारतेंदु युग, जिसे नवजागरण काल के नाम से भी पुकारा जाता है। भारतेंदु के पूर्व के साहित्य का अध्ययन करें तो हम पाएँगे कि मूलत: उसमें कविताओं की ही प्रचुरता है। लेकिन भारतेंदु युग में गद्य और पद्य की तमाम विधाएँ अपना-स्थान बना पाती हैं। पत्रकारिता, रिपोर्ताज, पत्र, यात्रा वृत्तांत आदि विधाएँ खालिस भारतेंदु युग की देन हैं। काव्य के क्षेत्र में भी पुरानी शैलियाँ ध्वस्त होती हैं और नई नई विधाओं का जन्म होता है। कविता की पारंपरिक वस्तु बदलती है, बल्कि कथ्य, छंद, शिल्प में भी परिवर्तन आते हैं। दोहा, कवित्त, छप्पय, सवैया, कुंडलियाँ यह सभी भारतेंदु के प्रिय छंद हैं। वह गजल के अलावा ठुमरी, कजली, लावणी, रेखता, दादरा आदि की भी रचना किया करते थे। उनके समय में प्रेमघन जहां रोला, दोहा और सवैया लिख रहे थे, तो प्रताप नारायण मिश्र कवित्त, कजली और गजल की तरफ मुखातिब थे। इस प्रकार पूरा भारतेंदु युग छंदों के प्रयोग में जी रहा था। सबसे बड़ी बात इस तरह से खड़ी बोली का विकास हो रहा था। जहाँ तक बात भारतेंदु की गजल की है, डॉ. इंद्र नारायण सिंह का साफ अभिमत है कि खड़ी बोली हिंदी में गजल लिखने का श्रेय भारतेंदु को ही जाता है। कहते हैं कि भारतेंदु ने देवनागरी लिपि में गुलजार ए पुरवहार नाम का एक गजल संग्रह भी प्रकाशित कराया था, पर वह अब अप्राप्य है। आज भारतेंदु की गजलों को लेकर जो शोध हो रहे हैं, वह गजलें भारतेंदु ग्रंथावली या इंद्रसभा नाटक आदि में यत्र-तत्र मौजूद हैं।

भारतेंदु की नजरों में जितनी गहराई है, उतनी ही गजलियत भी। उनकी कविताओं में जहाँ प्रेम का गहरा रंग है, वहीं उनकी गजलों में इश्के मिजाजी के साथ इश्के हकीकी भी है। भारतेंदु का प्रेम देश के प्रति भी है, और व्यक्ति तथा समाज से भी मुखातिब है। वो उदाहरण देकर बताते हैं कि जहाँ सिकंदर जैसा शक्तिशाली सम्राट रवाना हो गया, वहाँ और लोगों की क्या बिसात है?

'आज तक आईना वश हैरान है इस फिक्र में
कब यहां आया सिकंदर और रवाना हो गया'

बाबू भारतेंदु पर पारसी रंगमंच का भी प्रभाव था। उन्होंने अपनी कई कविताओं में कसीदे वाली शैली भी अपनाई है-

'आज यह फतेह का दरबार मुबारक होए
मुल्क ये तुझको शहरयार मुबारक होए'

भारतेंदु अपनी गजलों में परतंत्रता के कई चिह्न अथवा प्रतीक योजना का इस्तेमाल करते हैं। कफस, सैयाद बुलबुल, परवाना ऐसे ही प्रतीकात्मक शब्द हैं। इन शब्दों से बने अशआर उदाहरण स्वरूप देखे जा सकते हैं-

'रिहा करता नहीं सैयाद हमको मौसम ए गुल में
असराने कफस लो तुमसे अब रुखसत हमारी है'

'जान दी आखिर कफस में अंदलीबे जार ने
मुजदहे सैयाद वीरांआशिकाना हो गया'

'फसलें गुल में रिहाई की न कुछ सूरत हुई
कैद में सैयाद मुझको एक जमाना हो गया'

गजल के मिजाज के बारे में महेश अग्रवाल ने लिखा है कि दरअसल गजल विश्व बंधुत्व की भावना का प्रचारक भी रही है, तथा जियो और जीने दो का संदेशवाहक भी....यह संकीर्णता से ऊपर उठकर शांति और सद्भाव की महत्ता स्थापित करने का भरसक प्रयास करती है। भारतेंदु भी यही कार्य करते हैं-

'दिल आतिशे हिजरां से जलाना नहीं अच्छा
ऐ शोला रुखों आग लगाना नहीं अच्छा'

'जहां देखो वहां मौजूद मेरा कृष्ण प्यारा है
उसी का सब है जलवा जो जहां में आशकारा है'

भारतेंदु की गजलों की यह खूबी है कि तमाम आलोचकों को भारतेंदु के अलग-अलग तेवर पसंद आते हैं। विनीता गुप्ता की मानें तो उर्दू गजल के समानांतर कबीर और अमीर खुसरो से लेकर आज तक हिंदी गजल की परंपरा चली आ रही है। भारतेंदु युग की इन हिंदी गजल में उर्दू शब्दों और मुहावरों का स्पष्ट प्रभाव

परिलक्षित होता है।

डॉ. जयराम सूर्यवंशी के विचार भी कुछ ऐसे ही हैं– भारतेंदु युग की गजलों में भारतीय जनजीवन एवं हिंदी मुहावरों का प्रयोग हुआ है।

सच तो यह है कि भारतेंदु के समय में देश का माहौल कुछ ऐसा है कि लेखक को रंग और नूर के त्योहार होली में भी उनका दिल नहीं लगता–

'नहीं यह है गुलाल सुर्क उड़ता हर जगह प्यारे
यह आशिकी है आहे यार आतिश बार होली में

भारतेंदु वह शायर हैं, जो सच को सच और झूठ को झूठ मुँह पर बोलने का साहस रखते हैं–

'सैकड़ों मुर्दे जलाए और मसीहा नाज से
अब खुले पर भी तो वाकिफ नहीं परवाज से'

'फिर यह भी कहते हैं
फंदे से मेरे कोई निकलने नहीं पाता
इस गुलशन ए आलम में भी बिछा दाम है प्यारे'

भारतेंदु की शायरी में कत्ल, कफस, पिंजरा, फंदा, कजा (मौत) गिरेबां, जैसे शब्द बार- बार इस्तेमाल होते हैं। यह वह शब्द हैं, जो कहीं हमारी दास्तां का तो कहीं हमारी निर्बलता का प्रतीक हैं। भारतेंदु के कुछ शेर देखे जा सकते हैं–

'वह गैरों की अदा से कत्ल जब बेबाक करते हैं
तो उसकी तंग को हम आह किस हैरत से सकते हैं
उड़ा लाए हो यह तर्जे सुखन कैसे बताओ तो
दमे तकदीर गोया बाग में बुलबुल चहकते हैं'

'आ गई सर पर कजा लो सारा सामां रह गया
ऐ फलक क्या-क्या हमारे दिल में अरमां रह गया
बागबां है चार दिन की बागे आलम में बहार
फूल सब मुरझा गए खाली बयाबां रह गया
इतना एहसां और कल लिल्लाह ऐ दस्ते जुनूं
बाकी गर्दन में फकत मेरे गिरेबां रह गया'

शायर इस गुलामी के पंजे से निकल जाने की जद्दोजहद करता है–

'रिहा करता है सैयादे सितमगर मौसम ए गुल में
असीराने कफस तुमसे अब रुखसत हमारी है'

शायर ऐसे ही सितमगर के लिए जल्लाद शब्द का इस्तेमाल करता है। शायद इससे उपयुक्त और कोई शब्द हो भी नहीं सकता–

'सफाई देखते ही दिल धड़क जाता है ऐ बिस्मिल
अरे जल्लाद तेरे तेग की क्या आबदारी है'

1867 में महारानी विक्टोरिया का आगमन होता है। भारतेंदु को भरोसा है कि विक्टोरिया के शासन में परिस्थितियाँ बदलेंगी। इसलिए वह उन्हें मुबारकबाद भी देते हैं–

'उनको शहंशाही हर बार मुबारक होवे
कैसरे हिंद का दरबार मुबारक होवे'

पर उनका यह भ्रम जल्दी ही टूट जाता है–

'रिहा करता नहीं सैयाद हमको मौसम ए गुल में
कफस में दम जो घबराता है सर दे दे पटकते हैं'

'जान दी आखिर कफस में अंदलीबे जार ने
मुज्दा है सैयद वीरां आशियाना हो गया
ख्वाबे गफलत से जरा देखो तो कब चौके हैं हम
काफिला मुल्के अदम का जब रवाना हो गया
फसले गुल में भी रिहाई की कोई सूरत नहीं
कैद मे सैयाद मुझको एक जमाना हो गया'

आखिर हमारी अपनी मिट्टी खुद से ही हमें कैसे अलग कर सकती है। शायर बस इतना ही इल्तजा करता है–

'पसे मुर्दन तो रहने दे जमीं पर ऐ सबा मुझको
कि मिट्टी खाकसारों नहीं बर्बाद करते हैं'

पिंजरे में बंद शायर तड़पता है और चिड़िया को प्रतीक बनाकर अपने दिल की बात करता है– कफस में अब तो सैयाद अपना दिल तड़पता है। फिर अंग्रेजों की जुल्मो सितम का पर्दाफाश वो जिस तरीके से करते हैं, वो भी देखने लायक है –

'रहे ना एक भी बेदाग गर सितम बाकी
रूके ना हाथ अभी तक है दम में दम बाकी'

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि भारतेंदु, जिन्होंने हमेशा नवीन विषय को अपनाया उनसे हिंदी गजल भी समृद्ध और लाभान्वित हुई। यह अलग बात है कि हिंदी गजल परंपरा में भारतेंदु का बस जिक्र भर आता है। उन

पर समग्र मूल्यांकन नहीं किया जा सका। उनकी कविताओं में जहाँ राष्ट्रप्रेम, समाज सुधार एवं भक्ति भावना है, वही प्रवृत्ति उनकी तीस से अधिक गजलों में भी है। उन पर यह आरोप भी ठीक नहीं है कि उनकी गजलें स्त्री-पुरुष प्रेम पर हैं। सच्चाई यह है कि भारतेंदु ने अपनी गजलों में भी जनमानस में राष्ट्रीय भावना का बीजारोपण किया है। शायद यही वजह है कि उनके इस युग को सामाजिक चेतना का युग भी कह कर पुकारा जाता है। ❑

संदर्भ :

- ग्रंथावली-2, पृष्ठ -709, नागरी प्रचारिणी सभा काशी
- वही, पृष्ठ- 804
- गुणाकर मुले, भारतेंदु हरिश्चंद्र, प्रकाशन विभाग नई दिल्ली, चतुर्थ संस्करण 2012, पृष्ठ-29
- भारतेंदु हरिश्चंद्र, कवि वचन सुधा, मार्च 1874, पृष्ठ -22
- प्रबोधिनी27, भारतेंदु ग्रंथावली खंड 2, पृष्ठ -683
- वही पृष्ठ -738
- रोहिताश्व अस्थाना, हिंदी ग़ज़ल उद्भव और विकास, पृष्ठ 67, प्रथम संस्करण 1987, सामयिक प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली 02
- भारतेंदु ग्रंथावली भाग 2, संपादक ब्रजरत्न दास, पृष्ठ- 747
- ज्ञानप्रकाश विवेक, हिंदी ग़ज़ल की विकास यात्रा, पृष्ठ- 46 हरियाणा साहित्य अकादमी, चंडीगढ़, वर्ष 2006
- इंद्रनारायण सिंह, हिंदी गजल शिल्प एवं कला, पृष्ठ- 50 रोहतास जिला हिंदी साहित्य सम्मेलन बिहार. प्रथम संस्करण जनवरी 2007
- सरदार मुजावर, हिंदी ग़ज़ल की नई दिशाएं. पृष्ठ 55, राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली 02 वर्ष 2000 प्रथम संस्करण
- विनीता गुप्ता, हिंदी ग़ज़ल की विकास यात्रा, पृष्ठ 103, मनीषा प्रकाशन गाजियाबाद, वर्ष- 2006 प्रथम संस्करण
- डॉ. जय राम सूर्यवंशी, हिंदी ग़ज़ल अंतिम दशक पृष्ठ 44, सारंग प्रकाशन वाराणसी, प्रथम संस्करण 2017

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

दृष्टिकोण

समकालीन हिंदी कविताओं में अभिव्यक्त विचारों का अंतर्विरोध

डॉ. अखिल चंद्र कलिता

सहायक अध्यापक, हिंदी विभाग
लामडिंग कॉलेज
डाक-लामडिंग, होजाई, असम
पिन-782447, मो. 9774126252
E-mail : ackalita1983@gmail.com

सारांश :

पाश्चात्य शिक्षा पद्धति, अर्थ प्रधान समाज तथा अनेक प्रकार के सामाजिक, मनोवैज्ञानिक कारणों से नई व पुरानी पीढ़ियों में संघर्ष और ज्यादा बढ़ता ही जा रहा है । परिणामस्वरूप ईर्ष्या, द्वेष, कलह, उन्माद, निराशा तथा मानसिक उद्वेग बढ़ रहे हैं। कभी-कभी तो इस संघर्ष से उत्पन्न मानसिक तनाव, गृह-कलह, आत्महत्या तक में परिणत होते देखा गया है । इस प्रकार के तनाव से जीवन में कटुता और रिक्तता भरी रहती है, जिसके कारण आत्मविश्वास के सारे मार्ग अवरूद्ध हो जाते हैं। आज ज्यादातर देखने में आ रहा है कि युवा वर्ग वृद्धों का अनादर कर रहा है, तो बुजुर्ग पीढ़ी को युवाओं की स्वच्छंद जीवन-शैली नहीं भाती है। प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि इन पीढ़ियों के संघर्ष के लिए उत्तरदायी कौन है ? कुछ लोगों का मानना है कि बुजुर्ग आज के युवक-युवतियों पर तीखी टीका-टिप्पणी करते हैं। कहते हैं कि हमारे जमाने में तो मर्यादा थी। अब तो ऐसा लगता है कि सारी लाज-शर्म बेच आई है। वहीं कुछ लोगों का कहना है कि बुजुर्ग सदैव ही दकियानूसी व आउट ऑफ डेट परंपराओं को ढो रहे हैं। स्थिति यह है कि युवा पीढ़ी को अपनी जीवन-शैली में दादा-दादी तो दूर, माता-पिता की दखलअंदाजी तक सहन नहीं होती। इसका प्रमुख कारण हमारी संस्कारविहीन शिक्षा है। आज की शिक्षा में मूल्यों का नितांत अभाव पाया जाता है। हम परस्पर कैसे व्यवहार करें ? परिवार के साथ संबंध कैसे हों ? दया, प्रेम, सेवा, त्याग व सहनशीलता का जीवन में कितना मूल्य है, माता-पिता, दादा-दादी के प्रति हमारा क्या कर्तव्य है, हम आज यह सब भूलते जा रहे हैं। संस्कारहीनता के कारण पीढ़ियों के मध्य दरारें पैदा होती जा रही हैं। दूसरा मुख्य कारण आर्थिक परिस्थितियाँ हैं। बढ़ती महंगाई, बेरोजगारी, गरीबी, अल्प आय, परिवार में अधिक सदस्यों की संख्या, घर के खर्चों के बीच बुजुर्गों की बीमारी बोझ स्वरूप लगती है। तीसरा कारण आज के यंत्रवत जीवन-शैली को मान सकते हैं। सुबह से शाम तक व्यस्तता के कारण परिवार के सदस्य

एक-दूसरे को समय नहीं दे पाते । इन स्थितियों में जीवन-मूल्य, आदर-अनादर, सेवा आदि की आशा करनी बेकार है। चौथा कारण सामाजिकता का अभाव है। इसके कारण मानवीय संवेदनाएँ व्यक्ति केंद्रित होती जा रही हैं। इन तमाम स्थितियों के बीच दोनों पीढ़ियों में सामंजस्य कैसे हो, यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है।

बीज शब्द :

स्वच्छन्द, संयुक्त, आपाधापी, अत्याधुनिक, पारस्परिक, संकल्पना, असंगठित, मशाल, संस्कृति, रिटायर, चापलूसी, प्रगतिशीलता।

प्रविधि :

प्रस्तुत शोध लेखन के दौरान समकालीन हिंदी कविताओं में अभिव्यक्त विचारों का अंतर्विरोध को उद्घाटित करने के लिए प्रमुख रूप से विश्लेषणात्मक और समीक्षात्मक शोध प्रविधि अपनाई गई है।

भूमिका :

नवीन शिक्षा पद्धति, पाश्चात्य प्रभाव, बौद्धिकता के विकास के साथ ही युवा-मानस में पारस्परिक मूल्यों के प्रति विद्रोह का भाव जाग्रत हुआ, जिसके परिणामस्वरूप नई पीढ़ी एवं पुरानी पीढ़ी में संघर्ष उत्पन्न हुआ। आधुनिक शिक्षा ग्रहण करने के पश्चात युवा वर्ग की पारिवारिक व्यवसाय में रुचि नहीं रही। आर्थिक दबावों के कारण पुरुष के साथ नारी भी नौकरी से जुड़ती गई। इसके साथ-साथ भूमि का बँटवारा, पारिवारिक क्लेश तथा पारस्परिक मूल्य-स्थितियों से उत्पन्न घुटन एवं व्यवसाय के प्रश्न आदि अन्य स्थितियों ने भी संयुक्त परिवार के ढाँचे को बिखेर दिया और व्यक्ति के भीतर स्वतंत्र, स्वच्छंद जीवन की लालसा जगा दी। अर्थ की महत्ता जैसे-जैसे बढ़ती गई, पारिवारिक संबंधों में वैसे-वैसे तनाव भी बढ़ता गया। भारतीय परिवार भी देश के ही समान एक अजीब कशमकश, घुटन, अलगाव, दिशाहीनता, ईर्ष्या, कलह और तू-तू, मैं-मैं के दौर से गुजर रहा है। संयुक्त परिवार टूट चुके हैं या टूट रहे हैं। अब परिवार इकाई के रूप में विभाजित हो रहे हैं। परिवार के आपसी रिश्तों में अलगाव, घुटन, ईर्ष्या उत्पन्न हो गई है। यह स्थिति गाँव तथा शहर दोनों में दिखाई देती है। आजादी के पश्चात नई-पुरानी पीढ़ी का संघर्ष विभिन्न स्तरों पर दिखाई देता है। पुरानी पीढ़ी के जीवन के दो आयाम प्रमुख हैं। पहला उसकी दुर्गति का और दूसरा युवा पीढ़ी से वैचारिक संघर्ष का। कहीं पुरानी पीढ़ी आक्रोश से भरी दिखाई देती है और कहीं समझौतावादी बनकर नियति के हाथों पिट गई है। विचारों के संघर्ष, आर्थिक दबाव और बदलते समय को देखकर पुरानी पीढ़ी ने कई स्तरों पर समझौता कर लिया है।

मूल आलेख :

पीढ़ियों का अंतर्विरोध नया विषय नहीं है। यह चिरंतन है, पहले भी था आज भी है और कल भी रहेगा। लेकिन आज पूर्व की तुलना में परिवर्तन काफी तेजी से हो रहा है । इसलिए इस विषय की उपेक्षा नहीं की जा सकती। किशोर दबाव में हैं, युवा भ्रमित और हताश है तथा प्रौढ़ पीढ़ी चिंता में जी रही है। इसलिए जरूरी हो गया है कि बुद्धिजीवी इसे अपने चिंतन का विषय बनाएँ, बहस छेड़ें और किसी निष्कर्ष पर पहुँचने का प्रयत्न करें। जब आज के परिवेश पर नजर डालते हैं तो लगता है जैसे सब कुछ वे भोग रहे हैं, जो भंडारे के पास उजाले में बैठे हैं। जमात का आखिरी आदमी असहाय केवल खाली पत्तल देख रहा है। हमारे कर्मों की भाषा इतनी विच्छिन्न व उलझी है कि प्रौढ़ की भाषा ही नहीं समझ पाती। व्यक्ति की सक्रियता व गतिशीलता तो है, पर आदर्श व मूल्यों के प्रति आस्था गायब है। उपभोक्तावाद, प्रगतिशीलता, आधुनिकता जैसे कारकों के कारण समाज आत्मतत्व परंपरा को नकारता है, क्यों वह पुराना है और पुराने से उसे चिढ़ है। फिर यही बात पीढ़ियों पर लागू होती है। चूँकि परिवर्तन समय-सापेक्ष है और हर काल में होता है, इसलिए मन को यह प्रश्न प्रेत की तरह डराता है कि वर्तमान में दीशाहीन विद्रोह के संदर्भ में परंपरा के प्रति उचित दृष्टिकोण क्या हो? नई चेतना परंपरा के भीतर से पनपती है, उससे वह असंपृक्त नहीं रह सकती। आधुनिक होना परंपरा को नकारना नहीं है। वृक्ष का छतनार होना, बीजत्व की अस्वीकृति नहीं है। परिवर्तन आवश्यक है, समय की गतिशीलता की माँग भी है, पर विद्रोह के धरातल पर

नहीं। ''इतिहास गवाह है, जब-जब निर्बंध वैयक्तिकता के कारण-अकारण क्रोध, दीशाहीन विद्रोह, बेमतलब की कुढ़न, घुटन और खीझ से भरकर परंपरा से विद्रोह किया तो एक पथभ्रष्ट राही ही बनकर रह गए।''[1] हर व्यक्ति के अंदर एक आँगन है, एक तुलसी चौरा है और सबके छोटे-छोटे आकाश में एक नीला चाँद भी है, परंतु आँगन से दादी का आशीष तिरोहित है, तुलसी चौरा तो है, पर संभवत: माँ को कब का छोड़ चुके हैं गाँव में अकेले। आकाश के नीले चाँद की जगह गोल रोटी प्रधान हो गई है। घर में फ्रिज के लिए जगह है, पर माँ के लिए नहीं। बड़े देवताओं की तलाश में तो हैं, पर घर के छोटे-छोटे देवताओं को हाशिए पर छोड़ रखा है। वास्तव में ये समस्या महज तात्कालिक नहीं, निरी वस्तुगत नहीं, बल्कि आत्मगत है।

कविता जीवन और जगत की हर धड़कन को प्रतिध्वनित करने के प्रयास की अभिव्यक्ति है। उसकी संकल्पना ही मन से मन और जीवन से जीवन को जोड़ने के लिए है। वह 'स्वभाव' का 'महाभाव' में विलयन है। शास्त्रीय शब्दावली में इसे साधारणीकरण एवं निर्वैयक्तिकरण इत्यादि कहा जाता है। यह तभी संभव है, जब वह जीवन की आस्था बचाए रखे और पाठकों में जीवन के प्रति स्वीकृति भाव भरे। आज के कठिन समय में जब मनुष्यता संघर्षरत है, अनेक स्तरों पर वह लहूलुहान है और पशुता एवं दानवीयता को भी हतप्रभ कर देने वाली घटनाएँ हो रही हैं, तब इसी तरह की कविताओं की जरूरत है। तभी वह मनुष्यता को प्रशस्त करते हुए मानव-हृदय को अशेष सृष्टि के साथ रागात्मक स्तर पर जोड़ सकती है। उसमें कमजोर, दलित-पीड़ित किसान, प्रौढ़ व पुरानी पीढ़ी के प्रति सहानुभूति पैदा कर सकती है। कहना न होगा कि हिंदी की समकालीन कविता यही कर रही है। वास्तव में जो लोग जीवन में कविता को जगह नहीं देते, वे आम तौर पर भयग्रस्त होते हैं। जीवन में कविता को स्थान देने का अर्थ है मानवीय मूल्यों और उदात्त मनोवृत्तियों को स्थान देना। लेकिन यह प्रक्रिया आरोपित न होकर स्वाभाविक होनी चाहिए। सामाजिक परिवर्तन, विकासोन्मुख अमानवीयता के इस जंगल में कवि को भी कितना गँवाना पड़ता है निम्नलिखित पंक्तियों में देखा जा सकता है -

कितना बदल गया यह घर मेरे पीछे
मैं सोचता था कि पिता होंगे
आराम कुर्सी पर बैठे
मुझे फटकारने को तैयार
कि कहा रहे इतने बरस
माँ भी नहीं रहीं
पर उनके लगाए पेड़ खड़े हैं आज भी

× × ×

यह किस घर में लौट आया हूँ मैं
कहाँ खो दिया मैंने अपना घर ![2]

आज हमारा बुजुर्ग अपनी पुरानी मधुर स्मृतियों को पल-पल याद करता नजर आता है। वह अपनी मधुर स्मृतियों को बाँटने के लिए सहारे की तलाश में है। वर्तमान पीढ़ी उनके अनुभव से वाकिफ न होकर अपना अनुभव उन पर थोपने के लिए आमादा है। यह नवीन पीढ़ी अत्याधुनिक कहलाते हुए संवेदनहीन शहरी मानसिकता की ओर अग्रसर है। समकालीन कवि कृत्रिम शहरी मानसिकता के प्रति अनादर का भाव व्यक्त करते हैं। कवि केदारनाथ सिंह की कविताओं को देखकर लगता है कि उनकी कविता का क्षेत्र गाँव आज उसी तरह का गाँव नहीं रह गया है। 'गाँव आने पर' संग्रह

की एक महत्वपूर्ण कविता इस मायने में ज्यादा उल्लेखनीय है, क्योंकि कवि का गाँव के लोगों से लगाव विगलित हुआ है। इस विगलन के पीछे संबंधों की दुनिया का भौतिकीकरण है। यानी कवि गाँव से मोहभंग के कगार पर खड़ा है –

अब आ तो गया हूँ
पर क्या करूँ मैं
एक बूढ़े पंक्षी की तरह लौट-लौट
मैं यही क्यों चला आता हूँ बार-बार
पृथ्वी पर ऊब क्या उतनी ही पुरानी है जितनी दूब
लिपट जाऊँ किसी से
मिलूँ
फिर किस तरह मिलूँ
कि बस मैं ही मिलूँ
और दिल्ली न आए बीच में ।[3]

दरअसल, इस पूरी कविता का अर्थ 'और दिल्ली न आए बीच में' के हवाले से खुलता है। दिल्ली, बम्बई, कलकत्ता जैसे महानगरों में पिछले बीस-पच्चीस वर्षों में गाँवों से चल कर किसान वर्ग के लोग रोजी-रोटी की तलाश में जिस तरह आकर पट गए हैं, यहीं से उनके गाँव से विस्थापन की कथा आरंभ होती है। खासतौर पर ग्रामीण इलाकों से उखड़कर किसान-संस्कृति का वह पढ़ा-लिखा संवेदनशील निम्न-मध्यवर्ग जो दिल्ली जैसे महानगरों में लंबे अर्से तक रहकर अपने को शहरी संस्कृति में एडजस्ट करना चाहते हैं, पर विडम्बना यह है कि वे अंतत: शहरी नहीं बन पाते। उन्हें शहरी जीवन की अमानवीयता तोड़ देती है। वे बार-बार एक बूढ़े पंक्षी की तरह गाँव लौटते हैं। पर गाँव भी उनके लिए वीरान हो चुका होता है। लगभग शहर की तरह अजनबी। फलत: ऐसे बहुतेरे लोगों के जीवन में हो यह रहा है कि वे शहर को छोड़ नहीं पाते और गाँव के हो नहीं पाते। स्थिति इतनी बदतर हो चुकी है कि पूरा परिवार रहता है शहर में और वे रिटायर होकर अकेले खेतीबारी करने चले हैं गाँव में । ऐसे में गाँव उनके लिए बेघर होने की पीड़ा से ज्यादा भयावह हो जाता है। फलत: गाँव और शहर को एक साथ पाने और खोने के बीच का द्वंद्व उन्हें आजीवन काटता रहता है। वे रहते हैं महानगर में परिवार के साथ, पर होते हैं अकेले में आत्मनिर्वासित। केदारनाथ सिंह जैसे निपट गाँव की पृष्ठभूमि से आए कवि की संवेदना की असली दिक्कत यही है, जिसके वे भी शिकार हैं। वे रहते हैं बीसवीं शताब्दी के कुछ गिने-चुने शैक्षिक संस्थान, जे. एन. यू. के कंक्रीटों वाले जंगल के सुरम्य इलाके में, पर मन से वे बसे हैं, पूरब के पिछड़े गरीब इलाके वाले गाँव चकिया (बलिया) में। 'गाँव आने पर' कविता का पूरा अंतर्द्वंद्व यही है। उल्लेखनीय है कि गाँव और शहर का यह अंतर्द्वंद्व केदारनाथ सिंह के समकालीन श्रीकांत वर्मा और सर्वेश्वर दयाल सक्सेना जैसे कवियों में कम नहीं है। श्रीकांत वर्मा की बहुचर्चित कविता 'घर धाम' और सर्वेश्वरदयाल सक्सेना की लोकप्रिय कविता 'कुआनो नदी' की आंतरिक भूमि यही है – विस्थापनबोध। गाँवों से आए इस नए शहरी वर्ग को मनुष्य की महत्वाकांक्षा ने विस्थापित किया है और शेष निम्न किसान वर्ग को इस व्यवस्था ने, अत: शहर में आने का चुनाव उसका नहीं, उसकी मजबूरियों का है। अगर शहरी जीवन जैसी जरूरी सुविधाएँ गाँवों में भी नसीब हों तो भला गाँव का किसान शहर क्यों आएगा ? यूँ भी महानगरों को लेकर आज भी गाँव के बुजुर्ग लोगों के मन में अत्यंत भय मौजूद है। उनके इस भय का तर्कसंगत कारण भी है। नई पीढ़ी पर घुमड़ रही विसंगतियों को देखते हुए समकालीन कवियों ने उनको हतोत्साहित नहीं किया। उसको पराधीनता तथा दुर्दशा से मुक्ति हेतु संघर्ष के लिए उत्साहित किया।

'कुआनो नदी' सर्वेश्वर की एक सशक्त लंबी कविता है। ग्रामीण दशा को समझने में 'कुआनो नदी' अपने ही ढंग की प्रथम लंबी कविता है। यह कविता एक प्रकार से ग्रामीण पिछड़ेपन, गरीबी, भुखमरी का जीवंत इतिहास है। चूँकि कवि इस देश के गरीब ग्रामों से सीधा जुड़ा है, वहीं उनका बाल्यकाल बीता है। उन्हें वह ठीक से समझता है। इन सबका परिणाम है कि 'कुआनो नदी' का दर्द ग्रामीण-संवेदना से जुड़े आदमी के लिए आज भी दाँत का दर्द है। ग्रामीण आर्थिक व्यवस्था का संघर्ष पीढ़ियों का संघर्ष रहा है, जिसने आदमी को न मरने

दिया, न जीने दिया –

बहुत गरीब जिला है वह, बस्ती
जहाँ मैंने इसे पहली बार देखा था।
मेरे नाना इस नदी में कूद पड़े थे
और निकाल लिए गए थे
जिन्दगी से ऊबकर मर नहीं सके।[4]

नाना नदी में एक बार मरने के लिए आर्थिक संघर्षों से मजबूर होकर कूदे थे, किंतु प्रतिदिन तड़प-तड़पकर मरने के लिए निकाल लिए गए। पूर्वी उत्तर प्रदेश की अथाह गरीबी का संसार आज के आजाद धन कुबेरों पर व्यंग्य-सा है। हजारों सालों की घुटन, भुखमरी, सड़न आदि स्थितियाँ 'कुआनो नदी' के प्रतीकों में दिखाई पड़ती हैं। थोड़े से लोगों के हाथ की पूँजीवादी व्यवस्था ने अपार श्रमजीवी वर्ग को किस कदर दला और छला है, यह सब कुछ इस कविता का कथ्य है। कवि में अनुभवों की यह दुर्निवार चेतना ही पाठक को पुरानी पीढ़ी के इतिहास की चेतना से जोड़ती है। सामाजिक जटिलताओं ने व्यक्ति को अनेक दबावों में पीसकर छिन्न-भिन्न किया है। गाँवों में बसने वाला हिन्दोस्तान द्विवेदी युग, छायावादी युग में फिल्मी ढंग से रंगीन दिखाया गया है। गाँव का आदमी अमृत की तलाश में जहर पी रहा था, लेकिन आदर्शीकरण वाले भाववादी कवि उसकी वस्तुस्थिति का नक्शा दे नहीं पाए या दे नहीं सके। गाँव के इतिहास में जीवन-मरण का चक्रव्यूह चलता रहा और शहरीकरण वाले नई पीढ़ी के बाबू साहेब उससे कभी द्रवित नहीं हुए। भारतीय ग्रामीण प्रौढ़ पीढ़ी कतारों में बसने वाले जीव थे, जो जीवन तथा जीने का अंतर नहीं जानते थे। सत्ता का काला तेंदुआ पत्थरों पर शिकार पटक-पटककर खाता रहा, पर हमारी आँखें सुर्ख नहीं हो सकीं। समूह वह मशाल नहीं जला पाया कि भेड़िया भाग खड़ा हो । अंधी असंगठित शक्ति का अंधा-अराजक विद्रोह चलता रहा और साँप पत्थरों के भीतर रेंगते ही रहे। उसके मैदान में आने की प्रतीक्षा करते रहे, लेकिन उसे पूँछ पकड़ कर पछाड़ नहीं सके। धीरे-धीरे तबाह होते हुए पूरा देश लड़खड़ाकर बैठ गया। स्वतंत्र देश में अपनी सत्ता के साम्राज्यवादी, पूँजीवादी, अधिनायकवादी चरित्र ने पाशविकीकरण, अमानवीयकरण और असांस्कृतिकीकरण को एक साथ तान दिया। नई पीढ़ी की प्रबुद्ध कहे जाने वाली चेतना ने विद्रोह किया तो सत्ताधारी दल ने उसके विद्रोह के कारणों को सोचने-खोजने का काम तो दूर पुलिस-दल की सहायता से स्कूल-कॉलेज के प्रांगणों, सड़कों को गोलियों से पाट दिया। नई पीढ़ी के विद्रोह पर सत्ता ने यह इल्जाम भी लगाया कि अनुशासन भंग नहीं होने दिया जाएगा। चापलूसी करने वाले अफसरों ने गोली का साथ दिया। सत्ता के सांड़ ने सींगों और पैरों से नरों को कुचला है और मादाओं को गर्भवती बनाकर पार्कों में हवा पीने के लिए छोड़ दिया है। इसी दशा ने मार्क्स-लेनिन तथा माओवाद से नई पीढ़ी को भर दिया है। सत्ता के दानव के लिए ही यह पीढ़ी दधीचि की अस्थियाँ खोज रही है, शत्रु को पहचान गई है, पर –

बम बनाते समय जरा-सी चूक से
उसके हाथ-पैर उड़ गए
बिना कुछ सोचे-समझे
एक लाल किताब हाथ में लिए
ये मौत के साथ जुड़ गये,
उसने सोच-समझकर हड़ताल की
अकेला छूट गया,
विक्षोभ, अपमान और गरीबी से
असहाय टूट गया
क्या कोई यहाँ जिन्दा है?[5]

यहाँ सब अवसरवादी राजनीति में मरे पड़े हैं, हाँ में हाँ किए पड़े हैं। इन सभी का इतना पतन हो गया है कि आत्मधिक्कार जैसी कोई आवाज इनमें नहीं है। मनुष्य अपने चिंतन को सुलाकर धन का सेठ बैठ गया है। पर कवि क्रांति करने की ठानता है फिर अंधेरे में विचार-क्रांति की लाल मशाल जलती है। देश का राष्ट्रीय-सांस्कृतिक पतन हमारा कद और छोटा कर देता है। हम शत्रु को पहचानने पर भी शत्रु पर वार नहीं करते। हम इतने कायर और नपुंसकता से ग्रस्त क्यों हैं? क्यों हम अन्य जागरूक देशों की भाँति जन-क्रांति नहीं कर पाते। हमारे खून में कौन-सा गांधी अहिंसा जगा रहा है? गोदाम घरों में हमारे हाथ किसने गिरवी रख छोड़े हैं? क्यों सभी फाइलों में बंद हो गए हैं? क्यों सभी दफ्तरों

और ऊँची इमारतों पर चढ़कर सो रहे हैं? संस्कृति में पूर्वजों के कमाए मूल्य और मन कैसे दबकर मर गए –

क्यों हर हाथ टूटा है ?
क्यों हर पैर कटा है ?
क्यों हर चेहरा मोम का है ?
क्यों यहाँ हर दिमाग कूड़े से पटा हुआ है ?
क्यों यहाँ कोई जिन्दा नहीं है।[6]

'मौन रहो और प्रतीक्षा करो' जैसे सिद्धांत-दर्शन पर थूकता हुआ कवि घृणा से भर जाता है। ये सभी किसान हैं, जो तीस-इकत्तीस वर्षों से 'प्रतीक्षा करो मौन रहो' के संदेश को पी रहे हैं। अब किसान-मजदूर, गरीब-हरिजन की हालत को हर हालत में बदलना होगा। बंदूक उठानी पड़ सकती है, प्राण देने पड़ सकते हैं और कवि इसके लिए तैयार है। नई पीढ़ी मरी नहीं है। पराधीनता तथा दुर्दशा का इतिहास मिटा कर रहेगी। इसी इच्छा ने कवि से कहलाया है –

नाव उतनी ही छोटी कीचड़ में फँसी हुई
मुर्दे उतने ही बेशुमार
कहाँ हो, ओ क्रन्ति के सूत्रधार।[7]

यह कीचड़ इस देश की हजारों वर्षों की गलित परंपरा से पैदा हुआ है। धीरे-धीरे परंपरा भक्तों ने प्राणवान तत्वों को विस्मृत कर दिया। इसी का अनिवार्य नतीजा है – आज की विषम, भयंकर तथा त्रासद स्थिति । पूरा का पूरा देश गरीबी, भुखमरी, अपमान, यंत्रणा से पीड़ित है, क्योंकि मूल्यों का सारा निकष ही गड़बड़ा दिया गया है। यदि इस देश को आधुनिक बनाना है तो हजारों साल के इस कीचड़ को साफ करना होगा। सहनशीलता सिखाने वाली परंपरा ने हमें जकड़ रखा है। परंपरा को आधुनिक बनाने के लिए सांस्कृतिक जकड़बंदी को खत्म करना होगा। सांस्कृतिक जकड़बंदी के आधार – औरत, किसान, मजदूर, हरिजन – सभी दबे और तबाह हैं। इन्हें नया जीवन देना होगा, नए गतिमान मूल्य देने होंगे, छीना हुआ मस्तिष्क इन्हें वापस करना होगा, कीचड़ तभी साफ हो सकेगा। कविता में अभिव्यक्त कीचड़ का तात्पर्य यही सांस्कृतिक कीचड़ है।

निष्कर्ष :

अत: हमें स्वयं को पहचानकर टूटते मन से शाश्वत संवाद स्थापित करना होगा। हम यह न कहें कि आधुनिक न बनें, आत्म और वस्तु के मौलिक स्वरूप का यथार्थ पीकर उसके संगीत में जीना सच्ची आधुनिकता होगी। परिवर्तन तो होगा ही, इसे सहज स्वाभाविक और क्रमिक बनाना सुखद है, फलदायी है। आज इस भौतिकवादी, संवेदनशून्य, आपाधापी वाले जीवन में कविता ही वह रचनात्मक माध्यम है, जो मनुष्य की भीतरी सद्वृत्तियों और मानवीय भावनाओं को जगाकर मनुष्य-मनुष्य के बीच मधुर संबंधों का सेतु बन सकती है। उसकी मनुष्यता का विस्तार कर सकती है। उसे बेहतर मनुष्य बनने के लिए प्रेरित और प्रभावित कर सकती है। ❑

संदर्भ :

1. देसाई, ए. आर, भारतीय ग्रामीण समाजशास्त्र, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, प्र.सं. 1997, पृष्ठ 62
2. जगूड़ी, लीलाधर, वापसी, रात अब भी मौजूद है, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, सं 2003, पृष्ठ 56
3. त्रिपाठी, अरविन्द, कवियों की पृथ्वी, आधार प्रकाशन, हरियाणा, सं 2004, पृष्ठ 72
4. सक्सेना, सर्वेश्वर दयाल, कुआनो नदी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, तृतीय सं 1984, पृष्ठ 37
5. सक्सेना, सर्वेश्वर दयाल, कुआनो नदी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, तृतीय सं 1984, पृष्ठ 32
6. सक्सेना, सर्वेश्वर दयाल, कुआनो नदी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, तृतीय सं 1984, पृष्ठ 33
7. वही, पृष्ठ 42

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

स्त्री-विमर्श

रमेशचंद्र शाह के उपन्यासों में नारी की दोहरी भूमिका

अनिता मीणा

शोधार्थी, हिंदी विभाग
राजकीय महाविद्यालय, टोंक,
(म.द.स.वि.वि., अजमेर) राजस्थान
संपर्क :
केंद्रीय विद्यालय एन.आई.टी.
सिलचर (असम), एन.आई.टी., सिलचर
कैम्पस, जिला : कछार-788010
मो. 8851230187
ई-मेल : 1983anitameena@gmail.com

डॉ. रेणु वर्मा

सह-आचार्य, हिंदी विभाग, शोध
निर्देशिका, राजकीय महाविद्यालय
टोंक, राजस्थान

इक्कीसवीं सदी में संपूर्ण विश्व में नारी जागरण व नारी शक्ति की शुरुआत हो चुकी है। आज नारी शक्ति रूपी बाण चल चुका है, उसे रोक पाना किसी रूढ़िवादी व्यक्ति, समाज या संस्था के वश की बात नहीं है। विधाता ने जिस उद्देश्य के लिए नारी को इस संसार में अवतरित किया है, नारी अब उस उद्देश्य को समझ चुकी है। आज की नारी अपनी क्षमताओं और शक्तियों से भलीभाँति परिचित हो चुकी है। वे जान चुकी हैं कि संसार में ऐसा कोई कार्य नहीं, जिसे वह नहीं कर सकती हैं। वे किसी भी बाधा या चुनौती का सामना अपने विवेक से कर सकती हैं। नारी चाहे अशिक्षित हो या शिक्षित, वह अपने घर, परिवार और समाज को संभालने का सामर्थ्य रखती हैं। शिक्षा के कारण महिलाओं के सोचने-समझने की शक्ति में अमूलचूल परिवर्तन आ रहा है। महिलाओं का बौद्धिक विकास हो रहा है। वे अब तर्क-वितर्क करनी लगी हैं। आधुनिक नारी अब घर की चारदीवारी को लाँघकर खुले में निर्भीकता से विचरण करने लगी है। आत्मनिर्भरता और अस्तित्वबोध की अवधारणा उसके अंदर देखी जा सकती है। सरोज वशिष्ठ का विचार है- ''जब तक आज की नारी निष्ठापूर्वक अपना कर्तव्य निभाती रहेगी, पुरुष से अधिक प्रशंसा की आशा नहीं करेगी, उसकी क्षमता और निपुणता पर कोई प्रश्न चिह्न नहीं लगा सकता है। बस आज की नारी को सावधान रहते हुए, अपने विवेक व दक्षता का भरपूर उपयोग करना चाहिए। आदर, प्रेम, सद्भावना, स्नेह सब कुछ एक हाथ परे धरा है। संतुष्ट और प्रसन्नचित रहकर अगर नारी को दोगुनी मेहनत भी करनी पड़े तो आने वाली सदी में भविष्य का भय स्वयं ही भयभीत होकर दबे पाँव लौट जाएगा।''[1]

आर्थिक, सामाजिक और शैक्षणिक विकास के फलस्वरूप नारी की स्थिति में अब सुधार हुआ है। घर की चौखट पार करके स्त्रियाँ अब शिक्षा, व्यवसाय, उद्योग और सरकारी सेवाओं से जुड़कर वैयक्तिक व सामाजिक विकास में अपना योगदान दे रही हैं। वे अब घरेलू दायित्वों के आलावा अपनी इच्छाओं और सपनों को भी पूरा कर आत्मसम्मान से जी रही हैं। पहले आर्थिक विपन्नता के कारण महिलाएँ नौकरी करती थीं; परंतु अब मध्यवर्गीय महिलाएँ

आर्थिक विवशता के कारण नहीं, अपितु अपने शौक से कामकाजी बनती जा रही हैं । इसकी प्रमुख वजह दिन-प्रतिदिन बढ़ती महँगाई, बढ़ती मानवीय अभिलाषाएँ एवं आजाद रहकर अपने जीवन को सुखमय बनाने की आकांक्षा है। सभी क्षेत्रों में महिलाओं के कामकाज का विस्तार हुआ है। कामकाजी महिलाएँ अपनी क्षमता और योग्यता से न केवल धन अर्जित कर रही हैं; बल्कि वे अर्जित धन से पारिवारिक आर्थिक संरचना में अपना महत्वपूर्ण योगदान देकर आर्थिक मजबूती प्रदान कर रही हैं। कामकाजी महिलाओं के बारे में प्रभा खेतान लिखती हैं- ''आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर तथा समाज में निश्चित स्थान रखने वाली कामकाजी महिलाओं के सामने व्यक्तित्व टकराव की समस्या सदैव बनी रहती है। दोहरी भूमिका निभाने के साथ-साथ उसे जीवन में परस्पर विरोधी लक्ष्य भी लेकर चलना पड़ता है। विवाह जहाँ आत्मत्याग और सहयोग की माँग करता है, वहीं दूसरी ओर कामकाज एवं प्रतिस्पर्धा की दोहरी जिम्मेदारी पूर्ण करने की चिंता न केवल सदैव बनी रहती है, अपितु वह स्वयं भी एक विकराल रूप धारण कर लेती है।''[2]

रमेशचंद्र शाह ने नारी के विभिन्न रूपों का चित्रण किया है, जहाँ नारी बेटी, बहन, पत्नी, बहू, माँ, मित्र, प्रेमिका इत्यादि विभिन्न रूपों में अपनी पारिवारिक और कामकाज दोनों क्षेत्रों में भूमिका अदा करती नजर आती है। रमेशचंद्र शाह के प्रारंभिक उपन्यासों गोबर गणेश, पूर्वापर, किस्सा गुलाम, आखिरी दिन आदि में अधिकतर नारी पात्र अशिक्षित, परंपरागत व पुरानी मान्यताओं को मानने वाली सीधी-सादी गृहिणी हैं, जो घर में रहकर अपनी परीवारीय जिम्मेदारियों को ईमानदारी व आत्मसम्मान के साथ निभाती हुई दिखाई देती हैं। विनायक की माँ, चाची, सरोज, इत्यादि ऐसी ही नारी पात्र हैं। वहीं इनके बाद के उपन्यासों में नारी का एक अलग ही रूप देखने को मिलता है, जहाँ नारी अधिक सशक्त, बौद्धिक, आजाद सोच वाली, अपने अधिकारों के प्रति जागरूक, तर्क-वितर्क करने वाली एवं कामकाजी महिलाएँ हैं। मालती, शकुंतला, शोभना, पुष्पा, मिसेज रैणा, मार्गरेट, एलिस, अनु इत्यादि ऐसी ही शिक्षित, आधुनिक और क्रांतिकारी नारियाँ हैं, जो अपना रास्ता खुद चुनती हैं। पुरुषों एवं समाज के बंधनों को सिरे से खारिज करती हैं। इस प्रकार शाह जी ने अपने उपन्यासों में भारतीय नारी के दोनों रूपों को हमारे सामने रखा है। घरेलू नारी और कामकाजी नारी।

बेटी के रूप में नारी: एक नारी सर्वप्रथम बेटी बनकर समाज में आती है। बेटियाँ समाज व राष्ट्र की अनमोल धरोहर होती हैं। आज की बेटियाँ शादी के पहले और शादी के बाद भी अपने माता-पिता व परिवार के प्रति अपनी जिम्मेदारियों को निभा रही हैं। रमेशचंद्र शाह के उपन्यासों में सरोज, ममता, ऐसी ही नारी पात्र हैं, जो अपने घर परिवार के प्रति अपने कर्तव्यों को बखूबी निभाती हैं। 'गोबर गणेश' उपन्यास की मुख्य नारी पात्र सरोज अपने परिवार की आत्मा है। उसकी माँ बीमार रहती है इसलिए वह घर का सारा काम करती है। वह अपने माता-पिता, भाई, काका की छोटी-बड़ी सभी जरूरतों का ख्याल रखती है और घर परिवार के मसलों में अपनी राय देती है। वह पूरे घर-परिवार को जोड़कर रखती है। विनायक कहता है- ''जगन काका कहते हैं सरोज तो इस घर की अंतरात्मा है।''[3] जगन काका तो उसे अपनी प्रेरणा, अपनी कविता मानते हैं। सरोज अपने घर के प्रति अपने कर्तव्यों को निभाने के लिए अपनी पढ़ाई भी छोढ़ देती है। 'सफेद परदे पर' उपन्यास में ममता अपने पिता ध्यानचंद को अपने पास रहने के लिए बुलाती है। वह कहती है कि माता-पिता की सेवा की जिम्मेदारी जितनी बेटे-बहू की होती है, उतनी बेटी की भी होती है, जो एक परंपरागत सोच को दरकिनार करती है। ममता अपने पिता को पत्र में लिखती है- ''विवेक और पुष्पा क्या सोचेंगे, इसकी चिंता मत करो। वह कुछ नहीं सोचेंगे। कोई कुछ नहीं सोचेगा । जो सोचेगा भी, तो अच्छा ही सोचेगा। तुम्हारे पक्ष में ही सोचेगा। बल्कि वे निश्चिंत हो जाएँगे कि तुम हमारे पास हो और यह भी कि तुम्हारी सेवा में किसी तरह की कोई कसर नहीं छोड़ी जाएगी।''[4]

बहन के रूप में नारी : 'गोबर गणेश' उपन्यास में सरोज अपने भाई विनायक की बहन के साथ-साथ एक दोस्त व पथ प्रदर्शक भी है, जिसके पास विनायक अपनी हर समस्या का समाधान पाता है। विनायक के

घर में सरोज ही उसके सबसे करीब है, जिससे वह खुलकर बात कर सकता है। वह कहता भी है कि घर में सरोज दीदी ही है, जो उसे समझती हैं। 'सफेद परदे पर' उपन्यास में भी रामरती के घर की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं है। वह घर चलाने के लिए दूसरों के घरों में काम करती है। जब वह घर में नहीं होती है तो रामरती की बेटी ही अपने आधे अंधे भाई और बहन का ध्यान रखती है और बड़ी बहन होने का फर्ज निभाती है।

माँ के रूप में नारी : यह जग जाहिर है कि इस संसार में माँ से बड़ा कोई शब्द नहीं है। जब एक नारी माँ बनती है तो ममतामयी नारी के लिए यह रिश्ता सबसे अहम हो जाता है। बाकी सारे रिश्तों को निभाने में चाहे चूक हो जाए, लेकिन एक नारी माँ की भूमिका पूरे मनोयोग से निभाती है। रमेशचंद्र के सभी उपन्यासों में ऐसी ही वात्सल्यमयी माताओं का चित्रण मिलता है। मालती, रामरती, विनायक की माँ, बंटू की माँ, शोभना इत्यादि ऐसी ही नारी पात्र हैं। 'विनायक' उपन्यास में मालती एक एन.जी.ओ. चलाती है और उसके साथ माँ की भूमिका भी पूरी ईमानदारी से निभाती है। वह अपने बच्चों को अच्छे संस्कार व शिक्षा देती है। मालती का पति विनायक कहता है- ''मालती इतनी सख्तजान और अनुशासन प्रिय माँ है, माँ से कहीं ज्यादा पिता का रोल निभाया है उसने सच में। तब फिर बच्चे ही उसकी चिंता के केंद्र में नहीं होंगे तो और कौन होगा।''[15] पिता चाहे अपनी जिम्मेदारियों से विमुख हो जाए; लेकिन एक माता किसी भी परिस्थिति में अपना मातृत्व धर्म नहीं छोड़ती है। रमेशचंद्र शाह लिखते हैं- ''यह दुनिया क्या तुम्हारी ममतामयी माँ है, जो तुम्हें अपने हाथ से एक पानी का गिलास तक भरने न देगी?''[16] रमेशचंद्र शाह की ये पंक्तियाँ माँ के स्वरूप को परिभाषित करने के लिए काफी हैं।

पत्नी के रूप में नारी : रमेशचंद्र शाह के प्रारंभिक दौर के उपन्यासों में अधिकतर नारी पात्र घरेलू, अशिक्षित, परंपरागत व पुरानी मान्यताओं को मानने वाली सीधी-सादी गृहिणी हैं, जिनकी संपूर्ण दुनिया उनका परिवार ही है। आधुनिकता का प्रभाव उन महिलाओं पर नहीं पड़ा है। जैसे- 'गोबर गणेश' उपन्यास में विनायक की माँ, चाची, सरोज इत्यादि ढ्ढ ये महिलाएँ घर में रहकर अपना पत्नी धर्म निभाती हैं और आत्मसम्मान के साथ अपना जीवन जीती हैं। रमेशचंद्र शाह के बाद के उपन्यासों में उच्च मध्यम वर्गीय, सशक्त और दोहरी भूमिका निभाने वाली नारी पात्रों का चित्रण मिलता है, जो घरेलू के साथ-साथ कामकाजी भी हैं। वे इन दोहरी जिम्मेदारियों को बखूबी निभाती दिखाई पड़ती हैं। 'विनायक' उपन्यास की मालती एक अच्छी पत्नी और माँ है, जो स्वावलंबी और स्वाभिमानी है। भारतीय समाज में पति को परमेश्वर का दर्जा दिया जाता है; लेकिन आज की महिला पति को तब तक ही परमेश्वर मानती है, जब तक उसका व्यवहार पत्नी के प्रति अनुकूल रहे। प्रतिकूल व्यवहार होने पर वह विवाह जैसे पवित्र बंधन को तोड़ने से परहेज नहीं करती है। मालती के प्रति उसके पति विनायक के व्यवहार में धीरे-धीरे परिवर्तन होता जाता है। विनायक उसके समाज-सेवा के काम को पसंद नहीं करता है और उसके काम को नीचा दिखाता रहता है, जिससे कि मालती का स्वाभिमान आहत हो जाता है। इसके चलते मालती विनायक को छोड़ने तक को तैयार हो जाती है। वह सोचती है कि विनायक से कह दे- ''अब नहीं सहा जाता। ऐसे साथ रहने से तो अच्छा है एकबारगी अलग ही हो जाएँ।''[17]

बहू के रूप में नारी : रमेशचंद्र शाह के 'गोबर गणेश' उपन्यास में सरोज को एक आज्ञाकारी बहू के रूप में चित्रित किया गया है। वह अपनी सास को अपनी माँ के समान मानती है; बल्कि अपनी माँ से भी ज्यादा ख्याल रखती है और उनकी सेवा करती है। सरोज की माँ बीमार हो जाती है, तब उसका भाई विनायक उसे लेने के लिए उसके ससुराल आता है। उस समय सरोज की सास भी बीमार रहती है, इसलिए सरोज विनायक के साथ जाने से मना कर देती है। वह विनायक से कहती है- ''तुम माँ को बता देना सरोज की सास बहुत बीमार है। सरोज उन्हें छोड़कर तुम्हारे पास कैसे आ सकती है? तुम्हीं ने तो कहा था मुझसे ज्यादा अपनी सास को मानना, मुझसे ज्यादा अपनी सास की सेवा टहल करना।''[18] 'सफेद परदे पर' उपन्यास के नायक ध्यानचंद वृद्धावस्था में अकेले जीवन यापन

करना चाहते हैं, इसलिए वह अपने बेटे-बहू से अलग रहने लगते हैं । उनकी बहू पुष्पा उनके अकेले रहने के निर्णय से चिंतित रहती है। वह स्वयं कामकाजी है, इसलिए उनके पास नहीं रह सकती। पुष्पा अपने बचपन की सहेली रामरती, जो नौकरानी का काम करती है, उसे ससुर का खाना बनाने और घर के अन्य कामों के लिए रख देती है। ध्यानचंद बहू के इस कदम की सराहना करते हुए कहते हैं- ''बहू तो यही सोचकर संतुष्ट हो गयी होगी कि उसकी पहचान की बाई मेरा खाना पकाने के लिए उपलब्ध हो गई। वह भी इतनी आसानी से। मुझे लेकर उसकी चिंता इस बात से कितनी कम हो गयी होगी।''[9]

कामकाजी नारी : सामान्यत: कामकाजी नारी शब्द का प्रयोग घर के बाहर काम करने वाली महिलाओं के लिए किया जाता है। चाहे वह काम सरकारी हो या गैर सरकारी । भारतीय कामकाजी नारी अपने जीवन में दोहरी भूमिका निभाती है। वह घर के दायित्व को निभाने के साथ-साथ धनोपार्जन के लिए बाहर भी काम करती है। घरेलू नारी की अपेक्षा कामकाजी नारी का कार्यक्षेत्र अधिक विस्तृत एवं व्यापक होता है। वह अधिक प्रखर दृष्टि वाली, अनुभवी, संवेदनशील और स्वाभिमानी होती है। कामकाजी नारी की स्थिति को परिभाषित करते हुए डॉ. रोहिणी अग्रवाल लिखती हैं- ''अपनी बौद्धिक क्षमता, शारीरिक क्षमता के उपयोग से कुशल अथवा अकुशल श्रम के माध्यम से, घर अथवा घर के बाहर स्वतंत्र रूप से कोई उत्पादक कार्य करके अर्थोपार्जन करने वाली महिलाएँ कामकाजी महिलाएँ हैं।''[10]

सामाजिक मान्यताओं के अनुसार अपना मत देते हुए डॉ.अवधेशचंद्र गुप्त लिखते हैं- ''प्रशासनिक कार्यों में शिक्षित अथवा अशिक्षित नारियाँ कार्य करती हैं, जिन्हें कामकाजी नारियाँ कहा जाता हैं और पारिवारिक कार्य करने वाली नारियों को दासी अथवा सेविका कहा जाता है।''[11] आज ऐसा कोई क्षेत्र नहीं बचा है, जहाँ नारियाँ काम नहीं करती हैं; चाहे वो राजनीतिक सत्ता हो, चिकित्सा हो, ज्ञान-विज्ञान हो, कला हो, समाज-सेवा हो, प्रशासनिक सेवाएँ हो, खेल हो या शिक्षिका, प्रोफेसर इत्यादि हो- सभी क्षेत्रों में नारियों के कामकाज में विस्तार हुआ है। अपनी योग्यता से कामकाजी नारियाँ न केवल धनोपार्जन करती हैं; बल्कि अर्जित धन से अपने परिवार को संबल भी प्रदान कर रही हैं। नारियों का धनोपार्जन आर्थिक क्षेत्र में उसकी आत्मनिर्भरता एवं स्वाभिमान को प्रदर्शित करता है।

रमेशचंद्र शाह ने अपने उपन्यासों में ऐसी ही विभिन्न सशक्त और दोहरी भूमिका निभाने वाली नारियों का चित्रण किया है, जो परिस्थियों के सामने झुकती नहीं हैं; बल्कि उनसे आँखें चार करती हैं। वे नारियाँ अपने परिवार का पालन-पोषण करने में समर्थ हैं। नारी कहीं परिस्थिति वश घर के बाहर काम करने के लिए निकल रही है, तो कहीं अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए, तो कहीं स्वाभिमान से जीवन जीने के लिए। रमेशचंद्र शाह के उपन्यासों में शकुंतला, दमयंती, मिसेज रैणा, पुष्पा, इत्यादि नारी पात्र शिक्षिका या प्रोफेसर के पद पर कार्य करते हुए, समाज को एक नई दिशा प्रदान करती हैं। 'विनायक' उपन्यास की शकुंतला नामक स्त्री पात्र को एक बुद्धिजीवी नारी के रूप में चित्रित किया गया है । वह विनायक के विश्वविद्यालय में अंग्रेजी की प्रोफेसर है। पुरुषों के साथ वैचारिक भूमिका अदा करती है। वह सभा, संगोष्ठियों व पार्टियों में भाग लेती है, विचार विमर्श करती है। शकुंतला पारिवारिक बंधनों, मध्यम वर्गीय जंजीरों से मुक्त होना चाहती है। वह अपने पति के ठुकराए जाने पर टूटती नहीं है; बल्कि और अधिक आत्मविश्वास और बुद्धिमता का परिचय देती है। अपने पति की करतूतों का सरेआम विरोध करती है और खुलेआम पुरुषों से मिलती-जुलती है। सभा, सेमिनारों में भाग लेती है और अपने स्वतंत्र अस्तित्व का निर्माण करती है। वह अपने विचारों पर किसी और के विचारों को हावी नहीं होने देती। शकुंतला विनायक के कर्म जीवन में एक सहयोगिनी बन कर आती है। विनायक अपने स्वगत कथन में कहता है कि- ''शकुंतला तुम्हारे कर्म जीवन के लिए एक दुर्लभ संगिनी-सहयोगिनी बनकर अवतरित हुई है। तुम उसकी श्रद्धा के ही नहीं, उसकी बौद्धिक आकांक्षा के भी, तृप्ति के भी आलम्बन बने। तुमने उसमें बौद्धिक साहचर्य ही नहीं; बल्कि बुद्धि के माध्यम से अपनी भावनात्मक अतृप्ति की क्षतिपूर्ति

भी निश्चय ही ढूंढ़ी और पाई होगी।''[12] 'सफेद परदे पर' उपन्यास की शोभना प्राइवेट स्कूल में शिक्षिका है। वह एक संपन्न परिवार की बहू है; लेकिन उसे बच्चों को पढ़ाने का शौक है। वह अपनी गृहस्थी के साथ-साथ शिक्षक का काम भी करती है और आत्मसम्मान के साथ अपना जीवन यापन करती है। शोभना की इस रुचि को देखते हुए उसके ससुर उसके लिए अपना एक स्कूल खोलते हैं।

'विनायक' उपन्यास की मालती अपनी घर-गृहस्थी के साथ-साथ समाज सेवा का भी काम करती है। वह वेश्याओं के पुनरुद्धार व उनके बच्चों की शिक्षा के लिए कार्य करती है, जोकि हमारे समाज का एक उपेक्षित वर्ग कहा जा सकता है। उपन्यास की शुरुआत में बताया गया है कि मालती एक घरेलू महिला थी। जब मालती के पति विनायक का तबादला मुंबई में हो जाता है तो मुंबई आकर मालती को अपनी रुचि एवं क्षमताओं का पता लगता है और वह समाज-सुधार के काम में लग जाती है।

शाह जी लिखते हैं- ''मुंबई आने के बाद ही मालती को दुनिया कितनी बड़ी है, इसका अनुभव हुआ होगा । अपनी 'सोशल' व्यक्तित्व का भी ठीक-ठीक अहसास उसे तभी हुआ होगा, जब उसे जगाने वाले लोग और परिवेश उसे पहली बार नसीब हुए होंगे।''[13] मालती अपने एन.जी.ओ. का काम इतनी शिद्दत से करती है कि बहुत कम समय में वह अपने एन.जो.ओ. को कहाँ-से-कहाँ पहुँचा देती है। जो विनायक पहले मालती के काम को निरर्थक मानता था, वह भी अब उसका लोहा मानता है- ''कितनी जल्दी, कितनी तेजी के साथ तुमने अपना लक्ष्य तय करके उसमें अपने को झोंक दिया । सच मानों मालती, इतने कम समय में तुम्हारे इस सामाजिक कर्म ने तुम्हें जैसी सार्थकता, जैसा आत्मविश्वास और जैसी कृतार्थता प्रदान की है, वैसा तो मैं अपने चुने हुए काम के बारे में कभी दावा कर ही नहीं सकता।''[14]

यह जरूरी नहीं है कि सिर्फ सरकारी या गैर-सरकारी कार्यालयों में काम करने वाली महिलाएँ ही कामकाजी कहलाती हैं। मेहनत मजदूरी करके धनोपार्जन कर स्वाभिमान से जीवन जीने वाली महिलाएँ भी कामकाजी कहलाती हैं। 'सफेद परदे पर' उपन्यास की रामरती ऐसी ही नारी पात्र है, जो अपने बच्चों के पालन-पोषण के लिए दूसरों के घरों में नौकरानी का काम करती है। उसका पति खून करके भाग जाता है। वह घर की जिम्मेदारियों के प्रति उन्मुख हो जाता है; लेकिन रामरती माता और पिता दोनों की जिम्मेदारीयों को निभाती है। वह पढ़ी-लिखी नहीं है, इसलिए दूसरों के घरों में जाकर नौकरानी का काम करके धनोपार्जन करती है और अपने बच्चों को संभालती है; लेकिन हार नहीं मानती है। शाह जी ने रामरती के माध्यम से समाज के उस नारी वर्ग को हमारे सामने रखा है, जो अपने परिवार के पालन-पोषण के लिए मेहनत मजदूरी करके जीवन यापन करता है। रामरती के इसी सशक्त रूप से नायक दत्ता जी बड़े गर्व के साथ अपने मित्र सोसो को अवगत करवाते हैं- ''रामरती छह-छह घरों में बर्तन-चौका करके किसी तरह अपना और अपने बच्चों का पेट भरती है।''[15]

शाह जी एक अनुभवी साहित्यकार है, जिन्होंने समाज के विभिन्न पक्षों को बड़ी ही गहराई से जाना और परखा है, जिसकी स्पष्ट झलक उनके उपन्यासों में देखी जा सकती है। उन्होंने अपने उपन्यासों में नारी के संघर्षशील रूप को समाज के सामने रखा है, जिसमें नारी परिस्थियों से घबराकर भागती नहीं; बल्कि उसका डटकर सामना करती है। जिसके पास न शिक्षा की ताकत है, न पुरुष का साथ; फिर भी परिस्थितियों से लड़ती हुई वह अपने बच्चों का पालन-पोषण करती है। हमारे देश में न जाने रामरती जैसी कितनी ही महिलाएँ होंगी, जो इस प्रकार की दोहरी जिम्मेदारियाँ निभा रही हैं।

मालती, शकुंतला, मिसेज रैणा और शोभना वास्तव में इक्कीसवीं सदी की सशक्त भारतीय नारी का परिचायक हैं, जो बिना तिलमिलाए और घबराए हुए, अपना मार्ग खुद बना रही हैं । वे अपने घर-परिवार एवं कार्यस्थल की दोहरी जिम्मेदारियों को एक साथ बखूबी निभा रही हैं। वे स्वाभिमान से जीवन यापन करना चाहती हैं। वे अपने सपनों को एक आकार दे रही हैं और साथ ही अपने समाज, देश के विकास में भी सहयोग दे रही हैं ।

निष्कर्ष :

आधुनिक नारी अब घर-परिवार की चारदीवारी में बंद नहीं रह सकती है। उसके घर की सीमाएँ अब विस्तृत होकर विश्व स्तर तक फैल चुकी हैं। खुलकर साँस लेने के अधिकार तक से वंचित नारी आज अपने सपनों को एक नया उड़ान देकर, अपने उज्ज्वल भविष्य की ओर कदम बढ़ा रही है। नारी अपनी घर-गृहस्थी के संचालन में पहले अपना तन-मन लगाकर कार्य करती थी; लेकिन अब तन, मन, और धन से अपनी घर-गृहस्थी का संचालन कर रही है। इस प्रकार आज की सशक्त नारी घर-गृहस्थी और कार्य स्थल की जिम्मेदारियों को पूरी श्रद्धा से निभा रही है और अपने कुटुंब की जरूरतों को पूरा करने के लिए पुरुषों के साथ कदम-से-कदम मिलाकर चल रही है, जिससे परिवार को आर्थिक सहायता मिल रही है। जहाँ भी नजर दौडाएँ महिलाएँ हमें दौड़ती-भागती ही नजर आती हैं। कभी अपनी घरेलू जिम्मेदारियों को निभाने के लिए तो कभी अर्थोपार्जन के लिए। इस दोहरी जिम्मेदारियों को निभाने में उन्हें बहुत सारी जटिल समस्याओं का भी सामना करना पड़ रहा है, फिर भी वे बिना रुके, बिना थके, निर्भीकता से कार्य करने में आमादा हैं। शाह जी के उपन्यासों की नारी पात्रों के बारे में पढ़ते समय महसूस होता है कि ये तो हमारे ही आसपास की महिलाएँ हैं, जिन्हें हम अपने समाज में देख रहे हैं। महिलाओं ने अपनी बुद्धिमत्ता से शिक्षा, राजनीति, खेलकूद, उद्योग, समाज-सेवा इत्यादि क्षेत्रों में अपनी पहचान बनाई है, जिसके कारण समाज का महिलाओं के प्रति एक सकारात्मक दृष्टिकोण बना है। पितृ सत्तात्मक समाज में महिलाओं ने पुरुषों को अपना लोहा मानने के लिए मजबूर कर दिया है, इसलिए वर्तमान युग को नारी चेतना या नारी जागृति का युग कहा जाए तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। ❑

संदर्भ ग्रंथ :

1- अतीत होती सदी और स्त्री का भविष्य (लेख) मई 2000, सरोज वशिष्ठ, पृष्ठ संख्या- 49, हंस
2- हंस की नारीवादी उड़ान, मार्च 2000 हंस, प्रभा खेतान, पृष्ठ संख्या- 12
3- गोबर गणेश, रमेशचंद्र शाह, पृष्ठ संख्या-121
4- सफेद परदे पर, रमेशचंद्र शाह, पृष्ठ संख्या- 99-100
5- विनायक, रमेशचंद्र शाह, पृष्ठ संख्या- 25
6- कमबख्त इस मोड़ पर, रमेशचंद्र शाह, पृष्ठ संख्या- 36
7- विनायक, रमेशचंद्र शाह, पृष्ठ संख्या- 78
8- गोबर गणेश, रमेशचंद्र शाह, पृष्ठ संख्या-298
9- सफेद परदे पर, रमेशचंद्र शाह, पृष्ठ संख्या-28
10- हिंदी उपन्यासों में कामकाजी महिला, डॉ. रोहिणी अग्रवाल, पृष्ठ संख्या-56
11- स्वातंत्र्योत्तर हिंदी नाटक विचार-तत्व, डॉ. अवधेशचंद्र गुप्त, पृष्ठ संख्या-93
12- विनायक, रमेशचंद्र शाह, पृष्ठ संख्या-143
13- विनायक, रमेशचंद्र शाह, पृष्ठ संख्या- 26
14- विनायक, रमेशचंद्र शाह, पृष्ठ संख्या- 92
15- सफेद परदे पर, रमेशचंद्र शाह, पृष्ठ संख्या- 121

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

स्त्री-विमर्श

मन्नू भंडारी की आत्मकथा 'एक कहानी यह भी' में चित्रित समाज का बदलता स्वरूप

कसीरा जहाँ

शोधार्थी (पीएच.डी), हिंदी विभाग
कॉटन विश्वविद्यालय, गुवाहाटी
असम-781001
मो. 9707197734
ई-मेल : rubijahan81@gmail.com

शोध-सार :

आधुनिक गद्य साहित्य की विधाओं में आत्मकथा एक ऐसी विधा है, जो आत्मकथाकार के जीवन को बहुत ही निकटता से निदर्शन कराती है, साथ ही उस समय के सामाजिक परिवेश तथा स्वरूप को जानने-समझने की सुविधा उपलब्ध कराती है। मन्नू भंडारी ने अपनी आत्मकथा 'एक कहानी यह भी' में अपने लेखकीय जीवन के साथ भावनात्मक तथा सांसारिक जीवन के कई पहलुओं पर प्रकाश डालने के साथ ही उस दौर की सामाजिक परिदृश्य पर पूर्ण प्रकाश डाला है।

बीज शब्द : मन्नू भंडारी, आत्मकथा, समाज, स्वरूप।

प्रस्तावना :

आत्मकथा की सजीवता उसमें वर्णित परिवेश तथा वातावरण पर निर्भरशील है। एक आत्मकथा में आत्मकथाकार के जीवन चरित के साथ उसके समकालीन लोगों का जीवन और साथ ही युग और परिवेश सब कुछ उभरकर आता है। एक आत्मकथा समाज तथा परिवेश के साक्षात निदर्शन की माँग रखती है। अत: आत्मकथाकार जिस समाज में रहता है, उसके रीति-रिवाज, सभ्यता तथा संस्कार विषयक मान्यताओं को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से वर्णित करता है। हिंदी कथा साहित्य में मन्नू भंडारी एक कहानीकार, उपन्यासकार तथा एक नाटककार के रूप में जानी जाती हैं। वह स्वातंत्र्योत्तर काल की प्रमुख महिला कथाकारों में से एक हैं। मन्नू भंडारी ने अपनी कहानी, उपन्यास तथा नाटकों में भारतीय समाज की छवि को प्रस्तुत करने के साथ ही सामाजिक गतिविधियों में आने वाले परिवर्तन, विभिन्न प्रकार की सामाजिक समस्याओं को चित्रित किया है। मन्नू भंडारी ने अपने साहित्य में उन समस्याओं को सूक्ष्मता से विश्लेषित कर सोचने-

विचारने की ओर प्रवृत्त किया है। इस शोध पत्र की सीमा बद्धता यही है कि 'एक कहानी यह भी' में आत्मकथाकार द्वारा चित्रित समाज तथा उसके बदलते स्वरूप को प्रस्तुत करने का प्रयास किया जा रहा है।

प्रासंगिकता :

साहित्य समाज का दर्पण होता है। समाज को जानने तथा समझने के लिए साहित्य से सशक्त माध्यम हो ही नहीं सकता। मन्नू भंडारी की आत्मकथा 'एक कहानी यह भी' में समाज के बदलते स्वरूप का चित्रण मिलता है। समाज में होने वाले बदलाव दो प्रकार के है -घनात्मक बदलाव तथा ऋ णात्मक बदलाव। आत्मकथाकार ने दोनों प्रकार के बदलवों को रेखांकित किया है। आत्मकथाकार ने ऋणात्मक बदलाव पर चिंता व्यक्त किया है। आधुनिकता के नाम पर या निजी जीवन जीने के नाम पर किस प्रकार हम समाज के समष्टिगत रूप से कटकर एकाकी और अकेलेपन का शिकार बनते जा रहे हैं। पड़ोसियों के बीच पनपती दूरियाँ समाज में बढ़ती संवेदनहीनता का सूचक हैं, जो हमें सोचने पर विवश करते हैं कि हम किस ओर बढ़ रहे हैं। वर्तमान समय में इस बात की आवश्यकता है कि उन ऋणात्मक बदलाओं को रोकने का प्रयास करना चाहिए। इस दृष्टि से यह विषय आज के संदर्भ में प्रासंगिक है।

अध्ययन में व्यवहृत पद्धति :

प्रस्तुत शोध पत्र में विश्लेषणात्मक पद्धति का प्रयोग किया गया है। अवतरण एवं ग्रंथ-सूची आधुनिक भाषा संस्था (Modern Language Association) के अनुसार रखे गए हैं।

विश्लेषण एवं निर्वचन :

किसी भी समाज के निदर्शन करने का सबसे विश्वसनीय स्रोत उस समय का साहित्य है। सभी साहित्यिक विधाओं में आत्मकथा एक ऐसी विधा है, जिसमें मानव जीवन को निकटता से विश्लेषित किया जाता है। अत: आत्मकथाकार की जीवन यात्रा के वर्णन के साथ ही उस समय के समाज का प्रतिबिंब भी दिख पड़ता है। लेखन तथा उसकी सीमाओं पर विचार करते हुए मन्नू भंडारी कहती हैं कि ''यों भी एक लेखक कि यात्रा होती ही क्या है? बस, उसकी दृष्टि परिवार के छोटे से दायरे से निकालकर धीरे-धीरे अपने आसपास के परिवेश को समेटते हुए समाज और देश तक फैलती चलती है।''(भंडारी, 2019, 9) मन्नू भंडारी ने अपनी आत्मकथा में अपने कथन के अनुसार ही अपनी दृष्टि परिवार के दायरे से निकालकर अपने आस-पास के परिवेश और समाज को बड़ी ही तटस्थता से वर्णित किया है। आत्मकथाकार ने इस आत्मकथा में अंतर्मन की भावनात्मक अनुभूतियों के विश्लेषण के साथ ही घर, समाज, राष्ट्र और विश्व तक को समेट लिया है। आत्मकथाकार ने सामाजिक मान्यताओं के वर्णन के साथ ही उसमें बदलाव को भी रेखांकित किया है। समय प्रवाहशील है तथा उस प्रवाह में सामाजिक गतिविधिओं में बदलाव आना संभव है। आत्मकथा लेखन एक लंबी प्रक्रिया है, अत: आत्मकथाओं में समाज के बदलते स्वरूप को देखा जा सकता है। समाज के इसी बदलते स्वरूप को मन्नू भंडारी की आत्मकथा 'एक कहानी यह भी' में देखा जा सकता है।

इस शोध पत्र में मन्नू भंडारी की आत्मकथा में चित्रित समाज के बदलते स्वरूप को निम्नलिखित बिंदुओं के अंतर्गत विश्लेषित करने का प्रयास किया जा रहा है-

1. रूढ़िवादी विचारों के प्रति बदलती सोच :

समय प्रवाह के साथ-साथ हमारे विचारों में भी परिवर्तन होता रहता है। एक समय था, जब समाज की कुरीतियों को हम परंपरा के रूप में ढो रहे थे। हमारे जीवन के साथ उनका गहरा संबंध हो गया था। बाल-विवाह हमारी परंपरा बन चुकी थी। माँ-बाप अपने बच्चों को उनका बाल्यावस्था में ही विवाह संपन्न कर अपने कर्तव्य की समाप्ति समझते थे। केवल लड़कियों के क्षेत्र में ही यह नहीं होता था, बल्कि लड़कों को भी कम उम्र में विवाह के बंधन मे बाँध दिया जाता था। वह समय उनके खेलने-कूदने की होती है, विवाह का अर्थ तक नहीं जानते। बाल विवाह की तरह ही पर्दा प्रथा भी एक सामाजिक कुरीति ही बन चुकी थी। महिलाओं को पर्दे में रहना और घर की चारदीवारी ही उनकी सीमा होती थी। पर्दा प्रथा एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था है, जो समाज को कई गुणा पीछे धकेलती है। मन्नू भंडारी ने अपनी आत्मकथा में वर्णित किया है कि समाज में ये प्रथाएँ उस समय प्रचलित तो थीं, परंतु समाज का एक वर्ग ऐसा भी था, जो इन लोक-प्रचलित कुरीतियों का विद्रोह भी कर रहा था। मन्नू भंडारी ने एक स्थान पर कहा है कि आर्य संस्कारी होने के कारण इनके घर में ये प्रथाएँ नहीं मानी जाती थीं। मन्नू भंडारी ने स्वयं स्वीकारा है- ''आज से करीब अड़सठ साल पहले बिना घूँघट-पर्दे के की गई बहिन की शादी काफी क्रांतिकारी कदम था।'' (भंडारी, 2019, 17)

2. स्त्री शिक्षा के प्रति बदलती सोच :

मन्नू भंडारी ने इस आत्मकथा में तत्कालीन समय में समाज में स्त्री शिक्षा तथा उसके प्रति लोगों की बदलती सोच की ओर संकेत किया है। स्वतंत्रता प्राप्ति से बिल्कुल पूर्व का समय वह समय था, जब स्त्री शिक्षा के प्रति लोग सजग हो रहे थे। अपने अधिकारों के प्रति सचेत हो रहे थे। इससे कुछ ही वर्ष पूर्व ही परिस्थितियाँ बिल्कुल अलग थीं। उस समय स्त्री शिक्षा या स्त्रियों को घर की चारदीवारी से बाहर जाकर शिक्षा ग्रहण करना एक क्रांतिकारी कदम ही माना जाता था। स्त्रियों का दायरा घर की चारदीवारी ही होती थी। लड़कों को शिक्षा का अधिकार तो था, परंतु लड़कियाँ इस अधिकार से वंचित थीं। मन्नू भंडारी ने आर्य समाज का उल्लेख किया है। समाज सुधार की इस प्रक्रिया में आर्य समाज की भूमिका महत्वपूर्ण है। आर्य समाज ने उस समय भारतीय समाज के एक बड़े वर्ग को प्रभावित किया था, जिससे मन्नू भंडारी के पिता भी अछूते नहीं रह सके। उन्होंने आर्य समाज के समाज सुधार वाला पक्ष अपनाया। उन्होंने शिक्षा के क्षेत्र मे लड़कों तथा लड़कियों में भेद नहीं किया। मन्नू भंडारी ने अपनी आत्मकथा में कहा है- ''लड़कियों को लड़कों की तरह पढ़ना....बाल विवाह और अन्य सामाजिक कुरीतियों का विरोध ...आडम्बरों और ढकोसलों की छुट्टी, बचपन से यहीं सब देखा हमने।'' (भंडारी, 2019, 17)

3. पड़ोस कल्चर के प्रति बदलता नजरिया :

पड़ोस कल्चर का अर्थ है, हमारे आस-पास के लोग और पारस्परिक संबंध। कुछ चंद वर्षों की बात है, जब भारतीय समाज में घर और परिवार का दायरा बड़ा हुआ करता था। पड़ोस कल्चर के बड़े मायने होते थे। कुछ घर तो परिवार का हिस्सा हुआ करते थे। बच्चों के लिए पूरा मुहल्ला ही घर हुआ करता था, जहाँ वे खेल-कूद कर ही बड़े होते। आस-पड़ोस के घर तो एक ही परिवार से रहते थे। लोगों में आपसी प्रेम तथा भाईचारा था। मन्नू भंडारी ने एक स्थान पर उल्लेख किया है- ''हाँ, इतना जरूर था कि उस जमाने में घर की ये दीवारें घर तक ही समाप्त नहीं हो जाती थीं, बल्कि पूरे मुहल्ले तक फैली रहती थीं, इसलिए मुहल्ले के किसी भी घर में जाने पर कोई पाबंदी नहीं थी, बल्कि कुछ घर तो परिवार का हिस्सा ही थे।'' (भंडारी, 2019,19)

समय की इस गतिशीलता ने पड़ोस कल्चर की अवधारणा को क्षीण कर दिया है। महानगरों में तो इसकी स्थिति और भी दयनीय है। एक घर से सटे दूसरे घर के लोगों में जान-पहचान ही नहीं है। आज आपसी प्रेम, भाईचारा तथा विश्वास की कमी ही सबसे बड़े

कारक के रूप में दिख पड़ता है। अपनी जिंदगी खुद जीने की होड़ ने मानुष्य और समाज को कितना संकुचित कर दिया है। वर्तमान समय में पड़ोस कल्चर की इसी बदलते स्वरूप पर विचार करते हुए कहा है- ''आज तो मुझे बड़ी शिद्दत के साथ यह महसूस होता है कि अपनी जिंदगी खुद जीने के इस आधुनिक दबाव ने महानगरों के फ्लैट में रहने वालों को हमारे इस परंपरागत 'पड़ोस-कल्चर' से विच्छिन्न करके हमें कितना संकुचित, असहाय और असुरक्षित बना दिया है। (भंडारी, 2019,19)

इस स्थिति के लिए कहीं-न-कहीं हम ही जिम्मेदार हैं। हमारी सोच, हमारे विचार कहीं-न-कहीं समष्टिगत से व्यष्टिगत हो गए हैं। महानगरीय जीवन के प्रति बढ़ता मोह तथा अपनी जिंदगी खुद जीने की लालसा ने मानवीय संवेदना की भावना तथा अपनत्व की भावना का ह्रास कर दिया है। मन्नू भंडारी ने इस बात की ओर संकेत करते हुए एक स्थान पर कहा है-''उन दिनों आज जैसी दूरियाँ तो नहीं थीं और मन भी बेहद-बेहद जुड़े हुए थे। एक बड़े परिवार की तरह ही रहते थे हम लोग। उसके बाद तो तीनों परिवारों ने 'अपने-अपने घर' बना लिए और सब एक दूसरे से दूर जा पड़े।'' (भण्डारी, 2019, 102)

4. आधुनिकता का बदलता स्वरूप :

'आधुनिकता' शब्द पाश्चात्य साहित्य की देन है, जो नवीनता के प्रादुभार्व के अर्थ में लिया जाता है। भारतीय साहित्यकारों ने आधुनिकता शब्द को विभिन्न प्रकार से परिभाषित किया है। परंपरा के संशोधन, रूढ़िवादिता का नाश ही आधुनिकता है। परंपरा से तात्पर्य है, एक का दूसरे को तथा दूसरे का तीसरे को दिया जाने वाला क्रम। एक पीढ़ी दूसरी पीढ़ी को हूबहू वही नहीं देती, जो उसे पूर्ववर्ती पीढ़ी से प्राप्त होती है। उसमें बहुत कुछ बदलता भी है और जुड़ता भी है। आधुनिकता का प्रभाव स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारतीय समाज पर भी पड़ा। जीवन का हर क्षेत्र आधुनिकता से प्रभावित है। आधुनिकता का जन्म समाज को सकारात्मकरूप देने के उद्देश्य से हुआ था, परंतु परवर्ती समय में यह देखा गया कि यह समाज पर एक विकृत प्रभाव ही डाल रहा है। आधुनिकता के नाम पर रिश्तों में दरार पड़ने शुरू हुए, तनाव की स्थिति बनी, जिससे आत्मकथाकार मन्नू भंडारी भी बच नहीं पाईं। अपने वैवाहिक जीवन में आधुनिकता के नाम पर मिली समानांतर जिंदगी ही आत्मकथाकार के जीवन की सबसे बड़ी त्रासदी बनी, जिसका उल्लेख उन्होंने किया है- ''पर यह सब जब पहली बार जाना था....ओफ वह रात! कलकत्ता में साथ जिंदगी शुरू करते ही लेखन की अनिवार्यता और आधुनिकता के नाम पर समानांतर जिंदगी का नुस्खा ही नहीं पकड़ाया था राजेन्द्र ने, बल्कि अपनी अलमारी, बक्सों और दराजों के तालों की ऐसी चौकसी आरंभ कर दी थी कि मेरा तो दम ही घुटने लगा था।'' (भंडारी, 2019, 212)

आधुनिकता की पक्षधर तो आत्मकथाकार भी थीं, जो वास्तविक अर्थ में समाज का संशोधन करे। रिश्तों में तनाव, दरार पैदा करने वाली आधुनिकता की पक्षधर कतई नहीं थीं। मन्नू भंडारी कहती हैं कि हम विचारों से बेहद आधुनिक पर व्यवहार में वहीं परंपरावादी।

5. समाज मे नारी की स्थिति :

मन्नू भंडारी ने समाज में नारी की स्थिति में आए परिवर्तन पर गहराई से अध्ययन कर अपनी आत्मकथा में विश्लेषित किया है। आत्मकथाकार ने यह स्पष्ट रूप से उल्लेख किया है कि उनसे पहले वाली पीढ़ी की महिलाओं का समाज में स्थान कितना दयनीय था। न तो उनका कोई स्वतंत्र व्यक्तित्व था और न ही स्वतंत्र अस्तित्व। वह तो मात्र रिश्तों से ही पहचानी जाती। किसी की माँ, बेटी, बहन, पत्नी आदि। इन रिश्तों से अलग तो स्त्रियों की कोई पहचान ही न थी। लेकिन समय के परिवर्तन के साथ शिक्षा, जागरूकता, आर्थिक स्वाधीनता, दूसरे देशों से बढ़ती मित्रता ने समाज में स्त्रियों के प्रति एक नवीन सोच को जन्म दिया। स्त्री ने अपने स्वतंत्र अस्तित्व का अनुभव किया। स्वतंत्र अस्तित्व के इस भावबोध के जागते ही उसे सबसे पहले उन्हीं रिश्तों से लड़ना पड़ा, जो आज भी किसी-न-किसी रूप में चल ही रही है। आत्मकथाकार मन्नू भंडारी ने इसका उल्लेख अपनी आत्मकथा में करते हुए कहा है- ''हमसे पहले वाली पीढ़ी की स्त्री का न तो कोई स्वतंत्र व्यक्तित्व होता था

...न ही कोई स्वतंत्र पहचान, वह तो मात्र रिश्तों से ही पहचानी जाती थी।.....आज भी अपने व्यक्तित्व के दम पर अपने संबंधों से टकराने वाली हजार-हजार औरतों की त्रासदी क्या यहीं नहीं?'' (भंडारी, 2019,120)

उपसंहार :

आत्मकथाकार मन्नू भंडारी ने बहुत ही सत्यता के साथ अपने समय के समाज, सामाजिक व्यवस्थाएँ, सामाजिक गतिविधियों को तथा समय-समय पर उसमें आने वाले परिवर्तनों को बहुत ही बारीकी के साथ विश्लेषित किया है। अपनी आत्मकथा में उन सभी सामाजिक समस्याओं का वर्णन किया है, जिससे लोग पीड़ित थे। समाज में फैले उन अंधविश्वासों का वर्णन किया है, जो भारतीय समाज व्यवस्था को पीछे की ओर ढकेल रहे थे। बाल विवाह, पर्दा प्रथा आदि के प्रति किस प्रकार लोगों का नजरिया बदल रहा था। स्त्री शिक्षा पर बल दिया जा रहा था। इन सबके पीछे आर्य समाज की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। आत्मकथाकार ने पड़ोस कल्चर के प्रति बदलती लोगों की सोच तथा महानगरीय जीवन के प्रति बढ़ते आग्रह को दिखाया है। लोगों के बीच मानवीय संवेदना तथा अपनत्व की भवना के ह्रास की त्रासदी का उल्लेख किया है। समाज में नारी की स्थिति में आए परिवर्तन को रेखांकित किया है। मन्नू भंडारी ने स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात आधुनिकता के नाम पर मानवीय रिश्तों में आए उतार-चढ़ाव को प्रस्तुत किया है। इस प्रकार हम कह सकते है कि आत्मकथाकार मन्नू भंडारी ने अपनी आत्मकथा में समाज तथा समय के साथ बदलते उसके स्वरूप का न केवल विश्लेषणात्मक अभिव्यक्ति दी है, बल्कि उस बदलाव के कारकों पर विचार किया है। आत्मकथाकार मन्नू भंडारी ने घनात्मक बदलाव की प्रशंसा तथा ऋणात्मक बदलाव के प्रति अपनी शंका व्यक्त की है। साथ ही पाठकों को उन ऋणात्मक बदलाव के प्रति सचेत किया है। ❑

संदर्भ ग्रंथ सूची:

1. जाधव डॉ माधवी, मन्नू भंडारी के साहित्य में चित्रित समस्यायें, 2007, विद्या प्रकाशन, कानपुर-22
2. भंडारी, मन्नू, एक कहानी यह भी, 2019, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली-110051
3. सिंह, डॉ. कमलेश,1989, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली-110002
4. सिंह त्रिभुवन और अन्य, साहित्यिक निबंध, 2008, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी-221001

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

स्त्री-विमर्श

जयशंकर प्रसाद और शरतचंद्र चट्टोपाध्याय के कथा साहित्य में नारी दृष्टि

संगीता पॉल

पिता- प्रमोद पॉल
राम ठाकुर पल्ली, दक्षिण लामडिंग,
लामडिंग, होजाई, असम,
पिन -782447
मो. 7002648474
ई-मेल : sangitapaul274@gmail.com

सारांश :

जयशंकर प्रसाद की रचनाओं में जीवन का विशाल क्षेत्र समाहित हुआ है। प्रेम, सौंदर्य, रहस्यानुभूति, दर्शन और प्रकृति चित्रण आदि विविध विषयों को अभिनव और आकर्षक भंगिमा के साथ अपने काव्य प्रेमियों के सम्मुख प्रस्तुत किया है। प्रसाद की विभिन्न विधाओं में नारी चरित्र का अवलोकन देखने को मिलता है। उन्होंने नारी चरित्र को ममतामयी, मर्मस्पर्शी, वेदनासिक्त तथा करुणामयी व्यक्त किया है। प्रसाद के अनुसार भारतीय समाज एक पुरुष प्रधान समाज है। शासन और शोषण के पुरानी खेल प्रक्रिया में सदैव नारी एक महत्वपूर्ण मोहरा रही है। शोषक पुरुष समाज ने अपने स्वार्थ सिद्धि के लिए नारी के ऊपर तरह-तरह से मोहरे का प्रयोग किया है। नारी अगर अपनी रक्षा का भार खुद उठा सकती तो समाज में आधी से अधिक समस्याएँ ठीक हो सकती हैं। प्रसाद की रचना में स्त्रियों का चित्रण व्यापक रूप से किया गया है।

दूसरी ओर शरतचंद्र चट्टोपाध्याय ने भी नारी के बारे में बहुत अधिक लिखा और एक पितृ सत्तात्मक समाज में उनकी स्थिति के बारे में स्पष्ट रूप से और ईमानदारी से व्यक्त किया है। शरतचंद्र के मन में नारियों के प्रति बहुत सम्मान था। वे नारी हृदय के सच्चे पारखी थे। उनकी रचनाओं में स्त्री के रहस्यमय चरित्र, कोमल भावनाओं, दमित इच्छाओं, अपूर्ण आशाओं, अतृप्त आकांक्षाओं, उसके छोटे-छोटे सपनों, छोटी-बड़ी मन की उलझनों और उसकी महत्वाकांक्षाओं का जैसा सूक्ष्म, सच्चा और मनोवैज्ञानिक चित्रण-विश्लेषण हुआ है, वह अन्यत्र दुर्लभ है।

जयशंकर प्रसाद और शरतचंद्र चट्टोपाध्याय की विधाओं में 'स्त्री चेतना' ज्यादातर देखने को मिलती है। उन्होंने अपनी रचनाओं को कल्पना, प्रेम, वीरता, आदर्शवाद आदि स्त्री पात्रों के जरिए

चित्रित किया है।

मूल शब्द :

प्रेम, सौंदर्य, रहस्यानुभूति, ममतामयी, करुणामयी, शोषण, शोषक पुरुष, मोहरे, पितृ सत्तात्मक, ईमानदारी, पारखी, अपूर्ण आशाओं, स्त्री चेतना।

उद्देश्य :

जयशंकर प्रसाद और शरतचंद्र चट्टोपाध्याय के साहित्य में 'स्त्री विमर्श' पर प्रकाश डाला गया है। इनके लेखन में सामाजिक भेदभाव, अन्याय और अंधविश्वास के साथ-साथ स्त्री के रहस्यमय चरित्र का भी वर्णन मिलता है। इसलिए प्रसाद और शरत की कृतियों में 'स्त्री चेतना' का अध्ययन एक महत्वपूर्ण शोध कार्य हो सकता है। विषय के विस्तार को ध्यान में रखकर ही अध्ययन का विषय बनाया गया है। जयशंकर प्रसाद और शरतचंद्र चट्टोपाध्याय के कथा साहित्य में नारी के प्रति दृष्टि एक औचित्यपूर्ण विषय है।

प्रविधि :

प्रस्तुत शोध लेखन के दौरान जयशंकर प्रसाद और शरतचंद्र चट्टोपाध्याय के कथा साहित्य में नारी दृष्टि को उद्घाटित करने के लिए प्रमुख रूप से विश्लेषणात्मक और समीक्षात्मक शोध प्रविधि अपनाई गई है।

पूर्व शोध कार्य का विवरण :

उपलब्ध जानकारी के अनुसार अपनी तरह का यह पहला शोध लेखन है। इस विषय को लेकर अब तक कोई भी शोध लेखन नहीं हुआ है। यद्यपि जयशंकर प्रसाद और शरतचंद्र चट्टोपाध्याय के अन्य पहलुओं पर शोध लेखन हो चुके हैं, किंतु तुलनात्मक अध्ययन नहीं हुआ है। प्रसाद और शरत के कथा साहित्य में नारी दृष्टि पर किया गया यह एक मौलिक शोध कार्य है।

भूमिका :

भारतीय समाज में नारी का विशेष महत्व है, जहाँ पर नारी को देवी का दर्जा दिया गया है, नारी का सम्मान किया जाता है, और उसकी पूजा की जाती है। नारी के विभिन्न रूप होते हैं जैसे- एक ही नारी माँ, बेटी, बहन और जीवन संगिनी के रूप में अपना कर्तव्यों का पालन करती है। किंतु भारतीय समाज में नारी के लिए कुछ कुरीतियाँ भी थीं। बाल विवाह, दहेज प्रथा, सतीदाह प्रथा जैसी बुराइयों के कारण हमारे समाज की नारी पीड़ित और प्रताड़ित हो रही थी। लेकिन धीरे-धीरे यह सब बुराइयाँ कम होती गईं। समाज में नारी और पुरुष दोनों वर्ग के लोग रहते हैं। नारी को भी पुरुषों के समान अधिकार मिलना चाहिए।

मूल आलेख :

प्राचीन काल में भारतीय समाज में नारी को बहुत ज्यादा महत्व दिया गया है, क्योंकि उपनिषदों में अर्द्धनारीश्वर की विलक्षण कल्पना करते हुए नारी को पुरुष की पूरक माना गया है। धार्मिक अनुष्ठान बिना पत्नी के अधूरे माने जाते थे। इसलिए राम ने अश्वमेध यज्ञ के समय सीता की स्वर्ण प्रतिमा बनवाई। कहा जाता है कि जहाँ नारी का सम्मान होता है, वहाँ देवताओं का भी वास होता है और हम जानते हैं कि देवता कार्य सिद्धि में सहायक होते हैं। इसलिए कहा जा सकता है कि जिस समाज में नारी विभिन्न कार्य क्षेत्रों में बढ़-चढ़कर हिस्सा लेती है, वहाँ प्रगति की संभावनाएँ अत्यधिक बढ़ जाती हैं।

मध्यकाल में आते ही नारी की स्थिति अत्यंत शोचनीय हो गई। बाह्य आक्रमण के कारण नारी का सतीत्व खतरे में पड़ गया था। इसलिए उसे घर की चार दीवारी में बंद होने को विवश होना पड़ा। मुसलमानों के शासन काल में पर्दा प्रथा का प्रचलन हुआ। उसी समय से बाल विवाह, सती प्रथा, पर्दा प्रथा जैसी बुराइयों का जन्म हुआ था। नारी की शिक्षा की ओर ध्यान कम हो गया था और उसे घर के कामकाज तक ही सीमित कर दिया गया। वह पुरुष की वासना पूर्ति का साधन मात्र बनकर उपभोग की वस्तु बन गई थी।

आधुनिक काल में पुन: नारी के गौरव की प्रतिष्ठा हुई। स्वतंत्रता संग्राम में भी नारियों का विशेष योगदान रहा। रानी लक्ष्मीबाई, सरोजिनी नायडू, कमला नेहरू जैसे नारियों ने अंग्रेजों के विरुद्ध लड़कर अपनी शक्तियों का बोध कराया। घर गृहस्थी का कार्य हो या राष्ट्र निर्माण, नारी के योगदान के बिना कोई भी कार्य पूर्ण नहीं हो सकता। वह माता, बहन, पत्नी, पुत्री एवं विभिन्न स्वरूपों में पुरुष के जीवन के साथ अत्यंत आत्मिक रूप

से संबंधित है।

जयशंकर प्रसाद और शरतचंद्र चट्टोपाध्याय ने अपने साहित्य में नारी के संघर्ष के बारे में डूब कर लिखा। जयशंकर प्रसाद एक कुशल नाटककार, उपन्यासकार, कहानीकार एवं निबंधकार थे और सभी साहित्यिक विधाओं पर अपनी लेखनी चलाई। ''प्रसाद का उपन्यास 'तितली' एक भारतीय नारी की करुण कथा है, जिसका आधार यथार्थ का धरातल है, किंतु उसकी परिणति आदर्श की ठोस शीला पर होती है। इसमें भारतीय और पाश्चात्य जीवन शैली के सहारे शैला और तितली की स्वच्छंद प्रेम-भावना को रूपायित करने का प्रयास किया गया है। इस उपन्यास में मूर्तिमान नारीत्व, आदर्श भारतीय पत्नीत्व जागृत हुआ है। 'तितली' प्रसाद की वह नारी पात्र है, जिसमें स्वाभिमान का भाव है। प्रसाद मूलत: कवि हैं और उनका कवि मन नारी को पूर्णता प्रदान करने में रमा है। जहाँ तितली शैला का आदर्श बनती है, वहीं तितली का अंत नारी के संघर्ष की चरम गाथा का परिचायक है।''[1]

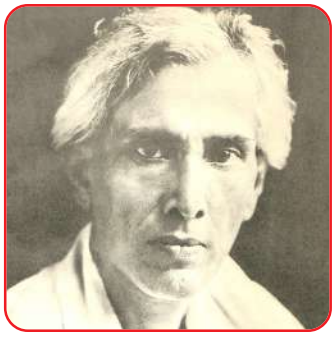

प्रसाद रचनाओं के आरंभ में ब्रजभाषा का प्रचुर प्रयोग करते थे। बाद में खड़ी बोली में अपनी लेखनी चलाई। 'ध्रुवस्वामिनी' प्रसाद द्वारा लिखा गया एक ऐतिहासिक नाटक है। 'ध्रुवस्वामिनी' का आधार इतिहास भले हो, पर उसमें नारी चेतना और इक्कीसवीं सदी में प्रचलित हो चले शब्द 'स्त्री-विमर्श' की पुख्ता नींव है। इस नाटक में प्रसाद नारी के सभी सद्गुणों-दया, त्याग, क्षमा, सहनशीलता, एकनिष्ठता, विश्वास को दृश्यांत किया है। 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक का नारी आदर्श प्रसाद के अन्य नाटकों से भिन्न है। इस नाटक में नारी के सामने भिन्न प्रकार की चुनौतियाँ हैं। एक तरफ उसका क्लीव, कायर, कापुरुष पति है, जो खुद को तथा अपनी सत्ता को बचाने के लिए अपनी अर्धांगिनी को शक कुमार को सौंपने को तैयार है तो दूसरी और ध्रुवस्वामिनी अपने अस्तित्व की रक्षा हेतु आत्महत्या करने को तैयार हो जाती है। वह अपने पति से अपनी रक्षा की प्रार्थना करती है। जब रामगुप्त उसकी मदद हेतु उत्तर नहीं देता तो वह कहती है-

''ध्रुवस्वामिनी - (खड़ी होकर रोष से) निर्लज्ज! मद्यप ! क्लीव!!! ओह तो मेरा कोई रक्षक नहीं? (ठहरकर) नहीं, मैं अपनी रक्षा स्वयं करूंगी! मैं उपहार में देने की वस्तु, शीतलमणि नहीं हूँ। मुझमें रक्त की तरल लालिमा है। मेरा हृदय उष्ण है और उसमें आत्मसम्मान की ज्योति है। उसकी रक्षा में ही करूंगी।''[2]

इन पंक्तियों में ध्रुवस्वामिनी का विद्रोह आज की नारी को दर्शाता है कि नारी कभी भी दबाई और कुचली नहीं जा सकती। चाहे वह आज की नारी हो या प्राचीन की, वह अपने सम्मान को आहत नहीं होने दे सकती। नारी के अंदर जो स्वाभिमान है, वही उसे अपनी रक्षा करना सिखाता है। नाटक में ध्रुवस्वामिनी को आधुनिक युग की नारी की तरह स्वतंत्र, विकासशील और अपने अधिकारों के प्रति सजग एवं सचेत बताया गया है। वह अपने सम्मान की रक्षा हेतु परिस्थितियों को बदलना जानती है। नाटक में ध्रुवस्वामिनी के अंतर्मन की पीड़ा को प्रतीकात्मक ढंग से व्यक्त किया गया है।

प्रसाद ने नारी को न केवल पुरुष के समतुल्य माना है, वरन उसे पुरुष की अपेक्षा और अधिक ऊर्जावान, प्रकृति स्वरूपा एवं शक्ति स्वरूपा के रूप में चित्रित किया है। जहाँ एक ओर उनके नारी प्रधान उपन्यासों, कहानियों एवं नाटकों में नारी को पुरुष से कहीं श्रेष्ठतर रूप में चित्रित किया गया है, वहीं 'कामायनी' जैसे श्रेष्ठ महाकाव्य में नारी को हृदय और बुद्धि का प्रतीक माना है। 'कामायनी' में श्रद्धा, मनु और इड़ा के माध्यम से

प्रसाद एक अपूर्व काव्य सृष्टि को जन्म देते हैं। श्रद्धा 'कामायनी' की मुख्य नारी पात्र है। वह जिस सभ्यता का आरंभ करती है-उसमें मानव सभ्यता, दया, ममता, मधुरिमा, विश्वास, समर्पण, सेवा, जीवन, उत्सर्ग आदि प्रमुख हैं। प्रसाद श्रद्धा के माध्यम से कहते हैं कि जीवन के आरोह-अवरोह में जब नैसर्गिक रूप श्रद्धा भाव का आविर्भाव होगा तभी वह मानव जीवन का मूल्य बनेगा।

''प्रसाद की 'कामायनी' के विस्तृत अध्ययन के फलस्वरूप कहा जा सकता है कि प्रसाद ने जो नारी पात्र लिए हैं, वे पौराणिक तो हैं, लेकिन प्रसाद ने उनमें नारी सुलभ विशिष्ट गुण भरे और एक आदर्श के रूप में उन्हें प्रस्तुत किया। भारतीय संस्कृति के परम पुजारी प्रसाद अपने नारी पात्रों के माध्यम से सफल एवं सुदृढ़ उपदेश अप्रत्यक्ष रूप से दे गए, जिसका ज्ञान 'कामायनी' से मिलता है।''[3]

प्रसाद के नाटकों में नारी-पात्र जहाँ एक ओर भावुक, त्यागशीलता, कर्तव्यपरायण, सेवा परायणा, कोमल, उदार इत्यादि है, वहीं दूसरी ओर उनमें आत्मसम्मान का भाव प्रबल है, साथ ही नारी अपनी रक्षा के लिए विद्रोह की भावना रखती है।

शरतचंद्र चट्टोपाध्याय के संपूर्ण साहित्य में नारी के उत्थान और पतन की करुण कथाओं का वर्णन मिलता है। शरतचंद्र अपनी कहानियों में केवल पीड़ित-प्रताड़ित नारी की पतन गाथा नहीं गाते, सिर्फ उसके पतिता और कुलटा हो जाने की कथा नहीं कहते, बल्कि उसके स्नेह, त्याग, बलिदान, ममता और प्रेम की पावन-कथा भी उनके साहित्य में मिलती है।

''शरतचंद्र द्वारा रचित 'दत्ता' एक अद्‌भुत प्रेम कथा है, जो तत्कालीन समाज की प्रथाओं, मान्यताओं और कुछ स्वार्थी लोगों के बीच से होकर गुजरती है और अपनी जगह बनाती है। 'दत्ता' का अर्थ होता है- दिया गया वचन अर्थात किसी को कुछ देने का वचन। 'दत्ता' में नारी की दयनीय स्थिति की अभिव्यक्ति हुई है। 'दत्ता' एक ऐसी युवती विजया की मर्मस्पर्शी कथा है, जो अपने पिता की इकलौती पुत्री होने के नाते उनकी जमींदारी की मालकिन तो है, मगर पिता के धूर्त मित्र और उसके पुत्र के हाथों की कठपुतली बनकर रह गई है। 'दत्ता' के माध्यम से भारतीय साहित्यकार शरतचंद्र चट्टोपाध्याय ने नारी को निरीह एवं दयनीय स्थिति से उबरने का प्रयास किया है।''[4]

इस उपन्यास में सामाजिक मान्यताएँ हैं, बाधाएँ हैं, स्वामीभक्ति है, लोभ और छल से भरे लोगों की धन पिपासा है। इसमें समाज सेवा का भी भाव है, अर्थात मानव स्वभाव का हर गुण है, पर इन सब पर भारी पड़ता प्रेम भी है।

शरतचंद्र के उपन्यास 'चरित्रहीन' प्रेम की तलाश में भटकाव की कहानी है। इसमें नारी का शोषण, समर्पण और भाव-जगत तथा पुरुष समाज में उसका चारित्रिक मूल्यांकन-इसका विरोध करके नारी अपनी सुरक्षा प्राप्त करना इस उपन्यास का मुख्य विषय है। 'चरित्रहीन' में जिस नारी चरित्र की सृष्टि हुई है, उसकी समाज में कभी कमी नहीं रही और फिर शरतचंद्र ने तो तभी चरित्रहीनों के चरित्र की धर्मप्राण हिंदू की तरह रक्षा की है, ''शरतचंद्र ने किरणमयी के चरित्र द्वारा नारी-जीवन की व्यर्थता को दिखाया है अपने उपन्यास में। किरणमयी और हारान बाबू का गृहस्थ जीवन बड़ा ही करुण है। किरणमयी स्वामी का प्यार पाने के लिए तड़सने लगती है। घर में स्वामी है, सास है, एक दार्शनिक है, जो पत्नी को पढ़ाकर सुखी है, दूसरी घोर स्वार्थी है। पुत्रवधू से खूब काम करवा लेती है। किरणमयी दोनों विरुद्ध-प्रकृति के स्त्री-पुरुष के प्रेमहीन मेल को हिंदू समाज विधि का नियम मानकर स्वीकार नहीं करती। वहीं इससे किरणमयी के जीवन की ट्रैजेडी आरंभ होती है। शरतचंद्र ने नारी मन के साथ-साथ इस उपन्यास में मानव मन की सूक्ष्म प्रवृत्तियों का भी मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया है, साथ ही यह उपन्यास नारी की परंपरावादी छवि को तोड़ने का भी प्रयास करता है। उपन्यास प्रश्न उठाता है कि देवी की तरह पूजनीय और दासी की तरह पितृसत्ता के अधीन घुट-घुटकर जीने वाली स्त्री के साथ यह अंतर्विरोध और विडंबना क्यों है? यह उपन्यास 'चरित्र' की अवधारणा को भी पुन:परिभाषित करता है।''[5]

शरत के साहित्य में स्त्री के विभिन्न आयामों का उल्लेख बड़ी ही सजीवता से मिलता है। शरत ने नारी जीवन की हर पहलुओं की बड़ी बेबाकी से चर्चा की

है। 'अभागिनी का स्वर्ग' की अभागी अपने इकलौते पुत्र को जीवन के सारे संघर्षों में अकेली ही पालती है, जबकि इस दौरान वह बहुत से पुनर्विवाह के प्रस्तावों को ठुकरा देती है। अपने पति के होते हुए भी एक नारी किस तरह से अपने अधिकारों से वंचित रहती है। पति का सुख नहीं मिलता है पूरे जीवन में। पर अंतिम समय में पति के पैरों की धूल के लिए प्रतीक्षा करती रहती है। समाज के कारण अभागिनी को जीवन के संघर्ष में पीड़ित-प्रताड़ित होना पड़ा। पर अपने पुत्र के कारण समाज का यह कटु वाक्य भी उसने सहन किया। एक नारी ही है, जो अपने परिवार के कारण सब कुछ सहन कर सकती है।''[6]

शरत की अधिकतर कृतियों में नारी प्रेम और त्याग को अपने प्रेमी पुरुष पर निश्चल रूप से न्योछावर कर देती है। जैसे 'गृहदाह' की मृणाल अपने पति का तहे दिल से पूरा ख्याल रखती है और उसको प्रसन्न रखने का हर संभव प्रयत्न करती है। मृणाल का पति उससे बहुत बूढ़ा था। एक संवेदनशील लेखक होने के कारण शरत सभी स्त्रियों के प्रति बहुत ही सहानुभूतिशील थे। उन्होंने वेश्यावृत्ति के घिनौने रूप को भी देखा था, लेकिन इसके बावजूद उन स्त्रियों के प्रेम भाव को वो सादर नमन करते थे।[7]

उपसंहार :

प्रसाद ने अपने साहित्य में नारी को अबला नहीं, बल्कि पुरुष के समान ही शक्तिशाली ऊर्जावान, गरिमामयी तथा आदर्श नारी के रूप में चित्रित किया है। उनकी रचनाओं में नारी को बहुत ही सशक्त दिखाया गया है। प्रसाद की मान्यता है कि नारी को बंधनों से मुक्त करना चाहिए। समाज में उसे उच्च स्थान प्राप्त होना चाहिए, जिसकी वह हकदार है। नारी में भी हृदय होता है, उसमें भी सपने पनपते हैं, नारी को भी अपने सपने पूरा करने का हक है। भारतीय समाज में प्रारंभ से ही नारी को सम्मान प्राप्त है, जो कहीं-न-कहीं मध्ययुग में विलीन हो गया था। इतिहास भी इस बात की पुष्टि करता है कि जो समाज नारी का सम्मान नहीं करता, उसका अवश्य ही पतन होता है। नारी इस सृष्टि का अनुपम वरदान है। इस समग्र सृष्टि में जो कुछ सुंदर है, सरल है, उसमें नारी का ही योगदान है। नारी का वास्तविक रूप भावना, कोमलता, परोपकार तथा श्रद्धा जैसे-गुणों से मिलकर बनता है।

शरतचंद्र की कहानियों में नारी के नीचतम और महानतम दोनों रूपों को एक साथ दिखाया गया है। शरतचंद्र नारी के अधोपतन की कथा कहते-कहते उसी नारी के उदात्त और उज्ज्वल चरित्र को उद्घाटित करते हैं। शरतचंद्र अपनी कहानियों में नारी हृदय की गाँठों और गुत्थियों को जिस कुशलता से खोलते हैं, उनकी रचनाओं में नारी का जो बहुरूप सामने आता है, वैसी झलक विश्व साहित्य में कहीं नहीं मिलती। ❑

संदर्भ ग्रंथ :

1. प्रसाद का गद्य साहित्य, डॉ. राजमणि शर्मा, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण- 2002, पृ.- 9
2. जयशंकर प्रसाद ग्रंथावली (खण्ड-1), सम्पूर्ण नाटक एवं एकांकी, डॉ. सत्य प्रकाश मिश्र, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण- 2010, पृ.- 747
3. आधुनिक कवि, विश्वम्भर 'मानव', डॉ. रामकिशोर शर्मा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण- 2008, पृ.- 77
4. दत्ता, शरतचंद्र चट्टोपाध्याय, वंदना बुक एजेंसी, दिल्ली, संस्करण- 2012
5. आवारा मसीहा, विष्णु प्रभाकर, राजपाल, दिल्ली, संस्करण- 2021, पृ.- 99
6. शरतचंद्र चट्टोपाध्याय की अनमोल कहानियाँ, शरतचंद्र चट्टोपाध्याय, स्टार पब्लिकेशन प्रा.लि., नई दिल्ली, संस्करण- 2015, पृ.- 188-199
7. गृह-दाह, शरतचंद्र चट्टोपाध्याय, वंदना बुक एजेंसी, दिल्ली, संस्करण- 2005

ISSN 2321-4945
RNI NO. ASSBIL/2009/31008
UGC CARE Listed Research Journal

आलेख

इंदिरा गोस्वामी का उपन्यास 'अ-इतिहास' और राजधानी दिल्ली

मिनहाज अली

शोधार्थी, (पीएच.डी) हिंदी विभाग
पांडिचेरी विश्वविद्यालय
आर.वी. नगर कालापेट
पुडुच्चेरी-605014
मो. 7598611303
ई-मेल : minhazali82@gmail.com

इंदिरा गोस्वामी ज्ञानपीठ विजयी असमिया लेखिका हैं। इंदिरा ने सन 1971 में दिल्ली विश्वविद्याल के आधुनिक भारतीय भाषा अध्ययन विभाग में प्रोफेसर के रूप कार्यभार ग्रहण किया और दिल्ली विश्वविद्यालय से सेवानिवृत्ति ली थी। दिल्ली विश्वविद्यालय में अध्यापन के दौरान ही उन्होंने इस उपन्यास की रचना की थी। मूल रचना असमिया में 'तेज आरु धूलिरे धूसरित पृष्ठा' नामक शीर्षक से सन 1998 में प्रकाशित हुआ और संतोष गोयल ने 'अ-इतिहास' नाम से हिंदी में अनुवाद किया है। उन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से समाज की विसंगतियों को अभिव्यक्त किया है। परंतु इस उपन्यास में उन्होंने सन 1980 से लेकर सन 1984 तक के राजधानी दिल्ली के मनुष्यों की निष्ठुरता और पाशविकता का चित्रण किया है। इंदिरा ने दिल्ली विश्वविद्यालय में अध्यापन के दौरान दिल्ली की गलियों का, ऐतिहासिक जगहों का भ्रमण कर उससे संबंधित तथ्यों का संग्रह, राजधानी दिल्ली के अतीत-वर्तमान आदि का अध्ययन कर वास्तविक अभिज्ञता से इस उपन्यास की रचना की है। लेखिका गोस्वामी स्वयं कहती हैं- ''तेज आरु धूलिरे धूसरित पृष्ठार' नायक-नायिका सकलक मइ मोर जीवनत लग पाइसिलो। एइ तेज मांसर मानुबोरर शरीरत सामान्य रष हना हैछे।''[1] अर्थात 'तेज आरु धूलिरे धूसरित पृष्ठा' उपन्यास के नायक-नायिकाओं से मैं मिली हूँ। इन नायक-नायिकाओं के मांस युक्त शरीर में थोड़ रस डाल दिया गया है।

यह एक नायिका प्रधान उपन्यास है। गोस्वामी जी ने उपन्यास में प्रथम पुरुष 'मैं' वर्णनकारी एक पात्र का चरित्र-चित्रण किया है। वह दिल्ली विश्वविद्यालय की अध्यापिका है और उपन्यास की नायिका भी। अत: कहा जा सकता है कि इंदिरा गोस्वामी स्वयं उपन्यास की नायिका हैं और अपने आपको एक पात्र के रूप चित्रित किया है।

सन 1984 में राजधानी दिल्ली में हुए सिख हत्याकांड उपन्यास की कथा-वस्तु है। 31 मई, 1984 में परिकल्पित रूप में सिख अंगरक्षकों द्वारा प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी की हत्या कर दी जाती है। परिणामस्वरूप सिखों के प्रति हिंसात्मक विद्रोह, उनकी हत्या, हिंदू-सिख सांप्रदायिक संघर्ष आदि की वास्तविक छवि को उकेरा है। राजधानी दिल्ली की हर गली, रास्ते में सिखों की लाश बिखरी हुई थी। सिखों के घर, गुरुद्वारे जलाए गए थे। जहाँ और जिधर भी सिख दिखाई दिया, उसे वहीं पर गोली से मार दिया जाता था। राजधानी दिल्ली की हर गली-मोहल्ले, रास्ते चारों ओर खून से लथपथ थे। मुर्दाघर में ट्राक भर-भर के लाश भेजी गई थी और मुर्दाघर में लाश रखने की जगह नहीं थी। खून और लाशों को देखकर दरख्त पर बैठे कौवे भी कर्कश आवाज में काँव-काँव कर रहे थे। खान मार्केट, रोशनारा रोड और जहाँगीरपुरी में अनेक लाशें लावारिस पड़ी थीं। यमुना नदी का तट कसाईघर बन गया था। राजधानी दिल्ली का वातावरण एक प्रकार से कब्रिस्तान बन गया था। सिखों को उनके परिवार के सामने ही गले में टायर बाँध कर जिंदा जलाया जा रहा था। यही नहीं, जिन लोगों को जिंदा जलाया गया था, उनकी औरतों को घर से घसीट-घसीट कर बाहर निकाला जाता था ताकि वह अपनी आँखों से अपने पति को जलते हुए देख सके। इसका वर्णन लेखिका गोस्वामी ने इस प्रकार से किया है- ''यहाँ ग्यारह औरते हैं, जो इन दंगों में विधवा हो गई हैं। उनके घरवालों को जलाकर वे लोग घसीट कर औरतों को बाहर लाये थे ताकि वे उन्हें जलते हुए देख सकें।''[2] इस राजनैतिक हत्याकांड में बूढ़े, जवान, बच्चे किसी को भी नहीं छोड़ा गया, सब को बेरहमी से मार दिया जाता था। उपन्यास की नायिका अध्यापिका के करीबी बलवीर सिंह रद्दीवाला के बेटे सोनू की आँखों में सलाखें घोंप कर उसकी आँखें फोड़ दी गई थी। उसके बाद अध्यापिका को चाहने वाले ऑटो ड्राइवर संतोख सिंह की भी किसी ने हत्या कर दी थी। संतोख सिंह की हत्या और बलवीर सिंह का लापता होना अध्यापिका के दिल को चोट पहुँचाने वाली घटना थी। अध्यापिका कहती है- ''संतोख सिंह की हत्या के तथा बलवीर सिंह के लापता होने के बाद से मुझे दिल्ली रुखी-सुखी लगने लगी थी। मैं अपनी बाल्कनी के दरवाजे को खोल नहीं पाती थी। वहाँ से गोल चक्कर दीख पड़ता था। वहीं पर संतोख सिंह की लाश टुकड़ों में पड़ी मिली थी।''[3]

राजधानी दिल्ली के फुटपाथ, गली-मोहल्ले और झुग्गी-झोपड़ियों में रहने वाले लोगों की दयनीय छवि को भी उकेरा है। इसका वर्णन लेखिका गोस्वामी जी ने उपन्यास की नायिका अध्यापिका के द्वारा किया है। अध्यापिका कहती है- "जहाँ मैं रहती थी, उसके सामने झुग्गी-झोपड़ियों का झुण्ड था। यहाँ रहने वाले लोग बिरला कपड़ा मिल में काम करते थे। कइयों ने वहीं फुटपाथ पर ही अपनी छोटी-छोटी दुकानें लगा ली थीं। उनकी औरतें वही आस-पास के इलाकों के घरों में काम करतीं। कुछ दाइयों और धाय माँ का काम करतीं। कुछ औरतों को मैंने दूध की डेयरी में काम करते भी देखा था। मई और जून की गरमी में यह झोपड़-पट्टी के छोटे-बड़े सभी लोग मेरी बाल्कनी के सामने के गोलाकार मैदान में सोते। कुछ तो कमर तक नंगे होते। हालाँकि कुछ अपने लिए चारपाइयाँ जुटा पाते, जिन्हें उस गोल चक्कर के बाहर के घेरे में बिछा लेते। अचानक बारिश आ जाने पर वे बाल्कनी की उस जरा-सी छत के नीचे पनाह लेते। उस दिन जोर के धमाके की आवाज के साथ सैकड़ों चीखें और हाहाकार और आहों की कराह सुन मैं झटके से जागी। उस मैदानी घेरे में सोये लोगों पर से एक ट्रक गुजर गया था तथा सोया हुआ एक व्यक्ति भी नहीं बचा था। मैं पुलिस

की जीप और सीटियों की भीड़-भाड़ में से नीचे झाँक कर देखने की हिम्मत भी नहीं जुटा पा रही थी। तीन लोग अपने घोड़ों के साथ मर गये थे। ट्रक के पहिये उन पर से गुजर गये थे। सड़क के बीचों-बीच खून फैला था।''[4] उपन्यास में चित्रित की गई सारी घटनाओं को साक्षी रहीं लेखिका गोस्वामी ने एक डायरी में लिपिबद्ध कर रखा था, जिसके पन्ने राजधानी दिल्ली के फुटपाथ और सिख हत्याकांड में मरे हुए लोगों के खून से लिखे हुए थे।

वेश्यावृत्ति का इतिहास अति प्राचीन है। यह प्राय: संसार के सभी देशों में प्रचलित है। यह राजा-महाराजाओं के समय तथा आदिकाल से विद्यमान रही है। परंतु इन दिनों में यह वृत्ति तेजी से बढ़ती जा रहा है। लेखिका गोस्वामी ने इस उपन्यास में राजधानी दिल्ली की जी. बी. रोड में रहने वाली वेश्याओं के जीवन की गाथा का यथार्थ चित्र अँकन किया है। यही नहीं, उनके इस धंधे में शामिल कई गाँठों का भी खुलासा किया है। उपन्यास की नायिका अध्यापिका वेश्याओं के जीवन पर आधारित एक पुस्कत लिखना चाहती थी, जिसके कारण वह दिल्ली की जी. बी. रोड के वेश्यालय में जाती है और वहाँ पर रहने वाली वेश्याओं को नजदीक से देखने-परखने का अवसर भी उसे मिला था। ये वेश्याएँ किस प्रकार से श्रृंगार कर अपने ग्राहकों का इंतजार करती थीं, अध्यापिका कहती है- ''इस बिल्डिंग के पास में ही वह दुकान थी, जिस पर भारत मार्बल्स का बोर्ड लगा था। वही सजी-धजी कुछ वेश्याएँ अपनी बाल्कनी में खड़ी नीचे आने जाने वाले बच्चे, जवान, बूढ़े, छोटे-लम्बे सभी को देख रही थीं। वे लोग उनकी ओर देखकर इशारा कर रही थीं। एक अजब नजारा था। ऐसा लग रहा था जैसे मैं किसी कसाई की दुकान पर खड़ी हूँ, जहाँ लटके मांस के लोथड़ों को लोग ललचाई निगाह से देख रहे हों।''[5] अध्यापिका वेश्यालय में जाती है और अपना परिचय देते हुए कहती है, मैं एक लेखिका हूँ और कहानी लिखती हूँ। इसलिए आप लोगों के बारे में जानने के लिए आई हूँ और कुछ लिखना चाहती हूँ। परंतु ये वेश्याएँ अपने जीवन की गाथा को अध्यापिका के साथ साझा करना नहीं चाहती थीं। अध्यापिका के साथ दुर्व्यवहार करने लगीं। वेश्याओं का यह व्यवहार देखकर अध्यापिका के साथ आया संतोख सिंह चिल्लाने लगा और कहने लगा- ''ऐ, तुम लोगों ने साबित कर दिया कि ये वेश्याओं का कोठा है। तुम्हें अच्छे और बुरे की तमीज नहीं है तभी एक अच्छे जन को पहचान नहीं पाये।''[6] परंतु अध्यापिका हार नहीं मानती। इस वृत्ति में 13-14 वर्ष की उम्र वाली लड़की भी शामिल है। कोठा के अंदर से एक बच्चे के रोने की आवाज आने लगी। कोठा में सबसे कम उम्र वाली लड़की ने उस बच्चे को गोद में उठा लिया और सबके सामने ब्लाउज का बटन खोलकर उसे स्तनपान करने लगी। यह दृश्य देखते ही अध्यापिका आश्चर्यचकित हो उठती है और कहती है इस लड़की की उम्र क्या है? कोठे के अंदर कपड़े धो रही एक वेश्या कहने लगी- ''क्यों मैडम। क्या आप इसके छोटी होने के कारण इसकी एफ.आई.आर. पुलिस में लिखवायेंगी। .....आप क्या समझती हैं, आप कुछ कर सकती हैं?....मैं यहाँ की पुलिस को रिश्वत देती हूँ। दूसरी बात यह भी है कि मैं किसी लड़की को धन्धा करने के लिए मजबूर नहीं करती। इसने खुद ही मैजिस्ट्रेट के सामने कसम खाई थी कि ये अठारह वर्ष की है। अब तुम को कुछ कहना है?''[7] ग्राहकों की भीड़ के कारण कम उम्र वाली माँ अपने बच्चे को स्तनपान तक नहीं कर पाती थी। ग्राहकों की भीड़ और मालिक के आदेशों को मना करने का साहस उसमें नहीं था। उसे अपने बच्चे को दूसरे के पास छोड़ कर ग्राहकों के साथ जाना पड़ा। इस दृश्य को देखकर अध्यापिका का मन आवेग और करुणा से भर गया था। अध्यापिका के उस बच्चे के भविष्य के बारे में सवाल पूछने पर पास में बैठी एक वेश्या उत्तर देती हुई कहती है- ''गाँव भेज दिया जायेगा। हम वैसे भी अपने गाँव पैसा भेजते हैं, ऐसे ही बच्चे भी भेज देते हैं।''[8]

कोठा नं 42, वहाँ का वातावरण पहले वाले कोठे से थोड़ा भिन्न था। यहाँ पर अध्यापिका को एक अलग नजारा देखने के मिला था। अंदर के कमरे में से एक लड़की भागती हुई बाहर निकल आई। उसकी सलवार से खून टपक रहा था। उसके पीछे-पीछे उसी कमरे में से एक आदमी नीचे की ओर भाग गया। इस दृश्य को

देखकर अध्यापिका का हृदय चीख उठा। बेंच पर बैठे सभी उस लड़की को ही देख रहे थे। अध्यापिका के सामने बैठी एक वेश्या चिल्लाती हुई कहने लगी- ''वो बूढ़ा बुन्देलखण्ड का हरामी आया होगा या फिर वो अफ्रीकी छोकरा होगा.....जा अपने कपड़े बदल ले। .....सभी जानवर है यहाँ।''[9] पुरुषों के भोग-विलास की शिकार बनी वेश्याओं के ये दृश्य मानवता की अध:पतन को ही दर्शाते हैं। अध्यापिका के पास एक दूसरी लड़की आकर खड़ी हो जाती है। उसने पाउडर, लिपिस्टिक आदि से श्रृंगार किया हुआ था और शरीर में खुशबूदार सेंट भी लगा रखा था। अध्यापिका उससे पूछती है कि तुम्हें कुछ दूसरा काम करना पसंद नहीं है, जैसे कि स्कूल में पढ़ाना या मॉडलिंग करना हो। स्कूल का नाम सुनते ही उसका मन विरोधाभास से भर जाता है। वहाँ पर खड़ी दूसरी लड़की कहने लगी- ''एक स्कूल टीचर की तनख्वाह से हम अपने जूते भी नहीं खरीद सकते, मैडम।''[10] पर शरीर को बेचना अच्छा नहीं है। अध्यापिका ने बहस करने की कोशिश की थी। परंतु उन वेश्याओं की प्रतिक्रिया और बातों से अध्यापिका को समझने में देर न लगी कि ये वेश्याएँ जो धंधा कर रही हैं, उसी में संतुष्ट हैं।

गुमशुदा व्यक्तियों को उसके ठिकाने तक पहुँचाने के लिए सरकार की ओर से एक कमेटी बनाई गई थी। उस कमेटी का सचिव भी इस वृत्ति के साथ मिला हुआ था। गुमशुदा लड़कियों को उसके घर पहुँचाने के बदले में उसे वेश्यालय तक पहुँचा देता था। इसका प्रमाण अध्यापिका के साथ फोन में हुई बातों से पता चल जाता है- ''मैं निम्मी बाई नहीं हूँ। मैं तो रामचरण भोला हूँ। भटक गये लोगों को बचाने के लिए बनाई गयी कमेटी का सचिव हूँ। ....रासोम जी। आप मुझे ब्लॉक नं 14, नीमरी कॉलोनी पर अपना आइडेन्टी कार्ड लेकर मिलो। मैं आपको इन वेश्याओं की दिक्कतों के बारे में बताऊँगा। यह भी कि पुलिस कितना बुरा व्यवहार करती है इन लोगों से। पर ये सब इस बात का मनुस्सर है कि....। किस बात का मनुस्सर है आप अपनी इस पर लिखी किताब की सारी रॉयल्टी इस कमेटी को दे देंगी। इस शर्त पर हम अपनी असलियत बेचेंगे। ठीक है...''[11] अध्यापिका ने सचिव की शर्त पर हामी भरी और किताब की सारी रॉयल्टी देने के लिए भी राजी हो गई। अर्थात वेश्याओं के इस धंधे में पुलिस से लेकर सचिव तक शामिल हैं और अपना हिस्सा लेते हैं।

लेखिका इंदिरा गोस्वामी जी ने इस उपन्यास के माध्यम से मानवीयता को हेय सिद्ध कर देने वाला राजनैतिक हत्याकांड, झुग्गी-झोपड़ी में रहने वाले लोगों का जीवन और वेश्याओं के जीवन की दुरावस्था, उसकी व्यथा का यथार्थ चित्र अँकन किया है। ये सारी घटनाएँ लेखिका की एक डायरी में लिपिबद्ध थीं और जिसके पन्ने दिल्ली के फुटपाथ और सिख हत्याकांड में मरे हुए लोगों के खून से लिखे हुए थे, जिसकी अभिव्यक्ति उन्होंने अध्यापिका नामक पात्र के माध्यम से किया है और जहाँ तक राजनैतिक सांप्रदायिकता का सवाल है तो यह उपन्यास आज भी प्रासंगिक है। ❑

संदर्भ सूची :

1. तेज आरु धूलिरे धूसरित पृष्ठा, मामोनी रायसम गोस्वामी, चन्द्र प्रकाश, पानबाजार, गुवाहाटी, प्रथम संस्करण- 2011, पृ- 5
2. अ-इतिहास, इंदिरा गोस्वामी, अनुवादक, संतोष गोयल, हिंदी बुक सेंटर, नई दिल्ली, संस्करण- 2002, पृ- 89
3. वही, पृ- 94
4. वही, पृ- 7-8
5. वही, पृ- 73
6. वही, पृ- 67
7. वही, पृ- 68
8. वही, पृ- 69
9. वही, पृ- 70
10. वही, पृ- 69
11. वही, पृ- 72

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

स्त्री-विमर्श

कृष्णा सोबती के उपन्यास 'समय सरगम' में नारी की संवेदनात्मक दृष्टि

नितुश्री दास

शोधार्थी, हिंदी विभाग
कॉटन विश्वविद्यालय
गुवाहाटी-781001, असम
मो. 8822124613
ईमेल : dasnitushree@gmail.com

प्रस्तावना :

हिंदी साहित्य के इतिहास में उपन्यासों का जो महत्व है, वह हम सभी से अज्ञात नहीं हैं। साहित्य जो कि एक समाज का आईना है, उस आईने में समाज का हर अच्छा-बुरा दृश्य दिखाई पड़ता है। इन्हीं में से नारी जीवन का संघर्ष उपन्यास साहित्य की एक प्रमुख विषय-वस्तु है। सन 2000 में प्रकाशित 'समय सरगम' उपन्यास एक ऐसा ही उपन्यास है, जहाँ नए और पुराने के बीच पलते मानव चरित्रों को दर्शाया गया है। उपन्यास में स्त्री और पुरुष पात्र दोनों की बढ़ती उम्र के साथ-साथ जीवन जीने के भाव को और जीबन मृत्यु के बीच खड़े होकर अनुभव करने वाले मृत्युभय को दर्शाया गया है। इस उपन्यास में हालाँकि स्त्री और पुरुष पात्र दोनों का वर्णन हुआ है। पर इस शोध आलेख में चर्चित होने वाला विषय नारी पर केंद्रित रहेगा। नारी संघर्ष के संदर्भ में लिखे जाने वाले उपन्यासों के क्षेत्र में कृष्णा सोबती के उपन्यास अत्यंत जनप्रचलित हैं। नारी संघर्ष में कोई नारी माँ के रूप में, कोई बेटी के रूप में तो कोई पत्नी के रूप में समस्याओं का सामना कर रही है। एक नारी पिता-पुत्र और पति के अधीन रहकर अपना संपूर्ण जीवन त्याग कर देती है। अनेक नारी ऐसी भी हैं, जो समय के चक्र में तथा परिस्थिति की चपेट में पड़कर अकेली रह जाती है। ऐसा ही एक यउपन्यास है 'समय सरगम', जहाँ स्त्री अपने जीवन में अकेलापन, उदासी, क्रूरता का सामना करती हुई जीवन जीती है। स्त्री की यह अवस्था अत्यंत संवेदनात्मक है। अत: इसी संवेदना को प्रस्तुत आलेख में वर्णन किया जाएगा।

मूल आलेख :

हिंदी साहित्य के नारी साहित्यकारों में से कृष्णा सोबती विशेष स्थान की अधिकारी हैं। कृष्णा सोबती का जन्म 18 फरवरी, 1925 को हुआ था। अपने उपन्यासों के लिए प्रसिद्ध सोबती ने उनमें अत्यधिक रूप से नारी को ही स्थान दिया है। सोबती ने नारी जीवन की व्यथा

को स्वयं अनुभव करते हुए उसे अपने उपन्यासों में वास्तविक रूप दिया है। उनके लिखे उपन्यास पढ़कर ही यह अंदाजा लगाया जा सकता है कि उन्होंने नारी के संवेदना को बखूबी पहचाना है। ऐसा ही उनका एक उपन्यास है 'समय सरगम'। इस उपन्यास में सोबती ने एक स्त्री की मानसिक संवेदना और उसके अकेलेपन के अनुभव को दर्शाया है। 'समय सरगम' उपन्यास में भी ऐसी स्त्रियों को दर्शाया गया है, जिन्होंने परिवार के दुख-कष्टों को अनुभव किया है और वह परिवार के कष्टों को छोड़ कर अकेले रहना ज्यादा पसंद करती हैं। एक स्त्री अपने परिवार से अपनों से तथा लोगों से कितने दुख और निराशा सहन करने के बाद अकेली रहना पसंद कर सकती है। परिवार के कष्टों को सहन करने से ज्यादा वह उन सब से दूर रहना चाहती हैं। कृष्णा सोबती का उपन्यास हालाँकि वृद्ध जीवन पर केंद्रित है। इस उपन्यास की प्रमुख स्त्री पात्र अरण्या को सामने रखकर एक बुजुर्गावस्था प्राप्त स्त्री के मन को टटोला गया है। वह अपनी बढ़ते हुई उम्र के साथ-साथ जीवन में भी अकेली होती जाती है, परंतु उसके मन की जिजीविषा हमेशा कायम है। अरण्या एक अकेलेपन की जिंदगी जीती हुई भी अपने आप को कमजोर नहीं पड़ने देती । वह अपनी बढ़ती उम्र को तथा अकेलेपन को अपने ऊपर हावी होने नहीं देती। ऐसे में अरण्या का एक कथन हमारे सामने आता है- ''अगर कहूँ नहीं तो आप मनोवैज्ञानिक गुत्थियों को कुरेदने लगेंगे ! आज का सच यह है कि परिवार के ऊपरी ढाँचे की संगत और भीतरी तनावों से दूर यह शांत अब मुझे सुखकर लगता है।''[1]

संवेदना शब्द का प्रयोग यूँ तो लाचार लोगों के लिए किया जाता है, परंतु उन लाचारों में स्त्री की संख्या बहुत ज्यादा है। 'समय सरगम' उपन्यास में कृष्णा सोबती ने अरण्या के माध्यम से नारी के अकेलेपन को अंदरूनी रूप से दिखाना चाहा है और इस क्षेत्र में वह सफल भी हुई हैं। अपने जीवन से, अपने परिवार से उदास एक नारी अकेले जीवन जीने के लिए मजबूर होती है। वह अंदर से अकेलापन महसूस करती है, पर फिर भी वह मजबूत रहने की कोशिश करती है। 'समय सरगम' उपन्यास में अरण्या अपनी बढ़ती उम्र को लेकर निराशा के भँवर में जाने लगती है। तब वह बाहरी सजावट से अपना मन बहला लेती है। हमारे समाज में एक नारी जब अकेली पड़ जाती है तो परेशानियाँ किस प्रकार उसे घेर लेती हैं, उसे इस उपन्यास में कुछ हद तक दर्शाने की कोशिश की गई है। अपनों से उदास, अकेली, परेशान अरण्या जब बाहर चलती-फिरती है, तब वह किस तरह की मुश्किलों का सामना करती है तथा अकेली समाज में कितनी असुरक्षित है, उसे यहाँ देखा जाता है। जब अरण्या टैक्सी से कहीं जा रही होती है तो उसके साथ हुए एक हादसे ने उसे बहुत परेशान किया। अरण्या के पास जो भी सामान-पैसे थे, वह सब कुछ छीन लिया गया था और उसके साथ बदतमीजी से बात की गई थी। पुलिस कंप्लेंट करने की बात सोचने पर भी उसके सामने बहुत बाधा आती है। अरण्या के पास रहने वाले ड्राइवर भी पुलिस कंप्लेंट करने की बात से मंजूर नहीं होते और अरण्या की किसी प्रकार की सहायता नहीं करते। सहायता करने के बजाए ड्राइवर से कुछ निराशाजनक बात ही सुनाई पड़ती है। ड्राइवर की कुछ बातों से ऐसा महसूस होता है कि जैसे अरण्या के साथ हुए हादसे बहुत कम हैं। उससे भी ज्यादा बुरा हादसा स्त्रियों के साथ हो सकता है।

''मैडम, सामान जरूर आपका गया है लेकिन आपके साथ कुछ इतना बुरा नहीं हुआ। यह लोग जो कर गुजरते हैं-क्या बहुत कीमती सामान था, मैडम? कैमरा, जेवर....।''[2]

सोबती ने नारी जीवन की भिन्न दिशाओं से संबंधित संवेदनाओं को अपने उपन्यासों में चित्रित किया है। 'समय सरगम' उपन्यास सोबती ने अकेलेपन के शिकार

होने वाली नारी संवेदना को दर्शाने हेतु लिखा है। बढ़ती उम्र में जब परिवार का साथ छूट जाता है तो मजबूत से मजबूत व्यक्ति भी लड़खड़ा जाता है। ऐसे में अरण्या ने एक स्त्री होकर भी सब कुछ अकेले मजबूती से संभाला है। इस उपन्यास में ईशान वह पात्र है, जो अरण्या के अकेलेपन को सहारा देता है। ईशान अरण्या की उदासी और अकेलेपन को सहारा देते हुए अपने जीवन का भी सुख-दुख भरी गाथा साझा करता है। ईशान एक भला पुरुष है और इसी भलाई की वजह से उसने दो छोटी बच्ची का पिता ना होते हुए भी पिता के रूप में सहारा दिया है। ईशान ने सिर्फ दो नन्हीं बच्चियों को सहारा नहीं दिया, बल्कि उसने उन दो छोटी बच्चीयों को अपनाकर कहीं-ना-कहीं समाज के नंगे और क्रू र मनुष्यता का भी विरोध किया, जो लड़कियों को बेटी के रूप में अपनाने से दूर भागते हैं। समाज बेटियों को आसानी से मिल जाने वाली मूल्यहीन वस्तु मात्र समझता है, जिसके कारण लोग लड़की पैदा नहीं करना चाहते। इस क्षेत्र में अरण्या ईशान की गोद ली हुई बेटियों के प्रति सहानुभूति और समाज के कुछ वर्ग के प्रति आक्रोश दिखाती हुई कहती है- ''बेटियाँ आसानी से मिल जाती हैं, अगर गर्भ में ही नष्ट न कर दी जाएँ।''[3]

'समय सरगम' उपन्यास में केवल अरण्या के संवेदनात्मक परिस्थिति को ही नहीं दिखाया गया है, उसके साथ-साथ दमयंती और कामिनी भी दो स्त्री पात्र हैं, जो अपने जीवन में अपने ही परिवार के सदस्यों की क्रूरता का शिकार होती हैं। इस उपन्यास में कामिनी वह स्त्री पात्र है, जो वृद्धावस्था में जाकर अपने ही भैया-भाभी के लालच का शिकार बनती है। कामिनी के भैया-भाभी कामिनी की संपत्ति के लालच में आकर उसे नींद की गोली देते रहते हैं, जिसके फलस्वरूप धीरे-धीरे कामिनी दुर्बल होती जा रही थी। कामिनी के भैया-भाभी दिखावे के लिए कामिनी का देखभाल तो करते हैं, पर वे अंदर-ही-अंदर अपना स्वार्थ पूरा करने के लिए लालच में रहते हैं। कामिनी अपनी विवशता को अरण्या के सामने प्रकट करती है- ''भैया और भाभी अपने घर में नहीं बुला रहे। फार्म पर। वहाँ तो मैदान साफ है ! कोई भी मेरा गला घोंट सकता है।''[4]

कामिनी के बाद जो स्त्री पात्र है, वह दमयंती है। दमयंती भी अपनी बुजुर्ग अवस्था में अपने बहू और बेटे से वह सुख नहीं प्राप्त कर पाती, जो एक माँ को प्राप्त करनी चाहिए थी। इस विषय में डॉक्टर गीता सोलंकी लिखते हैं, ''घर की मालकिन होने के बावजूद वह अपने को परतंत्र महसूस करती है। युवावस्था में अपने आकर्षण, चुलबुलेपन, चुस्ती व मनमौजी स्वभाव के लिए मशहूर दमयंती वृद्धावस्था में अपने परिवार की उपेक्षा पाकर कुंठित हो उठती है।''[5]

एक नारी का जीवन कितना दुख भरा हो सकता है वह हम दमयंती को देखकर एहसास कर सकते हैं ? माँ जो कि अपना सब कुछ बच्चों के लिए न्योछावर करती है, वही माँ बुढ़ापे में अपनी संतान से सुख नहीं प्राप्त कर पाती। जो दमयंती अपनी युवावस्था में बहुत ही चुलबुली और हँसमुख व मनमौजी होती थी, वही अपने बच्चों से मिलने वाले दुख-कष्टों से बिल्कुल ही बदल जाती है। वह अपनी वृद्धावस्था में हताशा के अंधेरे में घिर जाती है। दमयंती अपनी दुर्दशा अरण्या के सामने प्रकट करती है- ''मैं तुम्हारी तरह अकेली होती तो क्यों परेशान होती। बच्चे साथ रह रहे हैं। मेरे घर में-मेरा किचन चल रहा है। खर्चा मैं कर रही हूँ। और मैं अपने कमरे में अकेली पड़ी रहती हूँ। बिना मेरी इजाजत मेरा सामान इधर से उधर करते रहते हैं। आरण्या, मैं बहुत दु:खी हूँ। मुझे इस कमरे से निकलने की इजाजत नहीं। मैं ड्राइंग रूम में अपने मेहमानों को नहीं बिठा सकती .... और मैं किसी बेजान काठ की तरह देखी जाती हूँ।''[6]

कृष्णा सोबती के उपन्यास 'समय सरगम' अपने आप में नारी की संवेदना को दर्शाने में संपूर्ण रूप से सक्षम है, क्योंकि यह एक स्त्री उपन्यासकार के द्वारा लिखा गया है। नारी की मनोदशा को एक नारी जिस प्रकार समझ सकती है, उतना एक पुरुष नहीं समझ सकता है। इस विषय पर विचार करते हुए डॉ. भरत कुमार जे ओडेदरा की पुस्तक समकालीन हिंदी उपन्यासों में नारी विमर्श एवं अन्य आलेख में कहा गया है- ''महिलाओं में प्राकृतिक रूप से ही संवेदना अधिक होती है। इसीलिए एक पुरुष साहित्यकार जिन तथ्यों को देखते हुए भी अनदेखा कर जाता है, उन्हें एक

महिला साहित्यकार सहज रूप से, फिर भी प्रभावी ढंग से संप्रेषित कर सकती है।'[17]

'समय सरगम' उपन्यास में जितनी भी स्त्री पात्र दिखाई गई हैं, उन सभी की संवेदनात्मक स्थिति पाठकों के सामने आती है, अरण्या की उदासी और अकेलापन उसे खाई जाती है तो दमयंती के जीवन में अपने ही संतान से मिलने वाली दुर्दशा झुलसा देती है, वहीं कामिनी अपने भैया-भाभी के लालच का शिकार बनती है।

समाज में जहाँ माँ-बाप अपने बच्चों को पाल पोसकर कर बड़े करते हैं, उन्हें इस काबिल बनाते हैं कि वह अपने आप से सफल, सक्षम हो सकें। विशेषकर स्त्रियाँ एक माँ के रूप में अपने बच्चे के लिए अपना अस्तित्व तक भूल जाती हैं, वही संतान बड़ी होकर माँ की बुजुर्गावस्था में उसके प्रति अस्वाभाविक व्यवहार करने लगती है, जो कि उपन्यास में दमयंती के साथ होता हुआ दिखाई पड़ता है।

वस्तुत: कहा जा सकता है कि उपन्यास 'समय सरगम' की तीन स्त्री पात्र- अरण्या, कामिनी और दमयंती के माध्यम से परिवार में स्त्री की दुरावस्था को ही दर्शाया गया है। इस उपन्यास में नारी का अकेलापन, अधूरापन, लालच का शिकार, स्वतंत्रता से दूर होने के मार्मिक रूप को चित्रित किया गया है।

निष्कर्ष :

निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि 'समय सरगम' उपन्यास में स्त्री की करुण दशा उसकी बुजुर्गावस्था तक साथ नहीं छोड़ती। नारी हमेशा हताशा व निराशा से जीवन जीने के लिए मजबूर होती है। उपन्यास की एक मुख्य पात्र अरण्या वह चाहे जितना भी बढ़ती उम्र को दूर करके नई सजावट से खुद को जवान बना कर रखना चाहे, पर उसका अकेलापन, उसकी उदासी और बढ़ती उम्र का अनुभव उसे पल-पल खाए जाता है। उपन्यास को पढ़कर तथा स्त्री की यौवनावस्था और बुजुर्गावस्था की मार्मिक परिस्थिति को देखकर हमारे मन में प्रश्न साधारण रूप से आ जाता है कि क्या एक नारी पैदा होने से लेकर मृत्यु तक समाज और परिवार के बीच संघर्ष करती रहेगी, क्या उसके जीवन से उदासी, अकेलापन पराधीनता आदि दूर हो पाएगी ? क्या वह सुख, शांति, अपनापन, स्वतंत्रता एवं सम्मानपूर्वक एक सुरक्षित जीवन लाभ कर पाएगी ? ❑

संदर्भ सूची :

1 सोबती कृष्णा, समय सरगम, पृष्ठ 63, राजकमल प्रकाशन
2 सोबती कृष्णा, समय सरगम, पृष्ठ 45, राजकमल प्रकाशन
3 सोबती कृष्णा, समय सरगम, पृष्ठ 114, राजकमल प्रकाशन
4 सोबती कृष्णा, समय सरगम, पृष्ठ 97, राजकमल प्रकाशन
5 डॉ सोलंकी गीता , नारी चेतना और कृष्णा सोबती के उपन्यास, पृष्ठ ङ्क 75, भारत पुस्तक भंडार
6 सोबती कृष्णा, समय सरगम, पृष्ठ 74, राजकमल प्रकाशन
7 डॉ. जे ओडेदरा भरत कुमार, समकालीन हिंदी उपन्यासों में नारी विमर्श एवं अन्य आलेख, पृष्ठ 13

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

स्त्री-विमर्श

बिहार के लोक गीतों में अभिव्यक्त स्त्रियों की सामाजिक दशा

आशुतोष नंदन

शोधार्थी (एम. फिल.)
हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय
संपर्क :
मकान संख्या-900, गली संख्या-28
मेन मार्केट संत नगर, डाक : बुराड़ी,
बुराड़ी, नई दिल्ली-110084
मो. 9540103988
ईमेल : ashutoshnandan20@gmail.com

शोध-सार :

कई घटनाएँ या स्थितियाँ, जो इतिहास लेखन के क्रम में छूट जाती हैं, उसे भी साहित्य अपने अंदर दर्ज करता चलता है। इसी प्रकार के लिखित-अलिखित घटनाओं एवं स्थितियों का चित्रण हमें लोक गीतों में मिलता है। लोक गीतों का सीधा संबंध स्त्रियों से है। अत: स्त्रियों की स्थिति को देखने-समझने में ये गीत अत्यंत उपयोगी साबित होते हैं। इस शोध आलेख के अंतर्गत हमने मगही, मैथिली एवं भोजपुरी के लोक गीतों को प्रतिदर्श के तौर पर लिया है। किसी भी व्यक्ति अथवा वर्ग की सामाजिक स्थिति को जाँचने-परखने का एक तरीका यह होता है कि उस समाज या वर्ग द्वारा अभिव्यक्त दु:खों की पड़ताल की जाए। हमने इस शोध आलेख में स्त्रियों के उन्हीं दु:खों के माध्यम से उनकी सामाजिक दशा को देखने-समझने का प्रयास किया है। हमारे समाज के आधी आबादी की पूरी हकीकत यह है कि वह आज भी हाशिये पर जीवन जीने को अभिशप्त है। समाज में उनकी हैसियत आज भी दोयम दर्जे की है। स्वाभाविक है कि यह स्थिति कुछ वर्षों में नहीं बनी है। इसके पीछे पूरा ज्ञात-अज्ञात इतिहास है। इन्हीं ज्ञात-अज्ञात इतिहास के साथ लोक गीतों को मिलाकर देखा-समझा जाना चाहिए। अगर हम दोनों विधाओं का अध्ययन एक साथ करते हैं तो पाते हैं कि स्त्रियों की वर्तमान सामाजिक दशा के पीछे समाज में व्याप्त अंधविश्वासों, अशिक्षा, कुरीतियों के साथ-साथ सामाजिक-आर्थिक संरचना भी जिम्मेदार है।

बीज शब्द :

लोक, लोक गीत, लोक जीवन, लोक-साहित्य, स्त्री, स्त्री-दशा, स्त्री-समाज, संस्कृति, संस्कार, पितृ सत्ता, सोहर, समदाउनि, विवाह, सती-प्रथा, आधुनिकता, पलायन, आर्थिक-स्थिति, सामाजिक-संरचना।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज के बिना उसका अस्तित्व संभव नहीं है। उसके सामाजिक अस्तित्व की अभिव्यक्ति ही साहित्य कहलाती है। समाज में रहते हुए जब मनुष्य की सामूहिक भावनाएँ आंदोलित होती हैं तब उसकी सहज एवं अकृत्रिम, लयबद्ध, रागात्मक अभिव्यक्ति ही लोक गीत कहलाती है। लोक गीत व्यक्ति से समष्टि तक की विराट यात्रा का गेय पाथेय है, जिसके सहारे मनुष्य जीवन पथ पर करणीय सहज एवं सरस होकर करता है। यह समाज की कल्याणी वाणी है और मनुष्य की अंतश्चेतना का सगुंफित महानद है। हमारी सामाजिक एवं सांस्कृतिक आहटों को भी लोक गीतों ने अपने गेय कलेवर में समेट रखा है। लोक गीत लोक जीवन का महत्वपूर्ण अंग हैं, जो भविष्य में उस समाज की व्याख्या के लिए आवश्यक हैं।

लोक शब्द का लंबा इतिहास है, किंतु इसके इतिहास में जाना अनिवार्य नहीं है। नालंदा विशाल शब्द सागर के अनुसार, 'लोक (संज्ञा पु.) ऐसा स्थान है, जिसका बोध प्राणी को हो अथवा जिसकी उसने कल्पना की हो।'[1] वैसे तो स्पष्ट है कि 'लोक' शब्द संस्कृत की 'लोक' धातु से निष्पन्न होता है, जिसका अर्थ है देखना। यह अंग्रेजी शब्द FOLK और जर्मन शब्द VOLK का पर्याय है । संभवत: इन सभी शब्दों के मूल में कोई एक ही शब्द रहा होगा, जिसका मतलब देखना रहा होगा। अगर हम अंग्रेजी, संस्कृत एवं जर्मन इत्यादि भाषाओं की बात करें तो हम पाते हैं कि ये सब एक ही परिवार की भाषाएँ हैं ।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लोक के संबंध में अपने विचार प्रकट करते हुए लिखा कि 'लोक शब्द का अर्थ जनपद या ग्राम नहीं है, बल्कि नगरों और ग्रामों में फैली हुई वह समूची जनता है, जिनके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं हैं। ये लोग नगर में परिष्कृत, रुचि संपन्न तथा सुसंस्कृत समझे जाने वाले लोगों की अपेक्षा अधिक सरल और अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते हैं और परिष्कृत रुचिवाले लोगों की समूची विलासिता और सुकुमारिता को जीवित रखने के लिए जो भी वस्तुएँ आवश्यक होती हैं उनको उत्पन्न करते हैं।' (डॉ द्विवेदी; 'जनपद', वर्ष 01,अंक-01,पृ-65 ।[2] आवश्यक वस्तुओं का उत्पादन करने वाले वैसे जन समूह, जो पोथी के बदले व्यावहारिक ज्ञान के आधार पर जीवन जीते हैं। अर्थात हम यह भी मान कर चल सकते हैं कि आधुनिक समाज में जब उत्पादन के तरीकों में बदलाव आए तो लोक की परिभाषा भी बदल गई । सामान्यत: हम लोक का अर्थ गाँव या जनपद से लेते हैं किंतु उत्पादन से अगर इसे जोड़ा जाए तो पूरे विश्व का कोई कोना चाहे वह शहर हो या गाँव लोक के अंदर आ सकता है। अत: लोक गीतों का अध्ययन करते हुए यह आवश्यक हो जाता है कि पहले हम लोक की उस पुरानी परिधि से बाहर निकल आएँ, जिससे केवल असभ्य, अशिक्षित एवं सुदूर ग्रामीण क्षेत्र में रहने वाले लोगों का बोध होता है ।

लोक गीतों का सीधा संबंध 'लोक' में बोली जाने वाली बोलियों से होता है। हम जानते हैं कि भारत भाषिक विविधताओं का देश है । यहाँ अलग-अलग भौगोलिक क्षेत्रों की अलग-अलग बोलियाँ हैं । लगभग प्रत्येक भाषा एवं बोली का अपना साहित्य भी है । देश

के अलग-अलग क्षेत्र में अलग-अलग भाषाओं के लोक साहित्य की अपनी परंपराएँ हैं । इन लोक साहित्यों के अंतर्गत 'लोकगीतों' का बड़ा एवं महत्वपूर्ण स्थान है। भारतीय लोक गीतों की परंपरा की तरह ही बिहार में भोजपुरी, मगही एवं मैथिली लोक गीतों की भी अपनी परंपरा रही है। सुरम्य भौगोलिक परिवेश एवं अति महत्वपूर्ण ऐतिहासिक सांस्कृतिक परंपरा के कारण बिहार के लोक गीतों में यत्र-तत्र कुछ अपनी विशेषताओं के साथ-साथ इन क्षेत्रों में निवास करने वाले लोगों की सामाजिक स्थितियों का भी परिचय प्राप्त होता है। इन लोक गीतों की विशेषताएँ प्राय: अनुष्ठानिक, रूपगत एवं सामाजिक होती हैं, जो अपनी संस्कृति के कारण दिखती हैं। बिहार की संस्कृति धर्म, शिक्षा, इतिहास, पुराण इत्यादि में अपनी सानी रखती है । अत: इसका प्रभाव लोक जीवन पर भी पड़ता है । जिस तरह लोक गीत शिष्ट साहित्य को प्रभावित करता है उसी तरह शिष्ट वर्ग भी लोक जीवन को प्रभावित करता है । परिणामस्वरूप शिष्ट वर्ग और शिष्ट संस्कृति का भी प्रभाव लोक गीतों पर पड़ता है । इस पारस्परिक घाल-मेल से सभ्यता के नए-नए आयाम खुलते हैं, जो लोक गीत के उपजीव्य में सहायक बनते हैं। भोजपुरी, मगही एवं मैथिली प्रदेशों में ऐसा घाल-मेल लंबे अरसे से होता रहा है। अत: इन लोक गीतों में प्रवृत्तिजन्य साम्य के साथ-साथ सभ्यताजन्य वैविध्य के भी दर्शन होते हैं। अत: काल परंपरा के प्रवाह में गीतों का कलेवर विस्तार भी होता गया है। जीवन का कोई भी ऐसा पक्ष नहीं है, जो गीत का विषय न हो सके । सारे सुख-दु:ख, जीवन-मरण, हर्ष-विषाद, पृथ्वी-आकाश अर्थात सारा ब्रह्मांड गीतों के कथ्य हो सकते हैं। इन गीतों में मनुष्य की सारी आभ्यंतरिक और बाह्य परिस्थितियों का वर्णन होता है।

लोक गीतों का इतिहास उतना ही पुराना है, जितना मानव विकास की कहानी। इन गीतों को अपौरुषेय कहा गया है । अपौरुषेय में यह विचार भी सम्मिलित है कि लोक गीत केवल पुरुषों द्वारा विरचित न होकर स्त्रियों के शुद्ध अवदान हैं। अन्य लोक गीतों की भाँति 'बिहार के लोक गीतों' के संरक्षण में भी पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों का अधिक योगदान रहा है । युग-युग से चले आ रहे संस्कारों, विवाहों, त्योहारों, व्रत एवं पूजाओं में गाए जाने वाले गीतों को अपने कंठों में सुरक्षित रखने का श्रेय स्त्री-समाज को ही है । भोजपुरी, मगही तथा मैथिली के लोक गीतों में बहुत-सी ऐसी लोरियाँ, विरह एवं तन्हाई तथा हर्षोन्माद के गीत हैं, जो संभवत: मानसिक स्तर से परिष्कृत एवं संवेदनशील तथा दैनंदिनी कामों में व्यस्त स्त्रियों द्वारा जोड़ी गया प्रतीत होता है। स्त्रियों द्वारा गाए जाने वाले गीतों में अधिकांशत: स्त्री-वेदना, हर्ष-विषाद, आनंद-उद्वेग, उत्साह, संयोग-वियोग, प्रताड़ना, घृणा, ग्लानि आदि भावों की झलक मिलती है।

हमारी दृष्टि इतिहास में जिस सुदूर तक झाँकती है, उसका अधिकांश अंधकारमय माना जाता है, क्योंकि अतीत अनादि है, उसका अधिकतम सुदूर भाग अज्ञात माना जाता है। अत: इस काल की स्त्री की स्थिति जानना असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है। किसी भी समाज में स्त्रियों की स्थिति को भलीभाँति समझने के लिए यह आवश्यक है कि हम उस समाज के उत्तरोत्तर विकास को समझने की कोशिश करें। कन्या, बालिका, युवती, प्रौढ़ा, वृद्धा आदि उसकी उत्तरोत्तर सीढ़ियाँ हैं। मगही, मैथिली एवं भोजपुरी के लोक गीत इन सभी सीढ़ियों को समझने में अहम भूमिका अदा कर सकते हैं।

लोक गीतों का वर्गीकरण अनेक विद्वानों ने अपने-अपने ढंग से किया है। मसलन- अनुष्ठान संबंधी गीत, मनोरंजन संबंधी गीत, उद्योग एवं श्रम संबंधी गीत, संस्कार संबंधी गीत, प्रकीर्ण आदि ।

व्यक्ति के जन्म से लेकर मृत्यु तक होने वाले होने वाले लगभग सभी संस्कारों के अलग-अलग गीत हैं, जिनका गहरा संबंध स्त्रियों के सामाजिक जीवन से है । आरंभ से ही हमारे समाज की संरचना पितृ सत्तात्मक रही है। सबसे बड़ी विडंबनापूर्ण बात यह है कि समाज की इस संरचना की पोषक भी स्त्रियाँ ही हैं। इसी विडंबना को जाहिर करता एक मैथिली लोकगीत देखिए-

'सासु मोरा विप्र हे मारए ननद गरियावय हे
विप्र गोतिनी कएल तरमेन बझिनिया गरछाओल हे
चुपे रहु चुपे रहु तिरिया जनिअ करू रोदन हे
तिरिया आजुए आओत घर बइया बझिनिया पाप छुटत हे'[3]

नायिका कहती है- हे ब्राह्मण! मेरी सास मुझे मारती है, ननद गाली देती है और गोतिन बाझिन कह कर ताने मारती है। ब्राह्मण ढाँढ़स बँधाता हुआ कहता है- हे सुंदरी! तुम चिंता मत करो। आज तुम्हारे प्रियतम आएँगे और तुम्हारे सिर के ऊपर से बांझिन का कलंक दूर हो जाएगा । उपर्युक्त गीत में नायिका दोहरे कष्ट का सामना कर रही है। एक तो उसके प्रियतम परदेश में हैं और दूसरी और उसे ननद और सास प्रताड़ित कर रही है। भला उस घर में उस स्त्री की क्या दशा रही होगी यह शोचनीय है। यह आज के भी मिथिलांचल के प्राय: घरों की दशा है कि पति को कमाने हेतु शहर की ओर पलायन करना पड़ता है और स्त्रियों को ऐसे दु:ख भरे माहौल में विरह के गाढ़े दिन काटने होते हैं। देश के बाकी क्षेत्रों की तरह ही बिहार के लोक गीतों में भी 'सोहर' की रचना पद्धति अत्यंत पुरानी है। बिहार के लोक जीवन को आनंदमय बनाने में अन्य अनेक गीत शैली के अलावा 'सोहर' का भी जबरदस्त हाथ है। शिशु-जन्म के पूर्व और पश्चात स्त्रियों की कंठ-काकली से प्रसूता के प्रसव-पीड़ा अपहरणार्थ एवं आनंदातिरेक में जो मंगल स्वर लहरियाँ नि:सृत होती हैं उन्हे 'सोहर' या 'शोकहर' कहा जाता है । पुत्र-जन्मोत्सव के उपलक्ष्य में गली-कूचे, टोले-मुहल्ले और गाँव के कोने-कोने में गायिकाओं की महफिल जुटती है । लेकिन लड़की के जन्म पर यह आनंद की शहनाई नहीं बजती, बल्कि सारा चहल-पहल, राग-रंग फीका पड़ जाता है । प्रसूता के आनंद महल उजाड़ के गोद में सो जाते हैं और हर तरफ शाम की रंगी सायों सी उदासी छा जाती है। मैथिली, मगही एवं भोजपुरी में ऐसे सोहर नहीं के बराबर मात्रा में हैं, जो कन्याओं के जन्म से संबंधित हों। लगभग शत-प्रतिशत सोहर 'बालकों' के जन्म के समय होने वाली खुशियों को संबोधित हैं। अगर कुछेक गीत ऐसे मिलते भी हैं जो कि लड़कियों के जन्म से संबंधित हैं भी तो उन गीतों में खुशियाँ कम और शोक के भाव अधिक हैं। ऐसे ही एक गीत की पंक्तियाँ देखिए-

'बेटा भइने हँसी खुशी बेटी में मातम
बेटा में खीर पूरी बेटी में सागम'

बिहार की बोलियों का साहित्य करुण रस से ओत-प्रोत है । करुण रस के इतने गीत शायद ही संसार के किसी प्राचीन अथवा नवीन लोकसाहित्य में मिल सकें। कविता की आदि अस्तित्व का मूल कारण करुणाजन्य परिस्थिति ही है-

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः ।
यत्क्रौंचमिथुनादेकमवधी काममोहितम।।''4

वाल्मीकि मुनि का यह करुण श्लोक करुणाजन्य घटना का ही परिणाम है। भवभूति भी करुणा रस को मुख्य मानते हैं-

''एको रस; करुण एव निमित्त भेदाद्
भिन्न; पृथक्पृथगिव श्रयते विवर्तान''

एक करुण रस ही निमित्त-भेद शृंगारादि रसों के रूप में पृथक-पृथक प्रतीत होता है। शृंगारादि रस करुण रस के ही विवर्त हैं ।

विवाह संस्कार के बाद जब दुलहिन डोली में बैठ कर ससुराल जाने की तैयारी करती है तो उस समय एक विशिष्ट शैली का गीत गाया जाता है जो 'समदाउनि' के नाम से प्रसिद्ध है। विदा के समय दुलहिन की माँ, बहन, भावज उसकी हमजोलियाँ उसके गले लिपट कर रोती हैं। यहाँ यह प्रश्न स्वभाविक है कि विवाह जैसे खुशियों से सने उत्सव के बाद विदा के क्षण में स्त्रियाँ क्यूँ रोती हैं ? इस प्रश्न का हल 'समदाउनि' के गीतों में मिलता है । साथ ही साथ जैसा कि पहले कहा गया है- स्त्री के सामाजिक स्थिति को समझने के लिए उनके उम्र के विभिन्न पड़ावों पर होने वाली घटनाओं को समझना आवश्यक है । उसी क्रम में हमें विवाह और विदाई को किसी युवती के जीवन की बड़ी घटना के रूप में देखना चाहिए । इस घटना से स्त्री का सामाजिक जीवन किस प्रकार प्रभावित होता है, एक लोकप्रिय लोक गीत की कुछ पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं-

''जब डाँरी चलल उत्तर राज देश
बाबा मन पड़ि गेल हे माइ
बाबा मोरा रखितथि पागरिक फेंच जाकि
अब डाँरी जायत ससुर देश राज
घरक पोतन होएव हे।''5

नायिका कहती है पिता मुझे पगड़ी के फेंच की तरह रखते थे, लेकिन अब यह डोली मुझे ससुर के राज्य में ले जाएगी, जहाँ मैं घर की बोहारी हो जाऊँगी। इन पक्तियों को सुन कर कौन ऐसा सहृदय है, जिसकी आँखों से अश्रु प्रवाहित न हो जाए।

भारतीय शास्त्रों में स्त्रियों को द्विज कहा जाता है। द्विज उसे कहते हैं, जिसका जन्म दो बार होता है। स्त्रियों के संदर्भ में यह कहा जाता है कि शादी के पश्चात जब स्त्री अपने ससुराल में बसकर पूर्ण मानवी बन जाती है तो यह उसका दूसरा जन्म होता है इसलिए वह द्विज है। हालाँकि इसे अगर उस विवादित श्लोक 'जन्मना जायते शुद्र: संस्कारात द्विजोच्चते' के आलोक में देखें तो इस द्विज होने से पहले की स्त्री की सामाजिक स्थिति का पता चल जाता है। बहरहाल, यह बात बहुत स्पष्ट है कि भारत के किसी भी समाज में बेटियाँ धान के उस पौधे की तरह होती हैं, जिसको एक दिन अपना पैतृक घर छोड़ना होता है । लोक गीतों में स्त्रियों के इस दर्द का बड़ा ही मार्मिक चित्रण हुआ है।

''बड़ा रे जतन हम सिया जी के पोसलों
सेहो रघुवंशी लेले जाए आहे सखिया
रानी जे रोवै रामा रोवै रनिवसवा
राजा जी रोवै दरबजबा हे सखिया'' [6]

माँ कहती है - हे सखी, बहुत प्रेमपूर्वक जिस सीता का लालन-पालन किया, उसी सीता को रघुवंशी राम लिए जा रहे हैं । रानियाँ रंगमहल में रो रही हैं । राजा दरवाजे पर विलाप कर रहे हैं ।

भारतीय जन समाज में विधवा का स्थान बड़ा ही दयनीय रहा है। पुरुष अनेक विवाह कर सकते थे । परंतु हमारे समाज में बाल विधवा भी दूसरा विवाह नहीं कर सकती थी। समाज में विधवा की दिनचर्या के लिए भी बड़े कड़े नियम होते थे। विधवा की आर्थिक दशा भी बड़ी दु:खद होती है । उसे उत्तराधिकार का कोई अधिकार नहीं है । अत: पति की मृत्यु के बाद वह पुत्र तथा घर के अन्य कुटुंबियों की दया पर आश्रित रहती है। ''यदि विधवा कहीं साथ में बंध्या भी हुई तो उसकी अकथ कहानी है । उसे भरपेट भोजन और वस्त्र के लिए भी लाले पड़ने लगते हैं । कुटुंबी लोग उसे खाने के लिए भोजन मात्र बड़ी कठनाई से देते हैं । इसे भोजपुरी में 'खोरिस' कहते हैं।''[7] कभी-कभी इस 'खोरिस' को भी पाने के लिए विधवा को कचहरी की शरण लेनी पड़ती है। उसका मुख देखना भी पाप समझा जाता है । वह किसी मंगल कार्य में भाग नहीं ले सकती है और न किसी शुभ उत्सव में अग्रणी हो सकती है । इस प्रकार विधवा का जीवन आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से बड़ा ही शोचनीय है, जिसका वास्तविक चित्रण हमें लोक गीतों में मिलता है। इसी प्रकार का दु:ख बयान करता एक गीत देखिए-

''बाबा सिर मोरा रोवेला सिंदूर बिनु
नयना कजलवा बिनु ए राम
बाबा गोद मोरा रोवेला बालक बिनु
सेजिया कन्हैया बिनु ए राम।'' [8]

इस गीत में विधवा का हृदय फूट-फूट कर रोता दिखाई दे रहा है। ऐसा लगता है मानो गीत के प्रत्येक अक्षर से करुणा चू पड़ता हो ।

प्राचीन भारत में सती प्रथा प्रचलित थी, जिसका चरम उत्कर्ष भारतीय इतिहास के राजपूत काल में पाया

जाता है। प्राचीन काल में पति के प्रति प्रगाढ़ प्रेम से अभिभूत होकर स्त्रियाँ प्रियतम के साथ सती हो जाती थीं। सती होते समय वे सौभाग्यशाली वधू के समान अपना शृंगार कर अग्नि में प्रवेश करती थीं। राजपूत समय में हँसते-हँसते सैकड़ों स्त्रियों का धधकती हुई ज्वाला में जौहर करना इतिहास के पृष्ठों में स्वर्णाक्षरों में अंकित है। कालक्रम से इस प्रथा में कुछ बुराइयाँ आ गईं और स्त्री की इच्छा न रहते हुए भी लोग उसे बलपूर्वक मृत पति के साथ आग में जिंदा जला देते थे। इन रूह काँप जाने वाली सामाजिक कुरीतियों को हमारे समाज की स्त्रियों ने अपने ऊपर झेला है। ऐसी कुरीतियाँ स्त्रियों के प्रति समाज की असंवेदनशीलता की मुखर गवाह हैं। कालांतर में राजा राम मोहन राय ने इसके विरोध में आवाज उठाई और सती प्रथा एक्ट पास कराया । बिहार के लोक गीतों में आज भी उस कुख्यात डरावनी प्रथा की अनुगूँज सुनाई देती है-

''जब लक भसरू आगि आने गइले
फुफुती से निकले अंगरवा हु रे जी
संगहि भइली जरि घरवा हू रे जी।'' [9]

भारतीय समाज कई श्रेणियों में विभक्त समाज है । सामाजिक-आर्थिक दृष्टि से समाज का एक बड़ा वर्ग आज भी निम्न मध्य वर्ग में रहकर अपना गुजर बसर करता है। ऐसे वर्ग के लोगों के आय का मुख्य स्रोत छोटी-मोटी नौकरी होती है। इन नौकरियों की तलाश में लोगों को अपने पैतृक निवास स्थानों से निकल कर बड़े शहरों की ओर पलायन करना पड़ता है । आधुनिकता के साथ-साथ पलायन जैसी समस्या हर समाज में देखी जा सकती है। अधिकांशत: रोजी-रोजगार के लिए पुरुषों को शहर की ओर जाना पड़ता है, जिसका सीधा प्रभाव स्त्रियों के जीवन पर पड़ता है । बिहार देश के उन राज्यों में अग्रणी है, जहाँ से प्रत्येक वर्ष सर्वाधिक लोग दूसरे राज्यों में पलायन करते हैं । अत: यहाँ के लोक गीतों में भी पलायन से उत्पन्न समस्या एवं दु:ख का चित्रण मिलता है । इसी विषय को चित्रित करती एक लोकप्रिय भोजपुरी गीत देखिए-

''रेलिया बैरन पिया को लिए जाए रे
जौने टिकसवा से बलम मोर जैहें
पानी बरसे टिकस गल जाए रे, रेलिया बैरन
जोने सहरिया को बलमा मोरे जैहें , रे सजना मोरे जैहें
आगि लागै सहर जल जाए रे,रेलिया बैरन ।।'' [10]

उपर्युक्त गीत में नायिका की इच्छा एवं मनोदशा का स्पष्ट पता चलता है ।

भारतीय समाज आज भी कृषि प्रधान है। कृषि प्रधान होने के साथ-साथ इसकी एक विशेषता यह भी है कि यहाँ बड़े कृषिकों की संख्या न के बराबर है। अर्थात अधिकांशत: किसानों के जोत का आकार मध्यम अथवा छोटा है। छोटे आकार के जोत वाले किसानों की यह मजबूरी होती है कि वह केवल कृषि कार्यों से अपने परिवार का पालन नहीं कर सकते हैं। ऐसी स्थिति में उसे दोहरे आय के स्रोत बनाने होते हैं। अत: वे कृषि कार्यों को संपन्न कर शहर आ जाते हैं और उनकी अनुपस्थिति में उनके घर की स्त्रियों के ऊपर घरेलू के साथ-साथ कृषि कार्यों की भी जिम्मेदारी आ पड़ती है। उन्हें दोहरे दु:ख का सामना करना पड़ता है। एक तो इस बंदिश भरे समाज में कृषि की भारी जिम्मेदारी, घरेलू जिम्मेदारी और साथ ही साथ विरहानुभूति। इन तमाम दर्दों को ग्रामीण स्त्रियाँ इन ग्राम्य गीतों में गाकर अपने कष्ट को कम करती हैं । इसी प्रकार के एक गीत की बानगी देखिए-

गेंहुवा के बाली पाके ,अमवां मंजर गइले
खेतवा में झूमे ला रहरिया हो
कि पियवा भइलें गूलरी के फूल...
चंदवा चुराये बिंदियाँ, रतिया न आवे निंदिया
अंगना बिछावेला सेजरिया हो
कि पियवा भइलें गुलरी के फूल...
एक त बलमवा बैरी दूसरे देवरवा लहरी
भैंसूरा से लड़ गइले नजरिया हे ...
पियवा भइलें गुलरी के फूल...

हमारे भारतीय समाज की विडंबना यह है कि यहाँ आत्मनिर्भर स्त्रियों को समाज उपेक्षणीय दृष्टि से देखता है । समाज आज भी स्त्री से यह आशा करता है कि वह पर्दे में रहते हुए घरेलू कार्यों का निष्पादन करे। जैसा पूर्व में भी कहा गया है कि हमारे समाज की संरचना पितृ सत्तात्मक है। ऐसे सामाजिक संरचना में यदि स्त्री उन

कार्यों का निष्पादन करती है, जो अब तक केवल पुरुषों के अधिकार में रहे हैं तो ऐसी स्त्रियों को समाज के साथ ही अपने निजी रिश्तेदारों के भी कोप का भाजन होना पड़ता है। इस गीत की आखिरी पंक्ति उसी विडंबना की ओर इशारा करती है ।

पीछे कहा गया है कि भारतीय समाज में स्त्रियों का स्थान कुछ बहुत ऊँचा नहीं है। हमारे लोक में यह कहावत प्रचलित है कि पुत्री के जन्म होते समय पृथ्वी तीन बालिश्त नीचे दब जाती है मानो वह उसके भार को सह नहीं पाती। जहाँ पुत्र के जन्म को चाँदनी रात माना जाता है, वहीं पुत्री के जन्म की उपमा अंधेरी रात से दी जाती है। इसी उपमा से स्त्री के अनादर का अंदाजा लगाया जा सकता है ।

भारतीय संस्कृति के विकृत एवं श्रेष्ठ दोनों प्रकार के स्वभाविक चित्रण इन लोक गीतों में उपलब्ध होते हैं । इनमें न तो अतिरंजना है और न अत्युक्ति । लोक कवि ने समाज में जो कुछ देखा है एवं अनुभव किया है उसका उसी रूप में वर्णन उपस्थित किया है। इन गीतों में हमें अशिक्षित एवं असंस्कृत भोजपुरी, मगही तथा मैथिली समाज का ज्यों-का-त्यों रूप देखने को मिलता है । पुत्र जन्म के पश्चात उछाह एवं उत्सव की, परंतु पुत्री के पैदा होने पर विषम दु:ख की अभिव्यंजना इन गीतों में हुई है । लोक में स्त्रियों का जो स्थान है, बाल विवाह, वृद्ध विवाह, बहु विवाह के कारण किस प्रकार उनका जीवन नारकीय बन जाता है- इसका मर्मस्पर्शी वर्णन इन गीतों में मिलता है। सास और बहू, ननद और भावज की शाश्वतिक कलह की चर्चा भी दिखाई देती है, जिसकी पुष्टि प्रत्यक्ष उदाहरणों द्वारा होती है। परंतु इसके साथ ही लोक जीवन के उज्वल पक्ष का भी चित्रण इन गीतों में कम नहीं है। भाई और बहन का सहज, स्वाभाविक और अकृत्रिम प्रेम, जो आज के जीवन में कथा मात्र शेष रह गया है, इन गीतों में पाया जाता है । माता और पुत्री के अलौकिक प्रेम की दिव्य झाँकी इनमें हमें देखने को मिलती है। स्त्रियों के सतीत्व का भी दिव्य एवं स्वर्गीय दृश्य हम इन गीतों में पाते हैं। ❑

संदर्भ सूची :

1. नवल जी श्री; नालंदा विशाल शब्द सागर, पृ-1220, न्यू इम्पीरियल बुक डिपो, नई सड़क, दिल्ली
2. उपाध्याय कृष्णदेव; लोकसाहित्य की भूमिका, पृ-11, प्रथम संस्करण, लोक भारती प्रकाशन
3. 'राकेश' श्री राम इकबाल सिंह; मैथिली लोकगीत, पृ-43, द्वितीय संस्करण-2012, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
4. रामायण, बालकाण्ड, द्वितीय सर्ग, श्लोक-15
5. 'राकेश' श्री राम इकबाल सिंह; मैथिली लोकगीत, पृ-185, द्वितीय संस्करण-2012, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
6. पृ-111, वही
7. उपाध्याय कृष्णदेव; भोजपुरी लोकसाहित्य, पृ-214, संस्करण-2002, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी
8. पृ-215, वही
9. पृ- 220, वही
10. http://kavitakosh.org/kk/रेलिया बैरन

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

स्त्री-विमर्श

हिंदू धर्म संस्कृति में नारी का स्थान

आनंद कुमार
शोधार्थी, इतिहास विभाग
एम.एम. पी.जी. कॉलेज
मोदीनगर, गाजियाबाद - 201206
फोन : 7409652402
ई-मेल : anandsharma14214@gmail.com

डॉ. सुनिता सिरोही
निदेशक
एसोसिएट प्रोफेसर (इतिहास विभाग)
एम.एम. पी.जी. कॉलेज
मोदीनगर, गाजियाबाद - 201206

सारांश :
प्रत्येक समाज की अपनी विशेषताएं होती हैं इसी प्रकार प्रत्येक धर्म के अंदर भी बहुत सारे रीति रिवाज और परंपराएं होती हैं। जो कि समाज को प्रेरित करते हैं। वर्तमान समय और 21 वी सदी नारी सशक्तिकरण की सदी है। नारी के सशक्तिकरण में अनेकों प्रयास किए जा रहे हैं। बहुत सारे नारीवादी संगठन इस दिशा में संघर्षरत हैं। जिसका प्रभाव यह हुआ है कि जिन धर्म संस्कृतियों में नारी को प्रमुखता नहीं दी गई थी। उन्हें भी अब इस ओर ध्यान देने की जरूरत आन पड़ी है। हिंदू धर्म संस्कृति में सदा से ही स्त्री को प्रमुख स्थान दिया गया है। उसे कहीं भी पुरुष से निम्न अथवा कमतर नहीं माना गया है। जो स्त्री सशक्तिकरण की बात वर्तमान में की जा रही है उसे हमने सदियों पहले से ही अपनाया हुआ था। इसके पुख्ता प्रमाण हमारे वेद ,उपनिषद ,दर्शन, पुराण और स्मृतियों में प्राप्त होते हैं। दोनों महाकाव्य रामायण और महाभारत में भी अनेक ऐसे प्रसंग हैं। जब नारी सशक्तिकरण के उदाहरण हमें प्राप्त होते हैं। यदि हिंदू धर्म संस्कृति का ध्यान पूर्वक अध्ययन करें तो हमें पता चलता है कि यह दुनिया का एकमात्र ऐसा धर्म है। जहां स्त्री को इतना मान सम्मान और उच्च स्थान प्राप्त है। अन्य जगह ऐसा प्रमाण मिलना दुर्लभ है। इन्हीं सब विशेषताओं और उदाहरणों से शोधार्थी ने स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि भारतीय धर्म संस्कृति सदैव से ही नारी प्रधान रही है। वह किसी आयातित नारी सशक्तिकरण आंदोलन की मोहताज नहीं है।

प्रस्तावना :
निम्नलिखित धार्मिक साहित्य के आधार पर हम इस तथ्य को स्पष्ट कर सकते हैं। भारतीय संस्कृति सभ्यता और समाज में नारी को सर्वोपरि स्थान प्राप्त था।

अर्धनारीष्वर रूप - हिंदू धर्म संस्कृति के अनुसार तीन देव सर्वोपरि हैं ब्रह्मा, विष्णु और महेश। ब्रह्मा इस सृष्टि के रचयिता विष्णु पालन कर्ता और शिव संहारक हैं।1 शिव को आदि देव भी कहा जाता है। शिव पूजा के प्रमाण सिंधु घाटी सभ्यता की खुदाई से भी प्राप्त हुए हैं।2 षिव पुराण के अनुसार भगवान शंकर का एक रूप अर्धनारीश्वर भी है।3 अर्थात वह

आधे भगवान शंकर रूप में है और आधे पार्वती के रूप में। यह अर्धनारीश्वर रूप इस बात का प्रमाण है कि भारतीय धर्म और संस्कृति में नारी को बराबर का स्थान दिया गया है। अर्थात हिंदू धर्म संस्कृति के अनुसार जो सबसे शक्तिशाली भगवान का दर्जा प्राप्त भगवान शिव हैं। वह स्वयं पार्वती को अर्धनारीश्वर रूप में पूजित कर रहे हैं। समाज में स्त्री को अर्धांगिनी भी कहा जाता है। अर्थात जो आधे की साझीदार है। यह उदाहरण इस ओर संकेत करता है कि भारतीय धर्म संस्कृति सदैव से ही स्त्री - पुरुष के भेदभाव को नहीं करती है, बल्कि उसे बराबर का स्थान प्रदान करती है। इसीलिए अर्धनारीश्वर रूप में उसकी पूजा की जाती है।

शक्तिपीठ - षिवपुराण के अनुसार भगवान शंकर ने जब मां सती के मृत शरीर के टुकड़े किए थे। तो वह 52 जगहों पर जाकर गिरे4 इन सभी 52 जगहों को शक्ति पीठ के रूप में पूजा जाता है।5 यह सभी शक्तिपीठ हिंदू धर्म में आस्था के बड़े केंद्र हैं। कहा जाता है जहां-जहां सती के शरीर के अंग गिरे थे। वहीं पर पूजने की परम्परा बन गई जैसे- असम में मां कामाख्या, पाकिस्तान में मां हिंगलाज, दिल्ली में कालका, इसी प्रकार नैना देवी, चिंतपूर्णी ये सभी 52 शक्तिपीठों में से एक हैं। जिस प्रकार भगवान शंकर के 12 ज्योतिर्लिंग6 पूजित हैं। उसी प्रकार से शक्ति के भी 52 पीठ पूजित हैं।

अनन्तशक्तिशाली स्वरूप - ऐसे कई प्रसंग पौराणिक और धार्मिक साहित्य में आते हैं जब नारी का अनंत शक्तिशाली स्वरूप देखने को मिलता है। जैसे महिषासुर एक शक्तिशाली राक्षस था। उसका वध त्रिदेव और इंद्र के वश में भी नहीं था।7 तब शक्ति स्वरूपा जगदंबा ने उसका वध किया और उनका नाम महिषासुर मर्दिनी पड़ा।8 इसी प्रकार जब रक्तबीज नामक राक्षस का संहार कर पाना किसी भी देव के वश में नहीं था। तब दुर्गा रूप धारण कर नारी शक्ति ने रक्तबीज का संहार किया।9 उनके स्वरूप का तेज इतना भयानक था। उन्हें रोकना संभव नहीं था। ऐसे में भगवान शंकर को उनके चरणों में लेटना पड़ा ताकि उन्हें उनके वास्तविक स्वरूप में लाया जा सके।10 यहां फिर से एक बात ध्यान देने योग्य है। हिंदू धार्मिक मान्यता में सर्वोच्च देव स्त्री के चरणों में गिर कर उसे रोकने का प्रयत्न कर रहे हैं। चरणों में गिरने वाला छोटा है इसलिए यहां यह प्रसग नारी की श्रेष्ठता को साबित करता है। रामायम के अनुसार अत्रि ऋषि की पत्नी माता अनुसूया ने ब्रह्मा विष्णु महेश को शिशु बनाकर अपने आश्रम के पालने में झूला झुलाया था। वह इतनी प्रभावशाली और शक्तिशाली महिला थी कि उन्होंने त्रिदेव को भी अपने सम्मुख शिशु बना दिया था।11

प्रथम उच्चारण - भारतीय समाज संस्कृति और धर्म में नारी का स्थान प्रथम है पूजित है और सर्वोपरि है। इसका सबसे अच्छा उदाहरण आप निम्नलिखित तर्कों से समझ सकते हैं। जैसे- उमापति,लक्ष्मीनारायण, रमापति, सियाराम, राधेकृष्ण इन सभी नामों में स्त्री सूचक शब्द पहले जुड़ा हुआ है और पुरुष सूचक शब्द बाद में जुड़ा हुआ है।जो इस बात का द्योतक है कि भारतीय समाज संस्कृति और धर्म स्त्री को प्रथम स्थान देता आया है। यह नाम आज से प्रचलित नहीं है अपितु सदियों से प्रचलित हैं। आज जब हमारी फिल्मों की शुरुआत होती है तो अभी हाल फिलहाल में एक नया प्रचलन सामने आया है कि नायक से पहले नायिका का नाम स्क्रीन पर आता है। जबकि हमारे इन्हीं धार्मिक ग्रंथों में और बोलचाल में सदा से स्त्री को प्रथम स्थान पर रखा गया है।

वेदों की ऋचाओं की रचयिता - ऋग्वेद को हिंदू धर्म ही नहीं अपितु विश्व की सबसे प्राचीन ग्रंथ माना गया है। यह ग्रंथ आर्यों के उच्च विचारों और क्रियाकलापों का प्रमाणिक स्रोत है। ऋग्वेद के अंदर बहुत सारी ऋचाओं में यह प्रमाणित होता है कि इनकी रचना स्त्रियों द्वारा की गई थी। जैसे कि अपाला, घोषा लोपामुद्रा, गार्गी, मैत्रेयी। यह सभी विदुषी महिलाएं उस काल में इस काबिल थी कि वेद विचारों की रचना कर सकती थी12 अर्थात प्राचीन समय से ही स्त्री शिक्षा और अन्य क्षेत्रों में पुरुष की बराबर भागीदार थी। तभी वह वेदों की रचना को रचने की काबिलियत धारण कर पाई।

पिता के निर्णय को बदलने का अधिकार - रामायण का एक प्रसंग है जब रामचंद्र जी को 14 वर्ष का वनवास हो जाता है। तब उन्हें ऋषि वशिष्ठ यह सुझाव देते हैं कि

यदि उनकी माता कौशल्या उन्हें वन भेजने के लिए मना कर देती हैं। तो वह वन नहीं जा सकते। क्योंकि पिता के निर्णय को पलटने का अधिकार माता को है।13 क्योंकि संतान पर उसका भी आधा अधिकार है। अत: केवल पिता के निर्देश मात्र से राम तुम वन नहीं जा सकते। यह उदाहरण इस बात का संकेत करता है कि माता को पिता के बराबर बल्कि इससे कहीं अधिक अधिकार प्राप्त थे। भारतीय धर्म संस्कृति के अनुसार माता को प्रथम गुरु, प्रथम पाठशाला भी कहा गया है।

द्रोपदी और सीता - महाभारत और रामायण दोनों महाकाव्य भारत के तत्कालीन समाज संस्कृति और इतिहास का प्रतिनिधित्व करते हैं। जहां रामायण में भगवान राम लंका पर चढ़ाई करके रावण का वध करके पूरी पृथ्वी को उसके पापों से मुक्त करते हैं।14 वही पांडव कौरवों के अत्याचार पूर्ण शासन को समाप्त कर एक कल्याणकारी राज्य की स्थापना करते हैं। दोनों ही महाकाव्य में एक बात समान है कि स्त्री के सम्मान को ठेस पहुंचाने वाले लोगों को कठोर दंड दिया गया है। चाहे सीता को हर कर ले जाने वाला रावण हो अथवा द्रोपदी को अपनी जंघा पर बैठाने और उसके वस्त्रों को खींचने वाला दुशासन। दोनों ही आतातईयों को उस समय के योद्धाओं ने यमलोक पहुंचा कर यह संदेश दिया है कि स्त्री के सम्मान , स्वाभिमान से कोई समझौता नहीं किया जा सकता। वह कोई भोग विलास की वस्तु नहीं है कोई भी राह चलता उसे तुच्छ समझ कुछ भी कह दे। नारी सम्मान की बात दोनों महाकाव्य करते हैं।

यत्र पूज्यंते नारी तत्र रमंते देवता:

मनुस्मृति में कहा गया है कि जिस स्थान पर नारी का मान सम्मान होता है। उसकी पूजा होती है, उसका आदर होता है, उस जगह पर स्वयं देवता भी आकर निवास करते हैं।15 नारी को गृह लक्ष्मी, सरस्वती और शक्ति का रूप समझा गया है। उसकी अवहेलना पर उसके निरादर पर घर की सुख शांति समृद्धि सब कुछ गायब हो जाती है।16 इसलिए उसके सम्मान को सर्वोपरि रखना आवश्यक है। इसलिए मनु महाराज ने भी कहा है कि जिस स्थान पर नारी की पूजा होती है। उस स्थान पर स्वयं देवता भी निवास करते हैं। हिंदू समाज में दो बार वर्ष में नवरात्रों का त्यौहार आता है 9 दिन के उपवास और पूजा के पश्चात जब घर में पूजन होता है तो इसमें कन्याओं को भोजन कराया जाता है उनके चरण स्पर्श किए जाते हैं व वंदना की जाती है। जो इस बात का प्रतीक है कि स्त्री का स्वरूप पूजनीय है। हमारे हिन्दू समाज में अविवाहित कन्याओं से पैर भी स्पर्श नहीं कराए जाते हैं। यह माना जाता है कि वह देवी का रूप है। इतना मान सम्मान और प्रतिष्ठा केवल भारतीय हिंदू धर्म संस्कृति में ही दिखाई दे सकता है अन्यत्र तो यह दुर्लभ है।

शंकराचार्य के सम्मुख भारती का शास्त्रार्थ- आदि गुरु शंकराचार्य जब भारत भ्रमण पर थे तो उन्होंने भारत के तमाम विद्वानों को शास्त्रार्थ में पराजित किया और अपने दार्शनिक विचारों का लोहा मनवा दिया था। उस समय के विख्यात विद्वान मंडन मिश्र थे मंडन मिश्र और आदि गुरु शंकराचार्य के बीच जब वाद विवाद होना आरंभ हुआ तो एक समय पश्चात मंडन मिश्र की हार लगभग तय हो गई। अपने पति की हार निश्चित मान मंडन मिश्र की पत्नी भारती ने शास्त्रार्थ की कमान संभाली17 और उन्होंने आदि गुरु शंकराचार्य को शास्त्रार्थ में जबरदस्त चुनौती दी। जो इस बात का प्रतीक है कि भारतवर्ष में जो लोग कहते हैं कि स्त्री शिक्षा नहीं थी। नारी पर अत्याचार था वह केवल दासियों की तरह काम करती थी। यह प्रमाण उन लोगों के लिए है कि आदि गुरु शंकराचार्य के समक्ष एक स्त्री ने शास्त्रार्थ किया। वह तभी शास्त्रार्थ कर पाई क्योंकि विदुषी थी। भारतवर्ष में सीता, तारा, सावित्री, मदालसा, भारती अनेकों ऐसी महान स्त्रियां हुई है जिन्होंने अपने ज्ञान का लोहा मनवाया है।

स्त्री के ईश्वरीय स्वरूप की संकल्पना - हिंदू धर्म दर्शन में पुरुष के ईश्वर स्वरूप के साथ-साथ स्त्री के ईश्वरीय स्वरूप की भी व्याख्या और वर्णन किया गया है। वह कुछ स्थानों पर तो पुरुष ईश्वरीय स्वरूप से भी अधिक शक्तिशाली और सशक्त दिखाई पड़ता है। जैसे कि पूर्व में भी बताया गया कि आदि देव भगवान शंकर को दुर्गा स्वरूपा को रोकने के लिए उनके मार्ग में लेटना पड़ा। हिंदू धर्म दर्शन में आधे की अधिकारी स्त्री को बताया

गया है। जैसे विष्णु के साथ लक्ष्मी, भगवान शंकर के साथ मां शक्ति, रिद्धि- सिद्धि, ज्ञान की देवी सरस्वती। धन की देवी लक्ष्मी, दुर्गा, कालरात्रि, कामाख्या, चामुंडा ,ज्वाला जी, चिंतपूर्णी, नैना देवी ,कालका, हिंगलाज, भवानी आदि सभी नाम स्त्री के ईश्वरीय स्वरूप के ही हैं। जितना महत्व भगवान कृष्ण की भक्ति का है उतना ही उनके साथ में राधा जी का भी है जिस प्रकार भगवान राम इस देश की आराधना शक्ति के केंद्र हैं उसी प्रकार माता जानकी भी पूजित हैं। पूरे भारतवर्ष और हिंदू धर्म में ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि देवों के उपासको के जैसे ही शक्ति के भी ईश्वरीय स्वरूप के उपासक भी बड़ी संख्या में है।

विवाह एक संस्कार - हिंदू धर्म में विवाह एक संस्कार है ना कि एक समझौता। यहां स्त्री पुरुष के इस बंधन को सात जन्मों का पवित्र साथ कहा गया है। यह एक जन्म की प्रक्रिया नहीं है। क्योंकि सृष्टि को निरंतर चलाने के लिए नए जीवों की आवश्यकता है। अत: विवाह एक पवित्र बंधन है18 जो कि संतान उत्पत्ति और सामाजिक दायित्वों की पूर्ति के लिए किया जाने वाला एक पवित्र संस्कार है। अन्य मतों की भांति यह मात्र समझौता नहीं है। इसीलिए भारतीय धर्म दर्शन में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चार पुरुषार्थ बताए गए हैं और चारों पुरुषार्थ की पूर्ति व्यक्ति गृहस्थ जीवन के बाद ही कर सकता है। गृहस्थ धर्म को अन्य सभी धर्मों से श्रेष्ठ भी बताया गया है। विवाह के दौरान अनेक ऐसी धार्मिक क्रियाएं होती हैं जो कि स्त्री पुरुष को समान दर्जा देती हैं। वर वधु का जब पानीग्रहण होता है। तब वर और वधू दोनों से एक दूसरे के प्रति वचन लिए जाते हैं। अग्नि के सम्मुख जब दोनों पक्ष इन वचनों पर अपनी सहमति दे देते हैं। तभी यह विवाह की प्रक्रिया पूर्ण मानी जाती है। इसका तात्पर्य यह है कि कन्या और और वर से यदि इन वचनों की दायित्व निभाने की सहमति नहीं दी जाएगी तो यह विवाह पूर्ण नहीं होगा। सात फेरों के दौरान एक बार वर आगे चलता है और एक बार वधू आगे चलती है। यह भी दोनों की बराबरी को दर्शाने वाली एक प्रक्रिया है। हल्दी मेहंदी का जो संस्कार वर पक्ष के घर पर होता हैं वही प्रक्रियाएं वधू पक्ष के घर पर भी होती हैं। यह तमाम संस्कार इस बात की ओर संकेत करते हैं कि भारतीय धर्म संस्कृति में स्त्री को पुरुष को समान माना गया है। ऋग्वेद में स्त्री को 'जापेदस्तम' अर्थात पत्नी ही घर है, कहा गया है। पत्नी के बिना पुरूश यज्ञ नहीं कर सकता था।

मातृ देवी की पूजा - सिंधु सभ्यता की खुदाई के दौरान प्राप्त हुई मातदेवी की मूर्तियों की संख्या 2500 से भी अधिक है। सिंधु सभ्यता की खुदाई में शामिल रहे और उसके शोध कार्य को आगे बढ़ाने वाले तमाम विद्वानों का मानना है। कि सिंधु सभ्यता स्त्रीप्रधान थी। यहां मातृसत्तात्मक परिवारों का ही प्रचलन था।20 खुदाई से मिलने वाले तथ्य इस बात को उजागर कर रहे हैं कि सिंधु सभ्यता और वैदिक सभ्यता में कोई बड़ा अंतर भी नहीं था। भारत भूमि की प्राचीन सभ्यता में भी स्त्री जाति को पुरुष से भी अधिक प्रबल पाया गया है। भारतीय जनमानस में स्त्री का स्थान सदैव से ही ऊंचा रहा है।

नदियों के नाम - भारत की नदियों को देवी स्वरूपा मानकर उनकी पूजा अर्चना की गई है। वेदों में भी नदी स्तुति की गई है।21 सभी नदियों के नाम स्त्री सूचक है। इनकी पूरे भारतवर्ष में पूजा की परंपरा भी है। गंगा, यमुना, सरस्वती, कावेरी, नर्मदा, गोमती, आज भी इन नामों से भारत में स्त्री जाति संबोधित की जाती है।

ग्राम देवता - भारत के सभी गांवों में कुल देवता और ग्राम देवता का की पूजा की जाती है। ग्राम देवता के तौर पर 3 देवियों की मुख्यत: पूजा होती है। इनमें चावंड, भूमिया और महामाई की विशेष तौर पर पूजा होती है। यह माना जाता है कि तीनों देवियां गांव की रक्षक होती हैं।22 स्त्री स्वरूप इन देवियों की पूजा परंपरा इस बात का प्रमाण है की भारतीय परंपरा धर्म-दर्शन में स्त्री का सम्मान और आदर सदैव से ही रहा है और यह हमारे व्यवहार और संस्कार का हिस्सा है।

निष्कर्ष - वर्तमान समय में स्त्रीवाद और नारी आंदोलन अपने चरम पर है । बहुत सारे नारीवादी संगठन स्त्रियों की दशाओं को ठीक करने के लिए प्रयासरत हैं। सरकार और अन्य सामाजिक संस्थाओं की भी भूमिका इसमें सराहनीय है। किंतु कभी-कभी भारतीय नारी

के संबंध में जब सशक्तिकरण की बात होती है तो यह समझा जाता है कि इस देश में नारी का कोई अस्तित्व ही नहीं था । जो कुछ भी किया जा रहा है वह केवल अभी हुआ है। पाश्चात्य ज्ञान विज्ञान संस्कृति से प्रभावित लोगों का यह मानना है कि अब से पहले भारत में नारी सशक्तिकरण और स्त्री जागरूकता शून्य ही थी। जबकि ऐसा बिल्कुल नहीं है इसे कुछ लोगों का पूर्वाग्रह ही कहा जाएगा कि वे भारतीय धर्म संस्कृति मैं नारी सशक्तिकरण नहीं देखते हैं। हमारा उद्देश्य है समाज के सम्मुख यह बात लाई जा सके कि भारतीय हिंदू धर्म दर्शन में, स्त्री पुरुष से कमतर नहीं है बल्कि उससे अधिक है। यह बात हमारी परंपराओं में भी झलकती है। हमें उसी परंपरा को आगे बढ़ाने की आवश्यकता है। ❑

संदर्भ सूची :

1. षिवपुराण रूद्र संहिता गीता प्रेस गोरखपुर पृ. स. 241 प्रकाषन वर्श – संवत 2068
2. चौबे प्रभात कुमार क्रॉनिकल बुक्स प्राचीन भारत भाग – 1 पृश्ठ सं. – 53
3. षिव पुराण वायवीय संहिता गीता प्रेस गोरखपुर पृ. सं. 684–686 प्रकाषन वर्श संवत 2068
4. दैनिक अमर उजाला नई दिल्ली, 1 अप्रैल 2022 पृश्ठ सं0 9 एवंत न्त्र चूड़ामणि
5. वही
6. षिव पुराण गीता प्रेस गोरखपुर पृश्ठ सं 493 – 496 प्रकाषन वर्श 2068
7. श्री दुर्गा सप्तषती गीता प्रेस गोरखपुर तलयीय अध्याय ष्लोक 26, 27 पृ. सं. 94
8. वही ष्लोक 41, 2, 43, पृ. सं. 94
9. श्री दुर्गा सप्तसती गीता प्रेस गोरखपुर ष्लोक 59, 63 पृ. सं. 143–144
10. वही
11. हनुमान प्रसाद पोदार, चिम्मन लाल गोस्वामी 'नारी अंक' गीता प्रेस गोरखपुर पृ. सं. 494–500
12. के. सी. श्रीवास्तव प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति प्रकाषक यूनाईटेड बुक डिपो इलाहाबाद पृ. सं. – 88
13. हनुमान प्रसाद पोदार, चिम्मन लाल गोस्वामी 'नारी अंक' गीता प्रेस गोरखपुर पृ. सं. 548–550
14. श्री रामचरित मानस गीता प्रेस गोरखपुर पृ. सं. 864–865 लंका काण्ड
15. मनुस्मृति ष्लोक 3–56
16. वही
17. दैनिक जनसत्ता समाचार पत्र 25 जनवरी 2019 नई दिल्ली
18. के. सी. श्रीवास्तव प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति प्रकाषक यूनाईटेड बुक डिपो इलाहाबाद पृ. सं. – 88
19. विवाह पद्धति जवाहर बुक डिपो मेरठ पृ. सं. 45
20. चौबे प्रभात कुमार क्रॉनिकल बुक्स प्राचीन भारत भाग – 1 पृ.स. – 47
21. ऋग्वेद 10–75–5
22. प्रत्येक गांव में चांवड, भूमियां, महामाई ग्राम देवता के मन्दिर मढ़ बने होते हैं।

संगोष्ठी समाचार

विश्वनाथ चारिआलि में दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी संपन्न

उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान एवं विश्वनाथ चारिआलि राष्ट्रभाषा प्रबोध विद्यालय परिचालना समिति के संयुक्त तत्त्वावधान में राज्य के विश्वनाथ चारिआलि में गत 12-13 मई, 2023 को दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया गया। संगोष्ठी में मुख्य अतिथि के रूप में उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ की प्रधान संपादक डॉ. अमिता दुबे ने उद्घाटन भाषण में हिंदी के प्रचार-प्रसार में अपने संस्थान की भूमिका और योजनाओं पर सविस्तार प्रकाश डाला। प्रयागराज से पधारे विशिष्ट अतिथि आचार्य पं. पृथ्वीनाथ पांडेय ने संतोष व्यक्त करते हुए कहा कि इस हिंदीतर राज्य में हिंदी भाषा का प्रचार-प्रसार पूर्ण तन्मयता के साथ किया जा रहा है। उन्होंने आगे कहा कि सभी विभेदों को भुलाकर अब भारतीय भाषाओं को हिंदी के साथ मिलकर चलना होगा। यह तभी संभव है, जब किसी भी भारतीय भाषा के प्रति हमारे मन के किसी कोने में किसी भी प्रकार का पूर्वाग्रह न पैठा हो। हम जब भाषिक परिप्रेक्ष्य में राष्ट्रीय एकता की बात करते हैं, तब हमारे समक्ष एक राष्ट्र-एक भाषा का सिद्धांत और व्यवहार का एक विकट प्रश्न आ खड़ा होता है। इसे लागू करने के मार्ग में विविध मातृभाषाएँ आड़े आती अनुभव होंगी। इन विसंगतियों को दूर करने के लिए सद्भावपूर्ण वातावरण में समाज और राजनीतिक स्तर पर संवाद करने की आवश्यकता है। विश्वनाथ चारिआलि राष्ट्रभाषा प्रबोध विद्यालय परिचालना समिति के अध्यक्ष प्रभुनाथ सिंह ने उद्घाटन सत्र की अध्यक्षता की।

संगोष्ठी में उत्तर प्रदेश, दिल्ली, मेघालय, सिक्किम, मिजोरम, नगालैंड, असम, अरुणाचल प्रदेश आदि राज्यों के विश्वविद्यालयों तथा अन्य शिक्षण-संस्थानों की अध्यापक-अध्यापिकाओं, साहित्यकारों तथा समीक्षकों ने अलग-अलग सत्रों में **भाषिक, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में राष्ट्रीय एकता** विषय पर अपने शोधपत्रों के वाचन और मौखिक व्याख्यान दिये।

प्रथम सत्र के अंतर्गत डॉ. सुनील कुमार तिवारी की अध्यक्षता में **राष्ट्रीय एकता का भाषाई परिप्रेक्ष्य** विषय पर डॉ. अनुशब्द तथा डॉ. चंद्रशेखर चौबे, द्वितीय सत्र में प्रो. दिलीप कुमार मेधि की अध्यक्षता में **राष्ट्रीय एकता का साहित्यिक परिप्रेक्ष्य** विषय पर हरि प्रसाद लुइटेल, डॉ. आलोक रंजन पांडेय, डॉ. परिस्मिता बरदलै तथा डॉ. नंदिता दत्त ने अपने-अपने शोधपत्रों का वाचन किया।

दूसरे दिन श्रीश्री सार्वजनिक धर्मशाला सभागार में **राष्ट्रीय एकता का सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य** विषय पर तृतीय सत्र के अंतर्गत प्रो. प्रमोद मीणा की अध्यक्षता में डॉ. राजीव रंजन प्रसाद तथा श्रीमती गीता वर्मा ने अपने-अपने विचार व्यक्त किये। चतुर्थ सत्र के अंतर्गत **राष्ट्रीय एकता का भाषाई, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य तथा पूर्वोत्तर-भारत** विषय पर डॉ. अनिता पंडा की अध्यक्षता में डॉ. बी.पी. फिलिप, श्रीमती रीता सिंह सर्जना, जय शिवानी तथा डॉ. चुकी भूटिया ने अपने-अपने विचार व्यक्त किये।

समापन सत्र के दौरान आठ हिंदीसेवियों - ऊषा साहू, राहुल मिश्रा, सैयदा आनोवारा खातुन, मनीषा पाल, गायत्री कलवार, गायत्री गुप्ता, अनूप शर्मा व कविराज होमागाईं को **भाषागौरव सम्मान** प्रदान किया गया। इसके अलावा इस सत्र में पाँच हिंदी पुस्तकों यथा - पाँचवीं कक्षा के छात्र दिव्यज्योति बरुवा के कविता संग्रह **दिव्य मन**, हिंदी प्रचारिका मनीषा पाल के कविता-संग्रह **हर लम्हा कुछ कहता है,** हिंदी-प्रचारिका सैयदा आनोवारा खातुन के कहानी-संग्रह **जिंदगी तेरे लिए**, अतुल बरठाकुर के बाल उपन्यास (जानी-मानी साहित्यकार स्वर्णलता हजारिका द्वारा अनूदित) **कुतु और सुमन,** हिंदी-प्रचारक संतोष कुमार महतो के काव्य-संग्रह **शब्द-संजीवनी** का लोकार्पण किया गया। इस अवसर पर असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के मंत्री डॉ. क्षीरदा कुमार शइकिया ने राष्ट्रभाषा के महत्व और असम में इसके प्रचार-प्रसार में असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के योगदानों का सविस्तार उल्लेख किया। साथ ही इस अवसर पर डॉ. चिंतामणि शर्मा ने अपने सारगर्भित विचार व्यक्त किये। गौरतलब है कि यह संगोष्ठी विश्वनाथ चारिआलि राष्ट्रभाषा प्रबोध विद्यालय परिचालना समिति के सचिव संतोष कुमार महतो के संयोजन में संपन्न हुआ।

समारोह के अंत में रंगारंग सांस्कृतिक कार्यक्रम का भी आयोजन किया गया। ❑

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

প্রবন্ধ

কথনবিজ্ঞানৰ আধাৰত দমিতাৰ দস্তাবেজৰ কথন শৈলীৰ বিশ্লেষণ

ড° গীতাঞ্জলি হাজৰিকা

সহযোগী অধ্যাপক
অসমীয়া বিভাগ
আর্য্য বিদ্যাপীঠ মহাবিদ্যালয়
গুৱাহাটী-৭৮১০১৬
ম'বাইল ঃ 9864041895
ইমেইল-gitanjalihazarika72@gmail.com

সংক্ষিপ্ত সাৰ ঃ

ভাষা মানৱ বুদ্ধিমত্তাৰ সর্বোত্তম নিদর্শন। ভাষাৰ বৃহৎ অংশটোৱেই কথন। একেদৰে, ভাষাবিজ্ঞানৰ এটা প্রধান শাখা কথনবিজ্ঞান। ভাষাৰ প্রায়োগিক দিশৰ লগত জড়িত হোৱাৰ সূত্রে কথনবিজ্ঞান প্রয়োগ ভাষাবিজ্ঞানৰ অন্তর্ভুক্ত। প্রয়োগ ভাষাবিজ্ঞানে ভাষাৰ ব্যৱহাৰিক দিশসমূহৰ বিষয়ে অধ্যয়ন কৰে। এই দিশবোৰৰ ভিতৰত ভাষাবোধ, কথন, পঠন আৰু লিখন অন্যতম। কথনৰ বিষয়ে বিজ্ঞানসন্মতভাবে কৰা সামগ্রিক আলোচনাই কথনবিজ্ঞান। এই 'সামগ্রিক আলোচনা' কথাটোৱে ভাষা উচ্চাৰণ কৰাৰ পৰা অর্থবোধ কৰালৈকে কথনৰ সমূহ ধৰণ-কৰণ, কৌশল, কার্যকাৰিতা, শৈলী ইত্যাদি দিশ সামৰি লয়। কথন এক কলা। লিখিত সাহিত্যৰ বহুকাল আগতেই কথন কলা সৃষ্টি হৈছিল। সাধুকথাৰ বিশ্বজনীন জনপ্রিয়তাৰ মূলতে কথনৰ চমৎকাৰিত্ব। বিষয়, শ্রোতা আৰু পৰিবেশ অনুসৰি কথনৰ ধৰণ বেলেগ হয়। সেইবাবেই সাধুকথাৰ কথন, ধর্মীয় কাহিনী কথন বা উপন্যাসৰ কথনৰ লগত নিমিলে। একেদৰে ভিন্ন শ্রোতাৰ লগত একেজন বক্তাৰে কথন ভিন্ন হয়। একে বিষয় আৰু একে বক্তা-শ্রোতাৰ মাজতো পৰিবেশৰ পার্থক্য অনুসৰি কথন বেলেগ হয়। এই পৰিবেশ বাহ্যিক অর্থাৎ গৰম -জাৰজনিত অথবা আভ্যন্তৰীণ অর্থাৎ মন-মেজাজ জনিত অথবা সামাজিক অর্থাৎ ৰাজনৈতিক-অর্থনৈতিক-ধর্মীয়-ঐতিহাসিক পৰিবেশ ইত্যাদি যিকোনো হ'ব পাৰে। কথনৰ মৌখিক ৰূপত ভিন্নতা থকাৰ দৰে লিখিত ৰূপটো নানান ভিন্নতা আছে। এইবাবেই বিষয়বস্তু একে হ'লেও এজন লেখকৰ কথন কৌশল আন এজনৰ লগত নিমিলে। আকৌ, একেজন লেখকেই ভিন্ন বিষয়ৰ বাবে ভিন্ন ধৰণৰ কথন কৰে। অর্থাৎ কথন এক বহুমাত্রিক প্রক্রিয়া। এই প্রক্রিয়াৰে বিজ্ঞানসন্মত অধ্যয়ন কথনবিজ্ঞান। এই আলোচনাত কথনবিজ্ঞানৰ তত্ত্বৰ আধাৰত অসমীয়া উপন্যাস সাহিত্যত 'কাঁহীবুনৰ মালিতা'খ্যাত ৰুদ্রাণী শর্মাৰ উপন্যাস 'দমিতাৰ দস্তাবেজ'ৰ কথন শৈলীৰ বিশ্লেষণ কৰা হ'ব।

বীজ শব্দ ঃ কথন, প্রয়োগভাষাবিজ্ঞান, বক্তা, শ্রোতা, পৰিবেশ, দমিতাৰ দস্তাবেজ।

০.০ অৱতৰণিকাঃ

০.১ বিষয়ৰ পৰিচয়ঃ

অতি প্ৰাচীন কালৰে পৰাই মানুহে ভাষা সম্পৰ্কীয় চিন্তা-চৰ্চা কৰি আহিছে। এই চিন্তা-চৰ্চা প্ৰাৰম্ভিক অৱস্থাত ব্যাকৰণৰ ভিতৰত সীমিত আছিল। পানীনিৰ অষ্ট্যাধ্যায়ী তাৰেই উদাহৰণ। পৰৱৰ্ত্তী কালত পশ্চিমীয়া দেশত ব্যাকৰণৰ চৰ্চা এনেদৰে ডালে -পাতে বিকশিত হৈ উঠিল যে ভাষাৰ বিভিন্ন দিশৰ আলোচনাৰে অধ্যয়নৰ একো একোটা শাখাৰ সৃষ্টি হ'ল। এই শাখাবোৰৰ ভিতৰত বৰ্ণনাত্মক ভাষাবিজ্ঞান, তুলনামূলক ভাষাবিজ্ঞান, সমাজ ভাষাবিজ্ঞান, ভূ -ভাষাবিজ্ঞান বা ভাষা -ভূগোল, প্ৰয়োগ ভাষাবিজ্ঞান ইত্যাদি উল্লেখযোগ্য। প্ৰয়োগ ভাষাবিজ্ঞানে ভাষাবিজ্ঞানলব্ধ জ্ঞানক মানৱৰ উপকাৰত অহাকৈ কামত লগাবলৈ চেষ্টা কৰিলে। বৰ্ত্তমান ভাষা শিক্ষা, অভিধান ৰচনাৰ পৰা আৰম্ভ কৰি অতি সম্প্ৰতি উপলব্ধ যান্ত্ৰিক অনুবাদলৈকে বিভিন্ন বিষয় প্ৰয়োগ ভাষাবিজ্ঞানে সামৰি লৈছে। ভাষা শিক্ষাৰ এক প্ৰধান দিশ ভাষা আহৰণ। ভাষা আহৰণ সহজ কৰি তুলিবলৈ হ'লে কিছুমান কৌশল অৱলম্বন কৰা হয়। সেইবোৰৰ ভিতৰত—কথন অন্যতম।

এই কথনকে কেন্দ্ৰ কৰি বিংশ শতিকাৰ ২য় দশকত এক পৃথক শাখাৰূপে কথনবিজ্ঞানৰ জন্ম হয়। ফৰাচী ভাষাৰ 'narratologie' শব্দটোৰ পৰাই ইংৰাজী 'narratology' শব্দটো আহিছে। অসমীয়াত কথনবিজ্ঞান বা বৃত্তান্ত বিজ্ঞান ৰূপে ইয়াৰ পৰিভাষা নিৰ্ণয় কৰা হৈছে। কথনবিজ্ঞানৰ বিভিন্ন সংজ্ঞাৰ ভিতৰত এটা উল্লেখযোগ্য সংজ্ঞা হ'ল মাইক বাল (Mieke Bal) ৰ —'narratology is a systemetic set of generalized statements about a particular segments of reality, that segment of reality the corpus,about which narratology attempts to make its pronouncement consists of narrative text.' (Bal 264)। এনে সূত্ৰবোৰৰ আধাৰত ক'ব পাৰি যে কথনবিজ্ঞানত কথনৰ বিভিন্ন উপাদান, উপাদানবোৰৰ সংযুক্তি আৰু সম্পৰ্ক, পাঠৰ কৌশল, পাঠ পৰিবেশনৰ ৰীতি আৰু সেইবোৰৰ প্ৰয়োগৰ আলোচনা ইত্যাদিক সামৰি— কথন (narrative), কথনৰ গঠন (narrative structure) আৰু কথন শৈলীৰ (narrative style) বিষয়ে অধ্যয়ন কৰা হয়। কথনক প্ৰভাৱিত কৰা বিভিন্ন আৰ্থ-সামাজিক উপাদানৰ বিষয়ৰ প্ৰতিও ইয়াত নজৰ ৰখা হয়।

দমিতাৰ দস্তাবেজ ৰুদ্ৰাণী শৰ্মাৰ দ্বাৰা ৰচিত এখন সামাজিক উপন্যাস। ৰুদ্ৰাণী শৰ্মাৰ সাধু নাম অনুৰাধা শৰ্মা। মাতৃ শ্ৰীমতী জোণাকী দেৱী আৰু পিতৃ স্বৰ্গীয় গোলোক নাথ শৰ্মা। বৰ্ত্তমান গুৱাহাটী বিশ্ববিদ্যালয়ৰ আধুনিক ভাৰতীয় ভাষা আৰু সাহিত্য অধ্যয়ন বিভাগৰ মুৰব্বী অধ্যাপকৰূপে কাৰ্যনিৰ্বাহ কৰা ডঃ শৰ্মাৰ ৰচিত উপন্যাসসমূহ হ'ল— উত্তৰকাল, দমিতাৰ দস্তাবেজ, লৌহিত্য তীৰৰ অমৃত, পানবজাৰৰ পাণ্ডুলিপি, এটি পখিলাৰ আত্মকথা, ওলোমা বাগান, কাঁহিবুনৰ মালিতা, ত্ৰিভূজ আৰু বতাহৰ ছৱি। দমিতাৰ দস্তাবেজত বিশ্ববিদ্যালয়ৰ হোষ্টেলত থকা কেইগৰাকীমান ছাত্ৰী আৰু তেওঁলোকৰ জীৱনত প্ৰত্যক্ষ অথবা পৰোক্ষভাবে সংঘটিত হোৱা অথবা তেওঁলোকে উন্মোচিত কৰা কিছুমান ঘটনাৰ উল্লেখ আছে। এই ঘটনাবোৰ দমনৰ ঘটনা। তাৰে সিংহভাগেই লিংগভিত্তিক দমন। দমনৰ ঘটনাবোৰ স্বচ্ছন্দপত দেখুৱাবৰ বাবে ঔপন্যাসিকাই কেতিয়াবা কোনো বিখ্যাত সাহিত্যৰ অথবা ইতিহাসৰ জেৰ টানি আনিছে। চৰিত্ৰবোৰৰ মাজত পাঞ্চালী নামৰ চৰিত্ৰটোক কেন্দ্ৰ কৰি মূল কাহিনীটো আগবাঢ়িছে।

এই গৱেষণা পত্ৰত কথনবিজ্ঞানৰ বিভিন্ন তত্ত্বৰ আধাৰত দমিতাৰ দস্তাবেজৰ কথনশৈলী অধ্যয়ন কৰা হৈছে। সেই তত্ত্ববোৰৰ ভিতৰত বিষয় উপস্থাপনৰ বিবিধ কৌশল, যেনে —অধ্যায় বিভাজন, কথক, কথন, কথনৰ পাঁচ কাৰ্য, প্ৰত্যক্ষ আৰু পৰোক্ষ কথন ৰীতি আৰু প্ৰেক্ষাপট সৃষ্টিৰ ভিন ভিন মাধ্যমসমূহ, যেনে — পূৰ্বকৃত সাহিত্য, যুদ্ধ, সামাজিক বিচাৰধাৰা ইত্যাদিক সামৰি লোৱা হৈছে। উল্লেখযোগ্য যে কথন শৈলীয়ে পাঠ গঠনত বিশেষ প্ৰভাৱ পেলায় আৰু এখন পৃথক জগতৰ পৰিবেশ ৰচনা কৰি পাঠকক মোহাবিস্ত কৰি ৰাখে।

০.২ অধ্যয়নৰ পদ্ধতিঃ তথ্য সংগ্ৰহ আৰু বিশ্লেষণেৰে বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়ন পদ্ধতি প্ৰয়োগ কৰি এই গৱেষণা পত্ৰ প্ৰস্তুত কৰা হৈছে।

০.৩ অধ্যয়নৰ পৰিসৰঃ এই অধ্যয়ন প্ৰয়োগভাষাবিজ্ঞানৰ অন্তৰ্ভুক্ত কথনবিজ্ঞানৰ লগত পোনপতীয়াভাবে সংযুক্ত হৈ আছে। লিংগভিত্তিক অসমতা প্ৰকাশৰ বাহক ৰূপে কথনে ক্ৰিয়া কৰা বাবে স্বাভাৱিকতেই এই অধ্যয়নৰ লগত সমাজতত্ত্বৰ এক সম্পৰ্ক স্থাপিত হৈছে। মানৱ জীৱনৰ লগত জড়িত প্ৰায় সকলো দিশেই কথনক প্ৰভাৱিত কৰে। (সেই বাবেই কথনবিজ্ঞান এক

আন্তঃবিদ্যাৱর্ত্তী বিষয়।)এই দিশবোৰৰ ভিতৰত আর্থিক, ৰাজনৈতিক, ধর্মীয় ইত্যাদি দিশ উল্লেখযোগ্য। এতেকে অর্থনীতি, ৰাজনীতি, ধর্মতত্ত্ব ইত্যাদি বিষয়লৈকো এই আলোচনা প্রসাৰিত হৈছে। মানুহৰ মনস্তত্ত্ব বুজাত কথন ৰীতিৰ অধ্যয়নে বিশেষ সহায় কৰে। এতেকে মনস্তত্ব (psychology) ৰ লগতো ইয়াৰ ওচৰ সম্পর্ক।

০.৪ অধ্যয়নৰ লক্ষ্য আৰু উদ্দেশ্য ঃ কথনবিজ্ঞানৰ তত্ত্বৰ আধাৰত দমিতাৰ দস্তাবেজৰ কথন কৌশলৰ বিশ্লেষণ কৰাই এই গৱেষণা- পত্ৰৰ প্রাথমিক লক্ষ্য। উদ্দেশ্য— কথনবিজ্ঞানৰ আধাৰত উপন্যাসখনৰ কথনৰীতিৰ বিশ্লেষন কৰা। কথনৰ বিভিন্ন শৈলীসমূহ চিনাক্ত কৰি ভাষাৰ বৈচিত্র্যময়তা প্রকাশ কৰা। তদুপৰি, কথনৰ কৌশলেৰে কাহিনীবোৰৰ মাজত সোমাই থকা লিংগ বৈষম্যৰ জীয়া ছবিবোৰক লেখিকাই কেনেদৰে কলাত্মক আৰু জীৱন্ত ৰূপ প্রদান কৰিছে সেই বিষয়েও ইয়াত আলোচনা কৰা হ'ব।

০.৫ অধ্যয়নৰ সমল ঃ এই অধ্যয়নৰ প্রধান সমল হ'ল কথনবিজ্ঞানৰ তত্ত্বসমূহ আৰু ৰুদ্রাণী শর্মাৰ উপন্যাস 'দমিতাৰ দস্তাবেজ'ৰ কথনশৈলী । লগতে, এম.এল. এ হাতপুথিৰ অষ্টম সংস্কৰণ আৰু চন্দ্রকান্ত অভিধানৰ লগতে পৰিভাষিক কোষৰ সহায় লোৱা হৈছে।

০.৬ পূর্বকৃত অধ্যয়নৰ চমু আভাস ঃ ছোভিয়েত ৰাচিয়াৰ গৱেষক ভ্লাডিমিৰ পপে (Vladimir propp) আকৃতিবাদ মতৰ সহায়ত সাধুকথাৰ গঠন বিশ্লেষণ কৰি ৩১ টা উমৈহতীয়া গুণ নিৰূপন কৰাৰ লহে লগে কথন বিজ্ঞানৰ চর্চা আৰম্ভ হৈছিল। মাইক বাল (Meike Bal) ৰ 'Narratology: Introduction to the theory of narrative' নামৰ গ্রন্থই সাধুকথাৰ লগতে বোলছৰি , আর্ট আদিৰ কথনকো বিশ্লেষণ কৰি এই অধ্যয়নৰ পৰিসৰ বৃদ্ধি কৰিলে। ১৯৪৭ চনত প্রকাশিত গেৰাল্ড প্রিন্সৰ (Gerald prince) 'A Dictionary of Narratology'য়ে আৰু এখোজ আগুৱাই গৈ ইতিহাস, সাহিত্য, ধর্ম, মনোবিজ্ঞান, দৈনন্দিন কথা-বার্ত্তা সকলোৰে মাজত থকা কথনৰ শৈলীক আলোচনাৰ অন্তর্ভুক্ত কৰিলে। ১৯৭৯ চনত গেৰার্ড জেনেটল(Gerard Genettle) ৰ 'Narrative Discourse'গ্রন্থত কথনৰীতিৰ প্রণালীবদ্ধ বিশ্লেষণ আছিল। ১৯৮৩ চনত স্লমিথ ৰীমনে (Shlomith Rimmon) 'Narrative Fiction Contemporary poetics' গ্রন্থত কথন ৰীতি কি, কথনৰ কোনবোৰ কাৰকে কথনৰীতিৰ গঢ় দিয়ে, অতি প্রাচীন কালৰে পৰা মানুহৰ জীৱনক সকলো ক্ষেত্রতে এটা কথনৰীতিয়ে কেনেদৰে প্রভাৱিত কৰি আহিছে— ইত্যাদি কিছুমান নতুন দিশৰ অৱতাৰণা কৰে। এইচ্ প্র'তাৰ এৱ'টে (H. Porter Abbott) 'The cambridge Introduction to Narrative'গ্রন্থত ব্যক্তিৰ মানসিকতাত কথন ৰীতিৰ প্রভাৱৰ বিষয়ে আলোচনা কৰাৰ লগে লগে কথনবিজ্যানৰ চর্চাই এক বিশেষ মাত্রা লাভ কৰিলে। এই প্রসংগত আন কেইখনমান উল্লেখযোগ্য গ্রন্থ হ'ল—কথনবিজ্ঞানৰ গৱেষণা প্রণালীৰ বাবে ২০০৯ চনত প্রকাশিত পীটাৰ হো'ন (Peter Hunn) ৰ 'Handbook of Narratology', উলফ শ্মিড (wolf Schmid) ৰ 'Narratology Introduction', ২০১৩ চনত প্রকাশিত গিৰিশ ডি পাৱাৰৰ 'A Narratological Study of Harry Potter Novels: seven type of Narrative', ২০১৮ চনত ডি এছ পদ্মজাৰ 'perspective of narratology vedavyala as a story teller' ইত্যাদি। অসমীয়া ভাষাত উপেন্দ্রনাথ গোস্বামীৰ 'ভাষা বিজ্ঞান', ফনীন্দ্রনাৰায়ণ দত্ত বৰুৱাৰ 'প্রয়োগ ভাষাবিজ্ঞান' ইত্যাদিত কথন বিজ্ঞানৰ কিছু আলোচনা আছে যদিও এই বিষয়ৰ গৱেষণা এতিয়াও চালুকীয়া অৱস্থাতে আছে।

০.৭ প্রমেয় ঃ এই অধ্যয়নৰ প্রাক্-কল্পনা এনেধৰণে কৰা হৈছে—১) ৰুদ্রাণী শর্মাৰ উপন্যাসৰ কথনশৈলী স্বকীয় বিশেষত্বপূর্ণ ২) দমিতাৰ দস্তাবেজৰ কথন শৈলী নিষ্পেষনৰ ছবি বাস্তৱ জীৱনৰ প্রেক্ষাপটতো সত্য বুলি প্রতিপন্ন কৰাৰ বাবে উপযোগী। ৩) উপন্যাসখনৰ কথনৰীতিক কথোপকথন শৈলীয়ে প্রভাৱিত কৰিছে ।

১.০ কথনবিজ্ঞানৰ আধাৰত দমিতাৰ দস্তাবেজৰ কথন শৈলীৰ বিশ্লেষণ ঃ

১.১ দমিতাৰ দস্তাবেজৰ বিষয় উপস্থাপনৰ কৌশল ঃ উপন্যাস বাস্তৱ জীৱন আধাৰিত সাহিত্য। বাস্তৱ জীৱনত নিজৰ ওপৰত হোৱা ধর্ষনৰ দৰে অন্যায়ৰ বাবে নাৰী নিজেই জগৰীয়া হয়, অস্পৃশ্য হয়, সমাজে তেওঁৰ পৰা সকলো অধিকাৰ কাঢ়ি লৈ যায়। ধর্ষনকাৰীৰ প্রতি সমাজ মৌন। এই সমাজ পুৰুষতান্ত্রিক সমাজ। পুৰুষতান্ত্রিকতাৰ এই প্রশ্চাৎপটৰ শিপা ইমানেই গভীৰলৈ শিপাই আছে যে নাৰীৰ (আনষ্ঠানি উচ্চ শিক্ষাৰে শিক্ষিতৰো) মুখ নিসৃত কথাবোৰো এই পুৰুষতন্ত্র বাদৰেই একো একোটা শ্লোগানৰ দৰে হৈ পৰিছে। সমাজৰ এনে প্রেক্ষাপটতেই দমিতাৰ

দস্তাবেজৰ কাহিনীটো সৃষ্টি হৈছে আৰু আগবাঢ়িছে।

এই কাহিনীটো কথনৰ বাবে ঔপন্যাসিকাই কিছুমান কৌশল অৱলম্বন কৰিছে। সেই কৌশলসমূহৰ ভিতৰত উল্লেখযোগ্য কেইটামান হ'ল—

(১) **অধ্যায় বিভাজন** - ঘটনা অনুযায়ী উপন্যাসখন ৩৭ টা অধ্যায়ত বিভক্ত। অধ্যায় অনুযায়ী গত সলাই সলাই কাহিনীয়ে গতি লাভ কৰিছে। যেন নৃত্যৰ এটা ভংগীমাৰ পৰা আন এটা ভংগীমালৈ সলোৱা একোটা নতুন মোৰ। পার্থ আৰু পাঞ্চালীৰ মাজত হোৱা জীৱন সম্পর্কীয় কথোপকথনেৰে কাহিনীৰ শুভাৰম্ভ ঘটিছে— *জীৱনটো মাত্ৰ এন্টাৰটেইনমেন্ট নহয় পার্থ* ২য় অধ্যায়ত পাঞ্চালীৰ পৰিচয় প্ৰকাশ পাইছে— লীলাকান্ত হাজৰিকা '*মৰনৈ প্ৰাথমিক বিদ্যালয়*'ৰ শিক্ষক। পুতেক প্ৰশান্তই উগ্ৰপন্থা গ্ৰহণ কৰাৰ অযুহাতত চৰকাৰী সেনাই ১৩ বছৰীয়া জীয়েকক ধৰ্ষণ কৰিছে। জীয়েকজনী পাঞ্চালী। কাহিনীৰ বৰ্ত্তমানত পাঞ্চালী গুৱাহাটী বিশ্ববিদ্যালয়ৰ বুৰঞ্জী বিভাগৰ ছাত্ৰী। চতুৰ্থ অধ্যায়টি আৰম্ভ হৈছে হেমাংগ বিশ্বাসৰ এটি কবিতাৰে— *কোনোবা এদিন তাই আহিছিল/ দুচকুত তাইৰ হৰিণ মাতৃৰ ভয়।* —ধৰ্ষিতা নাৰীৰ অসহায়তাৰ বৰ্ণনা সাহিত্যৰ পাততে কিদৰে আছে তাৰ কথন কথোপকথনৰ মাজেৰে ইয়াত কৰা হৈছে। ষষ্ঠ অধ্যায়ত পৰীক্ষাৰ শেষত পাঞ্চালীয়ে কি কৰিব তাৰ পৰিকল্পনা কৰিছে। সেই পৰিকল্পনাৰ বিষয়ে তাই মিতালী, পৰিস্মিতা, বৰ্ণালী, ৰাগিনীহঁতৰ লগত আলোচনা কৰিছে। ৭ম অধ্যায়ত পাঞ্চালীৰ পেহীয়েকৰ জীয়েক ৰীণা আৰু গাঁও সম্বন্ধীয় পেহীয়েক সুমলা আৰু তেওঁৰ জীয়েক বকুলৰ প্ৰসংগ অৱতাৰণা কৰা হৈছে। ৰীনাক তাইৰ দৰিদ্ৰতাৰ সুযোগ লৈ দুজনী ছোৱালীৰ বাপেক ৰমেনদাই দামী মোবাইল ফোন উপহাৰ দিছে। অসৎ কামনাৰে বকুলহঁতৰ ঘৰলৈ গাঁৱৰ মতা মানুহৰ সোঁত বৈছে। পাঞ্চালীৰ মাকৰ ভাষাত *-গাঁওখনেই নষ্ট কৰি দিছিল বকুলজনীয়ে।* মাকৰ পিচৰ প্ৰজন্মৰ নাৰী পাঞ্চালীয়ে কিন্তু প্ৰতিবাদ কৰিলে— *বকুল বায়ে মতা মানুহবোৰৰ ঘৰে ঘৰে ফুৰিবলৈ গৈছিল নেকি? আৰু যদি গাঁওখন নষ্টই কৰিছিল সেই মতা মানুহবোৰেও গাঁও এৰি গুচি যাব লাগিছিল।* তাই মহিলাসকলৰ প্ৰতি অভিযোগ আনিছে যে তেওঁলোকে 'নিজৰ মতাবোৰক বলে নোৱাৰি, দুৰ্বল মানুহগৰাকীক গাঁৱৰ পৰা যাবলৈ বাধ্য কৰালে।' শেষৰ অধ্যায়ত তথাকথিত ভদ্ৰমহিলা পার্থৰ মাকে উত্তৰ প্ৰজন্মৰ প্ৰগতিশীল নাৰী পাঞ্চালীক তাই ধৰ্ষনৰ বলী হোৱা কথাটোক লৈ বিব্ৰত অৱস্থালৈ থেলি দিছে -— *ইউ আৰ এ ৰেপ ভিক্তিম অৰ এনী আদাৰ মিছবিহেভিয়াৰ?*

(২) **কথক** —সকলো কাহিনীৰে এজন কথক থাকে। কথকজন কেতিয়াবা এক প্ৰত্যক্ষ চৰিত্ৰ (চৰিত্ৰবদ্ধ কথক) হৈ থাকে আৰু কেতিয়াবা পৰোক্ষ ব্যাখ্যাকাৰী (বহিঃ কথক) চৰিত্ৰ ৰূপে থাকে। দমিতাৰ দস্তাবেজত থকা চৰিত্ৰবদ্ধ কথকৰ কথন বেছি হোৱা বাবে ই প্ৰায় কথোপকথনমূলক হৈ পৰিছে। উদাহৰণ— *"নেলাগে দিয়া। মা ব্যস্ত আছে" বুলি পাঞ্চালীয়েও সমর্থন জনালে। "যা তেতিয়াহ'লে" বুলি পার্থই সিহঁতক পদুলিলৈকে আগবঢ়াই দিলে।* বহিঃ কথক দুইধৰণৰ— অনুপস্থিত আৰু অদেখা চৰিত্ৰৰ দ্বাৰা কথন —*হঠাতে সি ক'লে তোমাৰ নেইল পলিচটো ভাল লগা নাই। কালাৰটো একদম তেলীয়া লাগিছে। (২০)* আৰু উপন্যাসিকে নিজে কৰা কথন। উপন্যাসৰ ক্ষেত্ৰত ঔপন্যাসিকৰো এক কথকতা দেখা যায়। সেই কথকতাৰ মাজত তেওঁ নিজৰ ভাৱাদর্শ বা জীৱন দর্শনৰ বিষয়ে প্ৰকাশ কৰাৰ সুযোগ পায়— *ছোৱালীৰ জীৱনবোৰ আঁত হেৰোৱা সূতাৰ দৰে, এফালৰ পৰা জঁট ভাঙিলে আন এটা ফালৰ পৰা লাগি আহে। ঘৰৰো নহয়, পৰৰো নহয়, উভলা শিপাৰ দৰে জীৱন।...বহু নির্য্যাতনৰ কথাই পোহৰলৈ নাহে। সামাজিক পৰম্পৰা আৰু ভৱিষ্যতৰ কথা লক্ষ্য ৰাখিয়েই এইবোৰ কথা গোপনে ৰখা হয়। এই গোপন কথাৰ গধুৰ ভাৰ নীৰৰে বৈ থাকে নাৰীয়ে। কালৰ পিছত কাল জুৰি। (৯৪)*

(৩) **কথন** — কথকে কথন কার্য্য সমাধাৰ কৰে। এই কার্য সাধাৰণতে পাঁচ প্ৰকাৰৰ —

১) কথনৰ বর্ণনাত্মক কার্য (the narrative function) ঃ কথন বর্ণনাত্মক হ'ব পাৰে। এনে বর্ণনাত্মক কথন ঔপন্যাসিকে নিজে কৰা বর্ণনা হ'ব পাৰে—*ৰাগিনী ৰাতিপুৱা যাবগৈ। ৰঞ্জনে থৈ আহিব ঘৰত।* (পৃ. ২৮) , *অৱান্তিকাৰ মাজে মাজে প্ৰচণ্ড খৰ উঠে।* (৪৬) *পুতেকৰ প্ৰসংশাত পঞ্চমুখ হৈ থাকে পৰিয়ালটো*—ইত্যাদি। অথবা, চৰিত্ৰৰ দ্বাৰা কৰা বর্ণনা হ'ব পাৰে — *কেৱল চিট বাছৰ হেচা-থেলাৰ সুৰুঙাতে নহয়, নিজৰ ঘৰতেই বহু ছোৱালী ধৰ্ষণৰ বলী হয়। পৰিস্মিতাৰ একস্পার্ট কমেন্ট- 'জেণ্ডাৰ বায়াচ, বুইছ, জেণ্ডাৰ বায়াচ।'* অনুপস্থিত চৰিত্ৰৰ দ্বাৰাও কথনৰ বর্ণনাত্মক কার্য্য সমাধা কৰা হয়— the greatest pleasure in life is to defeat your enemie, to chase

them before you, to rob them of their wealth...।

২) **নির্দেশকৰণ** (The directing function) **কার্য ঃ** নির্দেশসূচক বার্ত্তা প্রেৰণৰ মাজেৰও কাহিনীৰ কথন কৰা হয়। দমিতাৰ দস্তাবেজত তাৰ উদাহৰণ এনেধৰণৰ— *তহঁতে য'ত যি ঘটনা শুন, দেখ বা টিভি, ইন্টাৰনেটত পাৱ সেইবোৰো মোক দিবি।* (পৃ. ২৬) *তোমালোকে দেৰিকৈ ঘৰ সোমাব নোৱাৰিবা। ...চিঞৰ -বাখৰ কৰা, গান শুনা এইবোৰ নহ'ব।* (৩৯)— এনে ধৰণৰ নির্দেশবোৰে বৈচিত্র্যময় ঘটনাবস্তুক সংযোগ কৰি কাহিনী আগবঢ়াই নিছে।

৩) **যোগাযোগমূলক** (The communication function) **কার্য ঃ** যোগাযোগমূলক প্রকার্য্যৰ জৰিয়তে ঔপন্যাসিকে পাঠকৰ লগত কথকৰ প্রত্যক্ষ সম্বন্ধ স্থাপিত কৰিছে— *তোৰ মনত আছেনে মালিগাঁৱত যে বোমা বিস্ফোৰণ হৈছিল?... আৰু তই সেইদিনা মাকে এঘাৰটা প্রশ্ন কৰিছিলি-কোনে কৰিছে, কিয় কৰিছে, টার্গেট কোন, মোটিভ কি?* (পৃ.২৭)

৪) **প্রমাণ বা সাক্ষ্যমূলক** (The testimonial function) **কার্য ঃ** বিৱৰণক শুদ্ধ আৰু সত্য প্রমানিত কৰিবৰ বাবে কথনে মাজে মাজে প্রমাণমূলক কার্য সম্পন্ন কৰে— *সদায় দ্বিতীয় শ্রেণীৰ নাগৰিক হিচাপেই নাৰীয়ে জীৱন কটাবলগীয়া হয়। নিজকে যিমান সম্পদশালী বুলি প্রমাণ নকৰক কিয়ঙ্গ* এই কথা প্রমাণ কৰিবৰ বাবে ঔপন্যাসিকাই সাহিত্য (সাধুকথা, কবিতা, গল্প, উপন্যাস ইত্যাদি), প্রতিবেন, বুৰঞ্জীৰ তথ্য কাহিনীৰ মাজত কথন কৰিছে।

৫) **বিচাৰমূলক বা ভাৱাদর্শমূলক** (The ideological function) **কার্য ঃ** কথন কৰি থকা কাহিনীক সবল কৰি তুলিবলৈ নানান ভাৱাদর্শমূলক দৃষ্টিভংগী সংযোগ কৰা হয়— *সম্পর্কৰ বিভিন্ন জটিলতাৰ মাজেতো তাই আন্তৰিকতাত বিশ্বাস কৰে। আন্তৰিকতাই অৱলম্বন হৈ উঠক সেইটোৱে তাই বিচাৰে।* (পৃ.২২) *নাৰীৰ নিজৰ জৰায়ুৰ ওপৰত অধিকাৰে নাৰী সম্পর্কীয় সমস্যাৰ সমাধান আনি দিব। (৬৩) মণিমালা সম্পর্কে অবিনাশে যেতিয়া ইমান তল খাপৰ মন্তব্য কৰিছিল তেতিয়াই তাই জানিব লাগিছিল যে উচ্চ শিক্ষিত হ'লেও মহিলাৰ প্রতি তিলমানো সন্মান নাই অবিনাশৰ।* (৮১),

উল্লেখযোগ্য যে এই সকলো ধৰণৰ প্রকার্য্যই প্রকাশ্য বা প্রত্যক্ষ (Explicit) অথবা অনুমিত বা পৰোক্ষ (Implicit) যিকোনো কথনৰীতিৰ হ'ব পাৰে।

১.২ **দমিতাৰ দস্তাবেজৰ প্রেক্ষাপট সৃষ্টি**—প্রেক্ষাপট সৃষ্টিৰ মাজেৰেও কথনে তাৰ কার্য সমাধা কৰে। ঔপন্যাসিকৰ নিজৰ ভাষাৰেই দমিতাৰ দস্তাবেজ 'নাৰীৰ জীৱন মুচৰি দলিয়াই দিয়াৰ এক কাহিনী'। সেই কাহিনীৰ কথনৰ বাবে সমধর্মী ঘটনাৰে ঔপন্যাসিকাই এক প্রেক্ষাপট তৈয়াৰ কৰি কাহিনীক গভীৰতা প্রদান কৰিছে। সেই প্রেক্ষাপট সৃষ্টিৰ মাধ্যম ভিন ভিন। তাৰে কেইটামান এনেধৰণৰ—

(ক) **সামাজিক বিচাৰধাৰা নির্ভৰ ঃ** পাঞ্চালীৰ মাকে তাইৰ ধর্ষণৰ কথা গাপ দি থ'ব লগা হৈছে। পাঞ্চালীয়েও কোনো প্রশ্ন নকৰাকৈ মাকৰ নির্দেশ মর্মে সেই কথা বুকুত লুকুৱাই ৰাখিছিল। 'নক'বি, এই কথা তই কাকো নক'বি। সর্বনাশ হ'ব তোৰ। কবৰ দি তৈ দে সেই ৰাতিৰ ঘটনা।" ধর্ষণকাৰীৰ কোনো ভয় নাই। সামাজিক বিচাৰধাৰা তাৰ ৰক্ষা কবচ। ধর্ষিতা আৰু তেওঁৰ পৰিয়ালে সামাজিক বিচাৰধাৰাৰ বাবেই সেইকথা লুকুৱাই ৰাখি ধর্ষনকাৰীক ৰক্ষণাবেক্ষণ দিব। অতি হাস্যকৰ ধৰণেৰে ধর্ষণকাৰীপুৰুষৰ কামনা চৰিতার্থ কৰাৰ সপক্ষে সমাজৰ অলেখ যুক্তি। আনফালে ধর্ষিতা নাৰী গৰাকীৰ বিৰুদ্ধে অলেখ অভিযোগ। অথবা, 'ছোৱালী গুৱাহাটীত থাকিলে গেলিব।' (৩৭) এনেদৰে উপন্যাখনত সামাজিক বিচাৰধাৰাৰ অলেখ অ-সম আৰু অমানবীয় দিশৰ প্রকাশ ঘটিছে । এই প্রকাশ যি কথনৰ মাজেৰে কৰা হৈছে সেই কথন প্রয়োজন অনুসাৰে কেতিয়াবা উদাত্ত, কেতিয়াবা কাৰুণ্যৰে সিক্ত অথবা, কেতিয়াবা তীব্র শ্লেষেৰে ভৰা।

(খ) **যুদ্ধ ঃ** উগ্রপন্থী বিচৰা স্বদেশৰ চৰকাৰী সৈন্যই তেৰ বছৰীয়া পাঞ্চালীক ধর্ষণ কৰি পেলাই থৈ গৈছে। মানৰ আক্রমনত অলেখ অসমীয়া নাৰীক, ভাৰত পাক দেশ বিভাজনত হিন্দু আৰু শিখে মুছলমান নাৰীক, মুছলমানে হিন্দু আৰু শিখ নাৰীক ধর্ষণ কৰিছে। এয়া যেন সমাজে স্বীকাৰ কৰি লোৱা যুদ্ধৰ পৰম্পৰাগত অনীতিহে। ঔপন্যাসিকাই সঠিক ভাবেই Genghis khan -এ তেওঁৰ সভাসদক কোৱা কথাৰ উদ্ধৃতি উপন্যাসখনত দিছে— 'The greatest pleasure in life is to ravage their wives and daughters.'

(গ) **সাহিত্য ঃ** পূর্বে ৰচিত সাধুকথা, উপন্যাস, গল্প, কবিতা ইত্যাদিৰ পুনৰ কথনৰ জৰিয়তেও প্রেক্ষাপট সৃষ্টি

কৰা হৈছে। সাধুকথাত থকা পানীপ্ৰাৰ্থী ৰাক্ষসটোৱে ৰাজকুঁৱৰীক লুকুৱাই থ'বলৈ ঠাই নাপাই টুকুৰা টুকুৰ কৰি খাই পেলালে। ধৰ্ষণকাৰীৰ ৰূপত সেই ৰাক্ষস আজিও বিদ্যমান। অমৃতা প্ৰীতমৰ 'দ্য স্কেলিটন' নামৰ উপন্যাসখনত দেশ বিভাজনত ধৰ্ষণৰ বলী হোৱা নাৰীৰ কাহিনীৰ লগত পাঞ্চালীৰ কাহিনীৰ মিল আছে। ৰজনীকান্ত বৰদলৈৰ 'মনোমতী' উপন্যাসৰ পদুমী চৰিত্ৰটি মানৰ ধৰ্ষণৰ বলী হোৱা চৰিত্ৰ। লক্ষ্মীনাথ বেজবৰুৱাৰ 'কাশীবাসী' মানৰ আক্ৰমণত সৰ্ব্বস্ব হেৰুওৱা এগৰাকী নাৰীৰ কাহিনী। শ্বিলঙৰ পটভূমিত ৰচিত হেমাংগ বিশ্বাসৰ এটি কবিতাৰে ঔপন্যাসিকাই চতুৰ্থ অধ্যায়টি আৰম্ভ কৰিছে—সিহঁতৰ পুঞ্জীৰ কাষতে / মিলিটাৰীয়ে ছাউনী পাতিছে — য'ত কবিতাটোৰ নায়িকাক মিলিটাৰীয়ে ধৰ্ষণ কৰিছে।

(ঘ)দৈনন্দিন ঘটনাক্ৰম-পৰিবেশৰ বিৱৰণেৰেও প্ৰেক্ষাপট সৃষ্টি কৰা হয়। দমিতাৰ দস্তাবেজত আছে—

পৰিস্মিতাক এজন মতা মানুহে চিটি বাছত অপ্ৰয়োজনীয় ভাবে ঠেলিছে।

২.০ **গৱেষণীয় সম্ভাৱনা** ঃ কথনবিজ্ঞানৰ বিভিন্ন তত্ত্বৰ আধাৰত বিস্তৃতভাবে কৰা গৱেষণাই দমিতাৰ দস্তাবেজৰ বিষয় আৰু ভাষাশৈলীক আলোকিত কৰি পাঠকৰ বাবে অধিক আকৰ্ষনৰ সৃষ্টি কৰিব পাৰে। ৰুদ্ৰাণী শৰ্মাৰ সমূহ উপন্যাসৰ কথন শৈলীও এক উৎকৃষ্ট গৱেষণীয় বিষয়। অসমীয়া উপন্যাস সাহিত্যৰ কালানুক্ৰমিক স্তৰ অনুসৰি কথন শৈলীৰ বিশ্লেষনেৰে অসমীয়া ভাষাশৈলীৰ এক ঐতিহাসিক আলোচনা হ'ব পাৰে। একেদৰে দুচোৱা বা অধিক সময়ৰ কথন শৈলীৰ গৱেষণাৰে তুলনামূলক অধ্যয়নৰো এখ বহল ক্ষেত্ৰ আছে। উপন্যাসৰ দৰে চুটিগল্প, নাটক ইত্যাদিৰ কথন শৈলীৰ লগতে ধৰ্ম, ছৱি ইত্যাদিৰ কথনো একো একোটা উৎকৃষ্ট গৱেষণীয় বিষয়। কথনবিজ্ঞানৰ তত্বৰ আধাৰত কোনো এখন গ্ৰন্থৰ কথনৰ অধ্যয়নে কেৱল বিষয়বস্তুকেই পৰিস্কাৰ নকৰে, সমাজ আৰু জীৱনক ভালকৈ বুজাতো সহায় কৰে। মনোৰাগ শাস্ত্ৰত কথনবিজ্ঞানৰ গৱেণালব্ধ জ্ঞানে বিশেষ সহায় কৰিব পাৰে। এতেকে দমিতাৰ দস্তাবেজৰ দৰে প্ৰতিখন উপন্যাস, প্ৰতিটো লেখা, প্ৰত্যেক কলাৰে কথন কৌশলৰ গৱেষণাৰ যথেষ্ট থল আছে।

উপসংহাৰ ঃ ওপৰৰ আলোচনাৰ পৰা আমি জানিলোঁ যে কথনৰ বহুতো কৌশল আছে। এই কৌশলবোৰ বিষয়, বক্তা-শ্ৰোতা, পৰিবেশ নিৰ্ভৰ। উপযুক্ত কৌশলৰ প্ৰয়োগে এজন লেখকৰ লেখাক সাৰ্থক কৰি তোলে। একেটা লেখাতে নানান ধৰণৰ কৌশলৰ প্ৰয়োগ হ'ব পাৰে। উপন্যাসৰ দৰে দীঘল ৰচনাৰ ক্ষেত্ৰত কথনে বিচিত্ৰতাৰ দাবীও কৰে। বিষয় প্ৰকাশৰ উপযোগী বিভিন্ন কথন কৌশলৰ প্ৰয়োগ কৰি ঔপন্যাসিকা ৰুদ্ৰাণী শৰ্মাই দমিতাৰ দস্তাবেজক এক বিশেষ মাত্ৰা প্ৰদাণ কৰিছে। বিষয়ৰ দাবী অনুযায়ী তেওঁ এটা কৌশলৰ পৰা আন এটা কৌশললৈ জাঁপ মাৰিছে। এই জাপবোৰ ইমান মসৃণ যে পাঠকে কোনো জোঁকাৰণি অনুভৱ কৰা নাই। কাহিনীৰ গতি ক'তো চিগি যোৱা নাই বা বিঘ্নিত হোৱা নাই। এনে কৰোঁতে বৰ্ননাধৰ্মিতা মাজে মাজে নাট্যধৰ্মী হৈ উঠিছে। পাঠকৰ আমনি দূৰ হৈছে। পাঠক বিষয়ৰ গভীৰলৈ সোমাই গৈছে। এই কৌশলবোৰে পাঠকৰ ওচৰত 'নাৰীৰ জীৱন মুচৰি দলিয়াই দিয়াৰ কাহিনী'ক অধিক প্ৰাণৱন্ত কৰি তুলিছে। ❑

চমু গ্ৰন্থপঞ্জী ঃ

ক) গৱেষণা গ্ৰন্থ ঃ দেৱী, মৌচুমী। কথনবিজ্ঞানৰ আধাৰত অৰূপা পটংগীয়া কলিতাৰ উপন্যাসৰ কথন ৰীতিৰ বিশ্লেষণঃ নিৰ্বাচিত উপন্যাসৰ বিশেষ প্ৰসংগত।। এম্ ফিল্ থেচিচ। গুৱাহাটী বিশ্ববিদ্যালয়। ২০১৯-২০।

খ) অসমীয়া গ্ৰন্থ ঃকোঁৱৰ, অৰ্পণা আৰু অনুৰাধা শৰ্মা (সং আৰু সম্পা)। ভাষাবিজ্ঞান পাৰিভাষিক কোষ। অসমীয়া বিভাগ, ডিব্ৰুগড় বিশ্ববিদ্যালয়, ডিব্ৰুগড়-৮, প্ৰথম্ প্ৰকাশঃ জানুৱাৰী ২০০৮ শৰ্মা, ৰুদ্ৰাণী । দমিতাৰ দস্তাবেজ। জ্যোতি প্ৰকাশন, গুৱাহাটী-১, প্ৰথম প্ৰকাশঃ অক্তোবৰ ২০১৪

গ) ইংৰাজী গ্ৰন্থঃ Abbott, H.P. The cambridge Introduction to Narrative. cambridge universsity press, cambridge2002 Bal, Mieke. Narratology: Introductionto the theory of Narrative. University of Toronto press, Toronto, 2nd edition, 1997

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

প্রবন্ধ

হোমেন বৰগোহাঞিৰ ‘হালধীয়া চৰায়ে বাও ধান খায়’ উপন্যাসত নিম্নবর্গ চেতনা ঃ এক আলোচনা

দীপক দাস

সহকাৰী অধ্যাপক (অংশকালীন)
অসমীয়া বিভাগ
দুধনৈ মহাবিদ্যালয়
ডাক ঃ দুধনৈ, অসম
পিন ঃ ৭৮৩১২৪
ম'বাইল ঃ ৯১০১৯৮৪৬৯২
ই-মেইল ঃ dipak.das4343@gmail.com

সংক্ষিপ্ত সাৰ ঃ

সমাজ এখনৰ মূল শ্রেণী দুটা— উচ্চ বর্গ আৰু নিম্ন বর্গ। উচ্চ বর্গ শাসন কর্তা আৰু নিম্নবর্গ শোষিত, বঞ্চিত আৰু অৱহেলিত লোকসকল। উচ্চ বর্গই নিজৰ স্বার্থৰ বাবে সদায় নিম্নবর্গৰ ওপৰত অন্যায়-অত্যাচাৰ কৰি সমাজ এখনৰ দুর্বল শ্রেণীৰূপে পৰিস্ফুট কৰিবলৈ প্রয়াস কৰে। সাধাৰণতে নিম্নবর্গ শ্রেণীটোৱে পদে পদে শোষিত, বঞ্চিত হৈ নিজৰ অধিকাৰৰ বাবেও মাত মাতিবলৈ সাহ নকৰে। যাৰ ফলস্বৰূপে আপোনঘাতী হ'বলৈও অকণো কুণ্ঠাবোধ নকৰে। অৱশ্যে কেতিয়াবা কেতিয়াবা বিদ্রোহী হৈ উঠাও পৰিলক্ষিত হয়। অসমীয়া সাহিত্যত সৃষ্টিশীল সাহিত্য ৰচনা হোৱা সময়ৰে পৰা এনেধৰণৰ সমাজ জীৱনৰ প্রতিফলনেই সৰহ। তাৰে এটি প্রধান বিভাগ হৈছে উপন্যাস। উপন্যাসসমূহে সমাজৰ এই শ্রেণী দুটাৰ জীৱনধাৰা প্রতিফলিত কৰি পাঠকৰ আগত দাঙি ধৰে। ফলস্বৰূপে বাস্তৱ সমাজৰ প্রকৃত স্বৰূপটো জনসাধাৰণৰ মাজত পৰিস্ফুট হৈ উঠে। হোমেন বৰগোহাঞিৰ ‘হালধীয়া চৰায়ে বাও ধান খায়’ এনে ভাৱধাৰাৰ এটি উৎকৃষ্ট উপন্যাস। উচ্চ বর্গৰ শাসন ব্যৱস্থাত আৱদ্ধ হৈ কৃষক এজনৰ জীৱনলৈ কেনেধৰণৰ বিপদ নামি আহিছে তাৰ সুন্দৰ প্রতিফলন ঘটিছে। আমাৰ এই অধ্যয়নত ‘হালধীয়া চৰায়ে বাও ধান খায়’ উপন্যাসখনত প্রতিফলিত হোৱা নিম্নবর্গ চেতনাৰ বিষয়ে অধ্যয়ন কৰা হ'ব

বীজ শব্দ ঃ

কৃষক, চক্রান্ত , দুর্নীতি, দৰিদ্র, নিম্নবর্গ, নিম্নশ্রেণী, প্রশাসনিক, ৰাজনৈতিক, শাসন ব্যৱস্থা।

০.০০ অৱতৰণিকা ঃ

সমাজ এখনৰ সামাজিক, ৰাজনৈতিক, ঐতিহাসিক, অর্থনৈতিক, সাংস্কৃতিক ঘটনাক কেন্দ্র কৰি সমাজৰ প্রকৃত স্বৰূপ উদঙাই দিয়াত সৃষ্টিশীল সাহিত্যৰ ভূমিকা গুৰুত্বপূর্ণ। সাহিত্যৰ তেনে এটি ভাগ হৈছে উপন্যাস। সমাজৰ মানুহৰ ক্রিয়া-প্রতিক্রিয়া, মানসিক স্থিতি সম্পর্কে পাঠকৰ আগত দাঙি ধৰিবলৈ উপন্যাসসমূহ এবিধ অন্যতম মাধ্যম। য'ত সমাজৰ বাস্তৱ ৰূপটো জীৱন্ত হৈ উঠে।

স্বাধীনতা লাভৰ আগত ইংৰাজৰ শাসন কালত যিদৰে শাসন কর্তাই সাধাৰণ জনতাৰ ওপৰত নির্মম অত্যাচাৰ চলাই সর্বস্বান্ত কৰি তুলিছিল, ঠিক সেইদৰে স্বৰাজোত্তৰ কালতো সমাজ এখন দুটা শ্রেণীত অন্তর্ভুক্ত হৈছে— উচ্চ বর্গ আৰু নিম্ন বর্গ। নিম্ন বর্গ শ্রেণীটো উচ্চ বর্গৰ অধীন। উচ্চ বর্গৰ শাসন ব্যৱস্থাৰ মেৰপাকত বন্দী হৈ নিম্ন শ্রেণীটো পদে পদে লাঞ্ছিত হৈ আহিছে। সম-অধিকাৰৰ নীতিটো ইয়াত সম্পূর্ণ ৰূপে খর্ব হৈ গা কৰি উঠিছে দুখন সমাজ ব্যৱস্থা। তাৰে এখন অর্থনৈতিক, ৰাজনৈতিক ক্ষমতাসম্পন্ন শাসন কর্তাৰ ভোগবাদী সমাজ ব্যৱস্থা আৰু আনখন শাসন কর্তাৰ অধীন ৰাজনৈতিক শাসন ব্যৱস্থাৰ হাও-ভাও নুবুজা দৰিদ্র, শোষিত, পদে পদে লাঞ্ছিত, বঞ্চিত হৈ অহা দুর্বল সমাজ ব্যৱস্থা। প্রথম সমাজ ব্যৱস্থাৰ অধীন দ্বিতীয় সমাজ ব্যৱস্থাটো সময়ে সময়ে অৱহেলিত হৈ অহাৰ ফলত কেতিয়াবা কেতিয়াবা বিদ্রোহী হৈ উঠা দেখা যায় যদিও সেয়া স্থায়ী নহয় আৰু কেতিয়াবা সমাজ ব্যৱস্থাৰ প্রতি অতিষ্ঠ হৈ আপোনঘাতী হোৱাও পৰিলক্ষিত হয়। এনে সমাজ বাস্তৱতাক কেন্দ্র কৰিয়েই অসমীয়া সাহিত্যত বহুতো সৃষ্টিশীল সাহিত্যৰ ৰচনা হৈছে।

অসমীয়া সাহিত্য জগতত সমাজ বাস্তৱতাৰ আধাৰত সাহিত্য ৰচনা কৰা সকলৰ ভিতৰত হোমেন বৰগোহাঞিৰ নাম উল্লেখনীয়। তেওঁ উপন্যাসসমূহত সমাজ জীৱনৰ অর্থনৈতিক আৰু ৰাজনৈতিক সংঘাতক কলাত্মক ৰূপত উপস্থাপন কৰি গ্রাম্য সমাজ জীৱনৰ চিত্রক বাস্তৱায়িত কৰি তুলিছে আৰু লগতে ৰাজনৈতিক শাসন ব্যৱস্থাত আধিপত্য বিস্তাৰ কৰা আদর্শহীন, দুর্নীতিপৰায়ণ নেতা-পালিনেতা সকলৰ বাস্তৱ স্বৰূপ উদঙাই দিছে। তেওঁৰ প্রকাশিত উপন্যাস কেইখন হ'ল—সুবালা (১৯৬৩), তান্ত্রিক (১৯৬৭), কুশীলৱ (১৯৭০), হালধীয়া চৰায়ে বাও ধান খায় (১৯৭৩), পিতা-পুত্র (১৯৭৫), তিমিৰ তীর্থ (১৯৭৫), অস্তৰাগ (১৯৮৬), সাউদৰ পুতেকে নাও মেলি যায় (১৯৮৭), মৎস্যগন্ধা (১৯৮৭), নিঃসংগতা (২০০০), বিষন্নতা (২০০২), এদিনৰ ডায়েৰি (২০০৩) আদি।

অসমীয়া উপন্যাস সাহিত্যৰ এগৰাকী তেজস্বী ঔপন্যাসিক হোমেন বৰগোহাঞিদেৱৰ উপন্যাসত নিম্নবর্গীয় চেতনা বিশেষ লক্ষণীয়। সমাজ বাস্তৱতা তেওঁৰ উপন্যাসৰ অন্যতম বিশেষত্ব। তেওঁৰ এটি উৎকৃষ্ট মানৰ সামাজিক উপন্যাস 'হালধীয়া চৰায়ে বাও ধান খায়'। উপন্যাসখনত সমসাময়িক সমাজ জীৱনৰ নিম্ন, অসহায়, নিচলাশ্রেণীৰ লোকৰ দুৰাৱস্থাৰ চিত্র সুন্দৰকৈ উপস্থাপন কৰিছে য'ত তাৰ কাৰণ স্বৰূপে প্রকাশ পাইছে ৰাজনৈতিক শাসন ব্যৱস্থা। উপন্যাসখনত কৃষক ৰসেশ্বৰৰ দৰিদ্রতা আৰু ৰাজনৈতিক শাসন ব্যৱস্থাৰ ফলত হোৱা শোচনীয় অৱস্থা কিদৰে প্রতিফলিত হৈছে সেই সম্পর্কে আমাৰ "হোমেন বৰগোহিঞৰ 'হালধীয়া চৰায়ে বাও ধান খায়' উপন্যাসত নিম্নবর্গ চেতনা ঃ এক আলোচনা" শীর্ষক গৱেষণা পত্রখনত আলোচনা কৰিবলৈ প্রয়াস কৰা হ'ব।

০.০১ গৱেষণাৰ উদ্দেশ্য ঃ

হোমেন বৰগোহাঞিৰ 'হালধীয়া চৰায়ে বাও ধান খায়' উপন্যাসখনত গ্রাম্য সমাজ জীৱনৰ দুখীয়া দৰিদ্র কৃষক, শ্রমিক আদি নিম্ন শ্রেণীৰ লোকসকলৰ দুখ-দুর্দশা আৰু সমাজৰ ৰাজনৈতিক ক্ষমতাসম্পন্ন লোকসকলে নিম্নবর্গীয় লোকসকলৰ ওপৰত চলোৱা নির্মম অত্যাচাৰ, ব্যভিচাৰ আদি কিদৰে প্রতিফলিত হৈছে সেই সম্পর্কে অধ্যয়ন কৰাই আমাৰ গৱেষণা পত্রখনৰ প্রধান উদ্দেশ্য।

০.০২ গৱেষণাৰ পৰিসৰ ঃ

"হোমেন বৰগোহাঞিৰ 'হালধীয়া চৰায়ে বাও ধান খায়' উপন্যাসত নিম্নবর্গ চেতনা ঃ এক আলোচনা" শীর্ষক গৱেষণা পত্রখনৰ পৰিসৰৰ ভিতৰত দৰিদ্র কৃষক এগৰাকীয়ে ৰাজনৈতিক শাসন ব্যৱস্থাৰ বলি হৈ কিদৰে সর্বহাৰা হৈছে সেই দিশসমূহ সামৰি লোৱা হৈছে।

০.০৩ গৱেষণাৰ পদ্ধতি ঃ

"হোমেন বৰগোহাঞিৰ 'হালধীয়া চৰায়ে বাও ধান খায়' উপন্যাসত নিম্নবর্গ চেতনা ঃ এক আলোচনা" শীর্ষক গৱেষণা পত্রখন প্রস্তুত কৰোঁতে বিশ্লেষণাত্মক আৰু বর্ণনাত্মক পদ্ধতিৰ সহায় লোৱা হৈছে।

০.০৪ গৱেষণাৰ উৎস ঃ

গৱেষণা পত্রখন প্রস্তুত কৰোঁতে মুখ্য আৰু গৌণ উৎসৰ পৰা তথ্য আহৰণ কৰা হৈছে। মুখ্য উৎস হিচাপে মূল গ্রন্থ আৰু গৌণ উৎস হিচাপে বিভিন্ন প্রাসংগিক গ্রন্থ আদিৰ সহায় লোৱা হৈছে।

১.০০ মূল বিষয়ৰ আলোচনা ঃ

১.০০ উপন্যাসখনৰ মূল কাহিনীৰাজি ঃ

হোমেন বৰগোহাঞিৰ হালধীয়া চৰায়ে বাও ধান খায় উপন্যাসখনত সমাজ এখনৰ দুখীয়া-দৰিদ্র আৰু

ৰাজনৈতিক ক্ষমতাসম্পন্ন শ্রেণী দুটাৰ মাজত হোৱা দ্বন্দ-সংঘাতৰ চিত্র সুন্দৰকৈ প্রকাশিত হৈছে। এজন কৃষকৰ অসহায়, দৰিদ্রতাৰ অৱস্থাৰ চিত্র জীৱন্ত হৈ উঠিছে। ৰাজনৈতিক শাসন ব্যৱস্থাৰ ফলতেই যে সময়ে সময়ে নিম্ন বর্গৰ শ্রেণীৰ লোকসকলৰ জীৱনত নানা বিপর্যয় নামি আহিছে। হাকিম, কেৰাণী, মণ্ডলহঁতৰ দুর্নীতিপৰায়ণৰ চিত্রও উপন্যাসখনত নাটকীয় ৰূপত বাস্তৱায়িত হৈ উঠিছে। মূল কাহিনীভাগ চমুকৈ এনেধৰণৰ—

ৰসেশ্বৰ এজন কৃষক। তাৰ জীৱনৰ সম্পত্তি বুলিবলৈ তাৰ পত্নী, সাতোটা ল'ৰা-ছোৱালী আৰু এপুৰা মাটি। বহুদিন ধৰি বৰষুণ নোহোৱাত মাটিডৰা খৰাং হৈ গৈছে যাৰ ফলত মাটিডৰা হাল বাব পৰা অৱস্থাত নাই। কিন্তু হঠাৎ এদিন অর্থাৎ শাওণৰ তৃতীয় দিনৰ পৰা বৰষুণ দিবলৈ আৰম্ভ কৰে। তেতিয়া ৰসেশ্বৰৰ মন আনন্দত উৎফুল্লিত হৈ উঠে আৰু ৰাতিপুৱাই হাল বাবলৈ যায়। কিন্তু তাত সি এটা বেলেগ পৰিস্থিতিৰ সন্মুখীন হ'বলগীয়া হয়। পূর্বপুৰুষৰ সময়ৰ সেই মাটিডৰাহেনো তাৰ নহয় সনাতন শর্মাৰহে। সেইবুলি সনাতন শর্মাই তাক খেতি কৰিবলৈ নিষেধ কৰি যায়। পিছত মাটিডৰা ঘূৰাই পোৱাৰ বাবে সি আধি বোর্ডত গোচৰ দিয়ে। কিন্তু আইনৰ বিষয়ৱবীয়া সকলক দান-দক্ষিণা দিবলৈ ধন নথকাত ল'ৰাৰ পঢ়া এৰুৱাই বেলেগৰ ঘৰত চাকৰ খাটিবলৈ দি, হালৰ গৰু বিক্রী কৰি, পত্নীৰ অলংকাৰ বন্ধকত দি টকা যোগাৰ কৰে মাটিডৰা ঘূৰাই পোৱাৰ আশাত। অৱশেষত যিজন লোকৰ বাবে তাৰ জীৱন ধ্বংস প্রায় হৈ গৈছে সেইজন সনাতন শর্মাৰ মধুৰ কথাত ভোল গৈ নির্বাচনী প্রচাৰ চলাইছে অর্থাৎ নিজৰ ফাঁচী-কাঠ নিজেই বহন কৰি লৈ গৈছে।

১.০২ উপন্যাসখনত প্রতিফলিত নিম্নবর্গ চেতনা ঃ

হোমেন বৰগোহাঞিৰ হালধীয়া চৰায়ে বাও ধান খায় উপন্যাসখনত সমাজচেতনাই মুখ্য ভূমিকা গ্রহণ কৰিছে। য'ত ফুটি উঠিছে সমাজ এখনৰ দুখীয়াৰ ওপৰত শোষণ কার্য চলোৱা আদর্শহীন, ভণ্ড সমাজকর্মী আৰু চৰকাৰী বিষয়াৰ দুর্নীতি কার্য। ঔপন্যাসিকে ৰাজনৈতিক শাসন ব্যৱস্থাৰ মাজত থকা দুর্নীতিৰ স্বৰূপ উদঙাই গ্রাম্য সমাজ জীৱনৰ অসহায় লোকৰ কৰুণ গাঁথা বাস্তৱায়িত কৰি তুলিছে। দৰিদ্র কৃষক ৰসেশ্বৰৰ জীৱনৰ কৰুণ পৰিণতি আর্থিক অনাটনৰ মাজত অহা নানা বিপর্যয়ৰ দিশটো সুন্দৰকৈ উপস্থাপন কৰিছে।

কৃষক এজনৰ একমাত্র সম্পত্তি তেওঁৰ মাটিডৰা। মাটিডৰাৰ ওপৰতে নির্ভৰ কৰি জীৱন নির্বাহ কৰিবলগীয়া হয়। উপন্যাসখনত ৰসেশ্বৰেও তাৰ একমাত্র মাটিডৰাৰ ওপৰতে নির্ভৰ কৰি পত্নী আৰু সাতোটা ল'ৰা-ছোৱালীৰ জীৱন ধাৰণ কৰি আহিছে। কিন্তু এদিন তাৰ সেই মাটিডৰাও চক্রান্ত কৰি সনাতন শর্মা নামৰ এজন দুষ্কৃতিকাৰীয়ে কাঢ়ি নিয়ে। যাৰ ফলত ৰসেশ্বৰৰ জীৱনত নামি আহিছে চৰম বিপর্যয়। সনাতন শর্মাই মাটিডৰা তাৰ নহয় বুলি কোৱাত ৰসেশ্বৰে সনাতন শর্মাৰ ওচৰত কাতৰ মিনতি কৰি কৈছে—

"আমাৰ গাঁৱলীয়া মানুহেনো কেতিয়া কথাই কথাই কাগজ-পত্র কৰা দেখিছে? আমাৰ মানুহৰ মুখৰ কথাই শিলৰ ৰেখা। বোপা-কাকাৰ দিনৰ পৰা এই এপুৰা মাটিয়েই আমাৰ একমাত্র সম্বল; এতিয়া আইনৰ মেৰ-পেচ্ লগাই ওকালতিৰ কথা কৈ মাটিখিনি মোৰ পৰা কাঢ়ি নি মোক জীয়াই জীয়াই কোবাই নামাৰিব দেউতা, মই আপোনাৰ ভৰিত ধৰিছো।"[১]

সাধাৰণতে নিম্ন শ্রেণীৰ লোকে উচ্চ শ্রেণীৰ লোকৰ বিৰুদ্ধে কথা ক'বলৈ সাহ নকৰে। যাৰ ফলশ্রুতিত চক্রান্তৰ বলি হোৱা ৰসেশ্বৰে তাৰ প্রতিক্রিয়া দেখুৱাব নোৱাৰি বেজাৰ মনেৰে ঘৰলৈ উভতি আহে আৰু দেখিবলৈ পায় যে কঠিয়ানি ডৰাত গৰু এটা সোমাই কঠীয়া খাই আছে। যিহেতু কৃষক এজনৰ কঠীয়াখিনিয়ে একমাত্র সম্বল সেয়ে তাৰ সনাতন শর্মাৰ ওপৰত উঠা খঙৰ প্রকোপ বৃদ্ধি পাই দাউ দাউকৈ জ্বলি উঠিল। যাৰ প্রকোপ ভোগ কৰিবলগীয়া হৈছে তাৰ পত্নীয়ে। ঘৰৰ চাৰিওফালে পত্নীক চলাথ কৰি গা ধুই থকাৰ অৱস্থাতেই গৰু কোবোৱাৰ দৰে কোবাবলৈ ধৰিলে। উপন্যাসখনত এই কৰুণ পৰিণতি ডম্বৰুৰ ঘৈণীয়েকে ৰসেশ্বৰক উদ্দেশ্য কৰি কোৱা কথাত প্রকাশ পাইছে এনেদৰে—

"আজি তুমি তাইক যি মাৰণ দিছা— মানুহে গৰু-পশুকো তেনেকৈ নামাৰে। ডাক্তৰ কবিৰাজ এজন মাতি আনি কিবা এটা দেৱাই-জাতি দিয়াৰ দিহা কৰা। নহ'লে কিন্তু তাই নাবাচিব, তুমিও ফাঁচী-কাঠত ওমলিব লাগিব।"[২]

উচ্চ বর্গৰ চক্রান্তৰ বলি হৈ পদে পদে শোষিত হৈ অহা নিম্ন বর্গ শ্রেণীৰ লোকৰ জীৱনলৈ কেনেধৰণৰ বিপর্যয় নামি আহিব পাৰে তাৰ উমান পাব পাৰি ৰসেশ্বৰে মাটিডৰা হেৰুৱাব লগা অৱস্থা হোৱাত ডিম্বেশ্বৰ মণ্ডলৰ

ওচৰলৈ গৈ এনেদৰে কাতৰ মিনতি কৰাৰ পৰা—

"ককাইদেউ, মোৰ সর্বনাশ হৈছে। আপুনি ৰক্ষা নকৰিলে ল'ৰা-তিৰোতা গোটেই সোপাকে কাটি ব্রহ্মপুত্রত উটাই দি নিজেও আপোন-ঘাতী হ'ম।"[৩]

ৰসেশ্বৰে মণ্ডলৰ ওচৰলৈ গৈ মাটিডৰা দুষ্কৃতিকাৰী সনাতন শর্মাৰ পিতা ঁদিগম্বৰ শর্মাৰ নাম পট্টাত উঠাৰ কথা গ'ম পাই ৰাজনৈতিক তথা প্রশাসনিক ব্যৱস্থাৰ দুর্নীতিৰ বিৰুদ্ধে তীব্র প্রতিবাদী হৈ উঠিছে। ৰাজনীতিৰ মেৰ-পেচ্ নুবুজা গাঁৱলীয়া দুখীয়া-দৰিদ্র নিম্নবর্গীয় লোকসকল যে উচ্চ বর্গৰ ওচৰত সদায় শোষিত হ'ব লগা হৈছে তাৰ প্রতিবাদৰ সুৰ ৰসেশ্বৰে মণ্ডলৰ আগত কোৱা কথাষাৰৰ জড়িয়তে প্রকাশ পাইছে এনেদৰে—

"ককাইদেউ, ককাইদেউ, মই আপোনাক গোসাঁইৰ শপত দিছো, সাতোটা ল'ৰা-ছোৱালীৰ বধৰ ভাগী নহ'ব। মনত পৰিবৰ দিনৰ পৰা আপুনিয়েই এই লাটৰ মণ্ডল; আপুনি ভালকৈয়ে জানে মোৰ মাইকীজনী যেনেকৈ মোৰ, সেই মাটিডোখৰো মোৰ; সনাতন ঠিকাদাৰে কোনোদিন মাটিত ভৰি দি পোৱা নাই, খাজনা দি পোৱা নাই, মাটিডৰাৰ চাৰিসীমা কি সেইকথা সুধিলেও তেওঁ বোধহয় ক'ব নোৱাৰিব। তেনেস্থলত আপুনি থাকোঁতে চেটেলমেণ্টত তেওঁৰ নামটো পট্টাত উঠিল কেনেকৈ?"[৪]

অফিচ-কছাৰীত গোচৰ দিলেই তাৰ নিষ্পত্তি হৈ নাযায় তাৰ কাৰণে প্রয়োজন দান-দক্ষিণাৰ। দান-দক্ষিণা দি আইনৰ বিষয়ববীয়া সকলক সন্তুষ্ট কৰিব পাৰিলেহে মোকর্দমাটো আগ বাঢ়ে। সেইদৰে উপন্যাসখনত মণ্ডলে ৰসেশ্বৰক আধিবোর্ডৰ সদস্যসকলক সন্তুষ্ট কৰিলেহে তাৰ মোকর্দমা আৰম্ভ হ'ব বুলি কৈ ৰাজনৈতিক তথা প্রশাসনিক শাসন ব্যৱস্থাৰ প্রকৃত স্বৰূপ উদঙাই দিছে এনেদৰে—

"তুমি যদি ভাবা যে আধি বোর্ডত তুমি গোচৰটো দি দিলেই সদস্যসকলে আইনৰ কিতাপখন মেলি লৈ তাৰ ধাৰা মতে কাম কৰি যাব আৰু আইন মতে তুমি মাটি পাব লগা হ'লে তোমাক দি দিব— তেন্তে কিন্তু ডাঙৰ ভুল কৰা হ'ব। কথাষাৰ তোমাক খোলাকৈয়ে কওঁ শুনা। আধি বোর্ডৰ তিনি সদস্য— ব্রহ্মা, বিষ্ণু, মহেশ্বৰ— এই তিনিওজনকে পূজা একোভাগি দি সন্তুষ্ট কৰিব পাৰিলেহে তেওঁলোকৰ কৃপা-দৃষ্টি তোমাৰ ওপৰত পৰিব পাৰে; নহ'লে কিন্তু সকলো মিছা হ'ব।"[৫]

ইয়াৰ জড়িয়তে বাস্তৰ সমাজৰ ৰাজনীতিৰ দুর্নীতিপৰায়ণ, আদর্শহীন সমাজকর্মীয়ে কিদৰে সহজ-সৰল গাঁৱলীয়া নিম্ন শ্রেণীৰ লোকসকলক সর্বস্বান্ত কৰি তোলে সেয়া প্রকাশ পাইছে।

উচ্চ বর্গৰ ষড়যন্ত্রৰ বলি হৈ ৰসেশ্বৰৰ জীৱন ধ্বংস প্রায় হৈ যোৱাৰ উপক্রম হৈছে। সর্বহাৰা হৈ মহৰী, মণ্ডল, পিয়ন, হাকিম, উকীল আদিক সন্তুষ্ট কৰি মাটিডৰা ঘূৰাই পোৱাৰ আশাত তেওঁলোকৰ অতি প্রিয় ৰাঙলী গাইজনীক ডিম্বেশ্বৰ মণ্ডলৰ ওচৰত বিক্রী কৰি টকা যোগাৰ কৰিছে, হালৰ গৰু বিক্রী কৰিছে, ল'ৰাৰ পঢ়া এৰুৱাই লোকৰ ঘৰত চাকৰ খাটিবলৈ দিছে, পত্নীৰ অলংকাৰ বন্ধকত থৈছে। সকলো হেৰুৱাই সর্বস্বান্ত হৈ মোকর্দমাৰ তাৰিখটো আশা কৰা মতে নোহোৱাত অফিচ-কছাৰীৰ দুর্নীতিৰ বাস্তৰ ছবি প্রতিফলিত কৰি প্রতিবাদী চৰিত্র হিচাপে থিয় হৈছে এনেদৰে—

"চাওকচোন ৰাইজসকল, হ'ল বুলিনো অফিচৰ বাবুসকলে এনেকৈ দুখীয়া মানুহৰ জীয়া তেজ শুহি শুহি খাব লাগেনে? এটা মোকর্দমাৰ কাৰণে এখেতসকলে আজি মোক এমাহ ঘূৰাই মাৰিছে। খোজেপতি ধন ঢালোতে ঢালোতে মোৰ সংসাৰ তহিলং হ'ল। ইমানবোৰ টকা-পইচা খায়ো আজি এখেতে কয় বোলে মোৰ মোকর্দমাটোৰ দিন হেনো কাতিৰ পাঁচ তাৰিখেহে পৰিব। কাতিৰ পাঁচ তাৰিখে মোকর্দমাৰ দিন পৰিলে মোৰ কি লাভটো হ'ব? আপোনাসকল সাক্ষী থাকিল ৰাইজসকল, মোৰ মোকর্দমাটো যদি ভাদৰ ভিতৰতে নিষ্পত্তি কৰি নিদিয়ে, তেন্তে আজি মই কি কৰো তাৰ কিন্তু ঠিক নাই।"[৬]

এইদৰে প্রতাৰণাৰ বলি হৈ ৰসেশ্বৰ ক্ষুদ্র খেতিয়কৰ পৰা বনুৱা, ভূমিহীন কৃষকলৈ পৰিণত হৈছে। সাতাম পুৰুষৰ পৰা নিজৰ ধানেৰে পেট প্রৰ্তাই থকা ৰসেশ্বৰৰ ঘৰখন একেদিনাই গোলামলৈ পৰিণত হ'ল। কালিনাথ মৌজাদাৰৰ ঘৰত মতা-মাইকী দুয়োৱে পথাৰৰ ধান চপাৰলৈ ধৰিলে। অৱশেষত গাঁৱে গাঁৱে গৈ দিন হাজিৰা কৰি উদৰ পুৰাই আহিছে। ইয়াৰ পৰা ৰাজনৈতিক, প্রশাসনৰ দুমুখীয়া কার্যকলাপৰ বাবে দুখীয়া, অসহায়, নিম্নশ্রেণীৰ লোকসকল কিদৰে শোষিত, বঞ্চিত হয় তাৰ উমান পাব পাৰি।

অৱশেষত যিজন ব্যক্তিৰ বাবে ৰসেশ্বৰৰ সংসাৰ ছাৰ-খাৰ হৈ গ'ল, যিজনে চক্রান্ত কৰি তাৰ মাটিডৰা কাঢ়ি নিলে, সেইজনে শাসক দলৰ নির্বাচনী প্রার্থী হৈ 'গৰীৰী

হটাও' শ্লোগানেৰে সমাজবাদৰ বক্তৃতা দি এটি নাটকীয় পৰিস্থিতিৰ সৃষ্টি কৰিছে। ৰসেশ্বৰেও সনাতন শর্মাৰ মধুৰ কথাত ভোল গৈ তেওঁৰ নির্বাচনী প্রচাৰ চলাইছে। গছে-গছে পোষ্টাৰ মাৰিছে।

উপসংহাৰঃ

হোমেন বৰগোহাঞিৰ 'হালধীয়া চৰায়ে বাও ধান খায়' উপন্যাসখন সামাজিক উপন্যাস হিচাপে এটি উৎকৃষ্ট উপন্যাস। গ্রাম্য সমাজ জীৱনৰ বাস্তৱ ৰূপ ফুটাই তুলি দুখীয়া, অসহায়, নিচলা কৃষক, শ্রমিক শ্রেণীটোৰ কৰুণ জীৱন গাঁথা জীৱন্ত কৰি তোলাত ঔপন্যাসিকে বিশেষ সক্ষমতা দেখুৱাইছে।

উপন্যাসখনত নিম্নবর্গীয় মানুহৰ কৰুণ পৰিণতিৰ লগতে ঔপন্যাসিকে ৰাজনৈতিক তথা প্রশাসনিক দিশটোকো বাস্তৱায়িত কৰি তুলিছে। নিম্নবর্গীয় দুখীয়া, অসহায়, দুর্বল লোকসকলৰ সুযোগ লৈ নিজ স্বার্থ পূৰণ কৰাৰ উদ্দেশ্যে কিদৰে নির্মম অত্যাচাৰ চলাই আহিছে তাৰ সুন্দৰ উপস্থাপন কৰিছে। সমাজৰ ভণ্ড সমাজকর্মীৰ ৰাজনৈতিক কার্যকলাপৰ মেৰ পাকত বন্দী হৈ নিম্নশ্রেণীৰ লোকসকল কিদৰে বিপর্যস্ত হৈ পৰিছে তাৰ প্রতিফলন ঘটাই প্রতিবাদী সুৰৰ সৃষ্টি কৰি ৰাজনৈতিক শাসন ব্যৱস্থাৰ তীব্র বিৰোধিতা প্রকাশ কৰিছে। এগৰাকী কৃষক ৰসেশ্বৰৰ কৰুণ জীৱন গাঁথাৰ মাজেৰে উপন্যাসখনত গ্রাম্য সমাজ জীৱনৰ শোষিত, বঞ্চিত, অৱহেলিত কৃষক, শ্রমিক শ্রেণীৰ লোকসকলৰ বাস্তৱ ছবি জীৱন্ত কৰি সুন্দৰকৈ উপস্থাপন কৰিছে। ❑

অন্ত্যটীকা ঃ

১. বৰগোহিঞ, হোমেন ঃ হালধীয়া চৰায়ে বাও ধান খায় পৃ. ১৬
২. সদ্যোক্ত, পৃ. ২০
৩. সদ্যোক্ত, পৃ. ২১
৪. সদ্যোক্ত, পৃ. ২৪
৫. সদ্যোক্ত, পৃ. ৩২
৬. সদ্যোক্ত, পৃ. ৭২

গ্রন্থপঞ্জী ঃ

মুখ্য উৎস ঃ

বৰগোহিঞ, হোমেন। হালধীয়া চৰায়ে বাও ধান খায়। গুৱাহাটী ঃ ষ্টুডেণ্টচ্ ষ্টৰচ্। নৱম সংস্কৰণ, ২০১৯। মুদ্রিত।

গৌণ উৎস ঃ

ঠাকুৰ, নগেন (সম্পাঃ)। এশ বছৰৰ অসমীয়া উপন্যাস। গুৱাহাটী ঃ জ্যোতি প্রকাশন। পুনৰ মুদ্রণ, ২০১৮ মুদ্রিত।
বৰগোহাঞি, হোমেন (সম্পাঃ)। অসমীয়া সাহিত্যৰ বুৰঞ্জী (ষষ্ঠ খণ্ড)। গুৱাহাটী ঃ আনন্দৰাম বৰুৱা ভাষা -কলা-সংস্কৃতি সংস্থা, অসম। চতুর্থ প্রকাশ, ২০১৭ মুদ্রিত।
শর্মা, সত্যেন্দ্রনাথ। অসমীয়া উপন্যাসৰ গতিধাৰা। গুৱাহাটী ঃ সৌমাৰ প্রকাশ। পুনৰ মুদ্রণ, ২০১৩ মুদ্রিত।

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

প্রবন্ধ

চাহ-জনগোষ্ঠীৰ সামাজিক লোকাচাৰ

কস্তুৰী বৰা

গাওঁ ঃ ঘিলাধাৰী বস্তি
ডাক ঃ বৰপাম তিনিআলি
পিন ঃ ৭৮৪১৭৫
জিলা ঃ বিশ্বনাথ, অসম
ম'বাইল ঃ ৭৬৩৮০৭৩৬৪৫
ই-মেইল ঃ kasturiborah431@gmail.com

সংক্ষিপ্তসাৰ ঃ

ইংৰাজে অসমত চাহ বাগিচা সমূহ প্ৰতিষ্ঠা কৰাৰ পাছত বাগিচাত কাম কৰিবলৈ বনুৱাৰ অভাৱ হোৱাত ভাৰতৰ বিভিন্ন ৰাজ্যৰ পৰা দালালীৰ সহায়ত অসমলৈ বনুৱা আনে। অসমলৈ বনুৱা হিচাপে অহা এই লোকসকল কোনো এটা বিশেষ জনগোষ্ঠীৰ নাছিল, বিভিন্ন প্ৰান্তৰ পৰা অহা বিভিন্ন জনগোষ্ঠীৰ লোক আছিল। বৰ্তমানেও বহুতো লোকে তেওঁলোকৰ পূৰ্ব পৰিচয় ধৰি ৰাখিছে। পিতৃভূমিৰ লগত বহু পূৰ্বে সম্পৰ্ক নাইকীয়া হোৱাত এই লোকসকলে অসমৰ চাহ বাগিচাৰ জীৱনকে আকোৱালি লৈ অসমৰ বুকুত চাহ-জনগোষ্ঠী হিচাপে স্বকীয় পৰিচয় লাভ কৰিলে। তেওঁলোকে বৰ্তমান চাহ বাগিচাৰ অসমীয়া বুলি ক'বলৈ গৌৰৱবোধ কৰে। বিভিন্ন গোষ্ঠীৰ সংমিশ্ৰণত অসমত চাহ-জনগোষ্ঠী হিচাপে বিশেষ পৰিচয় পোৱা এই লোকসকলৰ সমাজত প্ৰচলিত সামাজিক লোকাচাৰ সমূহৰ মাজত বৈচিত্ৰ্যতা দেখিবলৈ পোৱা যায়। চাহ বাগিচাৰ একেটা পৰিৱেশত যদিও তেওঁলোকে বসবাস কৰে তথাপি তেওঁলোকৰ লোকাচাৰ ৰীতি -নীতি, উৎসৱ-পাৰ্বন, পৰম্পৰা, বিশ্বাস, ধ্যান-ধাৰণা আদি বহু ক্ষেত্ৰত পৃথকতা দেখা যায়। তেওঁলোকৰ মাজত দেখা দিয়া স্বকীয় বৈশিষ্ট্যতা সমূহ সামৰি 'চাহ-জনগোষ্ঠীৰ সামাজিক লোকাচাৰ' শীৰ্ষক দিশটোক বিশেষভাৱে লৈ গৱেষণা পত্ৰখন প্ৰস্তুত কৰা হ'ব। ইয়াত তথ্য সংগ্ৰহ, ক্ষেত্ৰ অধ্যয়ন, বৰ্ণনাত্মক আৰু বিশ্লেষণাত্মক পদ্ধতি গ্ৰহণ কৰি বিষয়ৰ সম্যক ধাৰণা দিবলৈ প্ৰয়াস কৰা হ'ব।

বীজ শব্দ ঃ

চাহ বাগিচা, অসম, চাহজনগোষ্ঠী, সামাজিক লোকাচাৰ ঃ

০.০০ অৱতৰণিকা ঃ

চীন দেশৰ পৰা অহা 'চাহ' শব্দটিৰ লগত অসমৰ ইতিহাস আৰু বৰ্তমান জড়িত হৈ আছে। ইংৰাজ ৰাজত্বৰ সময়তে অসমত চাহগছ থকাৰ উমান পাই, ইংৰাজ বিষয়া ৰবাৰ্ট ব্ৰুচে ১৮২৩ চনত চিংফৌগাম এজনৰ পৰা চাহপুলি আনে। চিংফৌ সকলকে অসমত চাহৰ আৱিষ্কাৰক বুলি কোৱা হয়। চিংফৌৰ সহযোগত ৰবাৰ্ট ব্ৰুচৰ প্ৰচেষ্টাত ইংৰাজে অসমত চাহ পুলি ৰুই চাহবাগিচাসমূহ

প্রতিষ্ঠা কৰে। ডিব্রুগড়ৰ চাবুৱাতে অসমৰ প্ৰথমখন চাহ বাগিছা প্ৰতিষ্ঠা কৰা হয়। চাহ বাগিচা সমূহ প্ৰতিষ্ঠা হোৱাৰ লগে লগে তাত কাম কৰিবলৈ বনুৱাৰ প্ৰয়োজন হোৱাত অসমীয়া, কাছাৰী, ৰাভা, গাৰো আৰু নেপালী মানুহক বনুৱাৰ কামত নিয়োগ কৰিছিল যদিও তেওঁলোকে কামত পাৰদৰ্শিতা দেখুৱাব নোৱাৰাত, ইংৰাজে অসমৰ বাহিৰৰ ৰাজ্যৰ পৰা চাহ বাগিচাত কাম কৰিবলৈ বনুৱা অনাৰ চিন্তা চৰ্চা কৰে। সেইমতেই ১৮৩৭ চনত ভাৰতৰ বিভিন্ন প্ৰান্তৰ পৰা অৰ্থাৎ চোটনাগপুৰ, মেদিনীপুৰ, বিহাৰ, উৰিষ্যা, মধ্য প্ৰদেশ, তামিলনাড়ু, অন্ধ্ৰ প্ৰদেশ আদি ৰাজ্যৰ পৰা বৃহৎ সংখ্যক বনুৱা দালালীৰ সহায়ত অসমলৈ আনে। অসমলৈ অহা এই লোক সকল কোনো এটা বিশেষ জনগোষ্ঠীৰ নাছিল, বিভিন্ন প্ৰান্তৰ পৰা ভিন্ন গোষ্ঠীৰ লোক অসমলৈ চাহ শ্ৰমিক হিচাপে অনা হৈছিল। বৰ্তমানেও বহুতো লোকে তেওঁলোকৰ পূৰ্ব পৰিচয় ধৰি ৰাখিছে। নিজৰ পিতৃভূমিৰ সৈতে সম্পৰ্ক বহু পূৰ্বেই কামৰ তাগিদাত এৰি আহি অসমকেই জন্মভূমি-কৰ্মভূমি হিচাপে মানি লৈ, এই বনুৱাসকল অসমৰ আৰ্থ সামাজিক জীৱনৰ অপৰিহাৰ্য্য অংগ হোৱাৰ উপৰিও সামাজিক, সাংস্কৃতিক জীৱনৰ নিৰৱচ্ছিন্ন অংশ হিচাপে ৰৈ গ'ল। চাহ বাগিচাৰ একেটা পৰিৱেশৰ মাজত একেখন লোকসমাজত বসবাস কৰা এই চাহজনগোষ্ঠীয় লোকসকলৰ লোকাচাৰ ৰীতি-নীতি, উৎসৱ-পাৰ্বন, পৰম্পৰা-বিশ্বাস, ধ্যান- ধাৰণা আদি বৈচিত্ৰ্যপূৰ্ণ। এই বৈচিত্ৰ্যপূৰ্ণ লোকাচাৰৰ জৰিয়তে তেওঁলোকে অসমৰ বাৰেৰহনীয়া সংস্কৃতিৰ বুকুত নতুন এডাল জঁবী বান্ধিলে। চাহজনগোষ্ঠীৰ লোকসকলৰ মাজত ১০৮ টা গোষ্ঠীৰ লোক আছে, তাৰে ভিতৰত চাওঁতাল, মুণ্ডা, ঘাঁচিয়া, তাঁতী, গণ্ডতাঁতী, নায়ক, পানতাঁতী, কুমাৰ, কৰ্মকাৰ, তেলী, শৱৰ, ভূমিজ, গুৱালা, ও�ৰাং, চমাৰ, বাগতি, হাৰি, পৰ্জা, গড় আদি প্ৰধান। এই চাহজনগোষ্ঠীৰ লোকসকলে ব্যৱহাৰ কৰা ভাষাটো মাদানী বুলি কোৱা হয়।

চাহবাগিচাৰ মাজত জীৱন কটোৱা চাহ-জনগোষ্ঠীয় লোকসকলে বাগিচাৰ মাজতে একোখন সমাজ পাতি বসবাস কৰে। এই সমাজৰ মাজতে কষ্টকৰ শ্ৰমিক জীৱনৰ শ্ৰম কিছু লাঘৱ কৰিবলৈ তেওঁলোকে ঋতু অনুযায়ী কিছুমান লোকাচাৰ ৰীতি- নীতি, উৎসৱ-পাৰ্বন পালন কৰে। তেওঁলোকৰ লোকাচাৰ সমূহৰ স্বকীয়তা আছে, এই স্বকীয় বৈশিষ্ট্যৰে অসমত তেওঁলোক জিলিকি আছে। ড° নবীন চন্দ্ৰ শৰ্মাই লোক-সংস্কৃতিক চাৰিটা ভাগত ভাগ কৰোতে সামাজিক লোকাচাৰৰ অন্তৰ্গত চাৰিটা উপাদান উল্লেখ কৰিছে, সেইকেইটা হৈছে-

(ক) উৎসৱ-অনুষ্ঠান
(খ) অৱসৰ বিনোদন আৰু খেল-ধেমালি
(গ) লোকঔষধ
(ঘ) লোকধৰ্ম

এই উপাদানসমূহৰ ভিত্তিতেই চাহ জনগোষ্ঠীৰ সামাজিক লোকাচাৰ সমূহৰ আলোচনা কৰা হ'ব।

০.০১ অধ্যয়নৰ লক্ষ্য আৰু উদ্দেশ্য ঃ

ডেৰশ বছৰ পুৰণি অসমৰ চাহ জনগোষ্ঠীৰ ইতিহাস চাবলৈ গ'লে বিভিন্ন বৈচিত্ৰ্যতা চকুত পৰা পৰিলক্ষিত হয়। এই ডেৰশ বছৰত, লোকসংস্কৃতিৰ ভিতৰুৱা সামাজিক লোকাচাৰৰ অন্তৰ্গত উৎসৱ-অনুষ্ঠান, অৱসৰ বিনোদন আৰু খেল-ধেমালি, লোক-ঔষধ, লোক ধৰ্ম আদিৰ স্বকীয় বৈশিষ্টতা পৰিলক্ষিত হয়। অসমৰ বাৰেহ ৰনীয়া সংস্কৃতিৰ মাজত চাহ-জনগোষ্ঠীৰ লোকসকলে ভাৰতৰ বিভিন্ন ৰাজ্যৰ পৰা কঢ়িয়াই অনা সাংস্কৃতিক সমল সমূহৰ একত্ৰীকৰণ কৰি, চাহ-জনগোষ্ঠীয় সমাজ হিচাপে অসমৰ বুকুত স্বকীয়তা অক্ষুন্ন ৰাখি বৰ্তমানেও জিলিকি আছে। তেওঁলোকে নিজকে চাহ বাগিচাৰ অসমীয়া বুলি কৈ গৌৰৱবোধ কৰে। চাহ-জনগোষ্ঠীৰ সামাজিক লোকাচাৰ সমূহৰ বৈশিষ্ট্যসমূহলৈ দৃষ্টি ৰাখি তাৰ স্বকীয়তা সমূহ উল্লেখ কৰি পৰিচয়-সুচক বিশ্লেষণাত্মক আলোচনা কৰাই আমাৰ গৱেষণা পত্ৰিকাখনৰ মূল উদ্দেশ্য।

০.০২ অধ্যয়ণৰ গুৰুত্ব ঃ

অসমৰ চাহ-জনগোষ্ঠীৰ লোকসকলৰ মাজত প্ৰচলিত সামাজিক লোকাচাৰ সমূহৰ মাজত দেখা দিয়া কিছুমান সুকীয়া বৈশিষ্ট্যৰ বিশ্লেষণ কৰি ইয়াৰ গুৰুত্ব বিচাৰ কৰিবলৈ যত্ন কৰা হৈছে।

০.০৩ অধ্যয়নৰ পৰিসৰ ঃ

অসমৰ চাহ-জনগোষ্ঠীৰ লোকসংস্কৃতিৰ ভিতৰুৱা সামাজিক লোকাচাৰ সমূহক আমাৰ আলোচনাৰ পৰিসৰত সামৰিবলৈ যত্ন কৰা হৈছে।

০.০৪ অধ্যয়নৰ পদ্ধতি ঃ

প্ৰস্তাৱিত বিষয়টো উপস্থাপন কৰিবলৈ যাওঁতে তথ্য সংগ্ৰহৰ বাবে সাক্ষাৎকাৰ পদ্ধতি আৰু ক্ষেত্ৰ পৰ্যবেক্ষণ

পদ্ধতি লোৱা হৈছে। ক্ষেত্র পর্যবেক্ষণ পদ্ধতিৰ জৰিয়তে বিশ্বনাথ জিলাৰ 'মাজুলী গড় চাহবাগিচা' ত গৈ তাৰ লোকাচাৰ সম্পর্কে পর্যবেক্ষণ আৰু সাক্ষাৎকাৰ গ্রহণ কৰি এই আলোচনা কৰা হৈছে।

তথ্য বিশ্লেষণৰ পদ্ধতিৰ বাবে বর্ণনাত্মক, বিশ্লেষণাত্মক আৰু ঐতিহাসিক পদ্ধতি লোৱা হৈছে।

০.০৫ পূৰ্বকৃত অধ্যয়নৰ সমীক্ষা ঃ

অসমৰ চাহ-জনগোষ্ঠীৰ ওপৰত ভাষা-সাহিত্য-সংস্কৃতি বিষয়ক বিভিন্ন গ্রন্থ ৰচিত হৈছে আৰু ইয়াৰ ওপৰত গৱেষণা কার্যও সম্পন্ন হৈছে। চাহবাগিচাৰ উৎসৱসমূহৰ বিষয়ে বিস্তৃতভাৱে দেউৰাম তাছাৰ 'চাহবাগিচাৰ পূজা-পৰ্ৱ' (১৯৮১) গ্রন্থখন অসম সাহিত্য সভাই প্রকাশ কৰি উলিয়াইছে। সুশীল কুৰ্মীৰ চাহবাগিচাৰ জীৱন আৰু সংস্কৃতিক লৈ 'চাহবাগিচাৰ জীৱন আৰু সংস্কৃতি' (১৯৯১) শীর্ষক গ্রন্থ প্রকাশিত হৈছে। চাহ-জনগোষ্ঠীৰ জীৱনক কেন্দ্র কৰি নাৰায়ণ ঘাটোৱাৰৰ 'বনুৱাৰ সাংস্কৃতিক জীৱনত এভুমুকি' (১৯৭৫) নামৰ গ্রন্থ প্রকাশ হৈছে। সুশীল কুৰ্মীৰ 'চাহ-বাগিচাৰ কথা' (১৯৮১) ত চাহখেতিৰ আৰম্ভণি, চাহবাগিচা স্থাপন,চাহ বনুৱাৰ ব্যৱহাৰিক জীৱন, বেতন, শিক্ষা, সাহিত্য-সংস্কৃতি, স্বাধীনতা আন্দোলনত তেওঁলোকৰ ভূমিকা ইত্যাদি দিশসমূহ উন্মোচিত হৈছে। লীলা গগৈৰ 'অসমৰ সংস্কৃতি' ২০১৯ শীর্ষক গ্রন্থটো চাহ-জনগোষ্ঠীৰ লোক-সংস্কৃতি সম্পর্কে আভাস পাব পাৰি। মল্লিকা বৰাই 'চাহ-বাগিচাৰ লোকসাহিত্য আৰু লোকসংস্কৃতি বিষয়ক গৱেষণা গ্রন্থ ২০০৩ চনত প্রকাশ কৰি উলিয়ায়।

১.০০ বিষয়বস্তুৰ অধ্যয়ন ঃ

অসমৰ চাহ-জনগোষ্ঠীৰ লোকসমাজত গোষ্ঠীভেদে, লোকসংস্কৃতিৰ ভিতৰুৱা সামাজিক লোকাচাৰত বৈচিত্র্যতা দেখা পোৱা যায়। এই চাহ-জনগোষ্ঠীৰ লোকসকলে ব্যক্তিগত আৰু সামাজিক দুই ধৰণে লোকাচাৰসমূহ পালন কৰে। সামাজিক লোকাচাৰৰ ভিতৰুৱা চাৰিটা উপাদান উল্লেখ কৰা হৈছে।

(ক) উৎসৱ-অনুষ্ঠান
(খ) অৱসৰ বিনোদন
(গ) লোক-ঔষধ
(ঘ) লোকধর্ম

২.০০ উৎসৱ অনুষ্ঠান ঃ

চাহ-জনগোষ্ঠীয়ে ঋতু অনুযায়ী বিভিন্ন উৎসৱ পালন কৰে। সেই উৎসৱ সমূহ হৈছে- কৰমপৰ্ৱ, টুচু পৰ্ৱ, চড়ক পূজা, দণ্ড পূজা, দুর্গা পূজা, গ্রাম পূজা, সূর্যাহী পূজা, সহৰাই পৰ্ৱ, চাৰুল পৰ্ৱ, ফুছপুনী মা'ৰ পূজা, ফাগুৱা পৰ্ৱ ইত্যাদি। ইয়াৰ ভিতৰত প্ৰধানভাৱে পালন কৰা কৰমপৰ্ৱ, টুচু পৰ্ৱ, চড়ক পূজা, দণ্ড পূজা আৰু সহৰাই পৰ্ৱৰ তলত আভাস দিয়াৰ উপৰিও অন্যান্য অনুষ্ঠানৰ ভিতৰত পৰা জন্ম - মৃত্যু আৰু বিবাহ অনুষ্ঠানৰ বিষয়ে আভাস দিয়াৰ প্ৰয়াস কৰা হ'ল।

২.০০.০০ কৰম পৰ্ৱ ঃ

অসমৰ চাহ-জনগোষ্ঠীৰ লোকসকলে উলহ-মালহেৰে আয়োজন কৰা উৎসৱ হ'ল কৰমপৰ্ৱ। এই উৎসৱ কৃষি তথা উর্বৰতাৰ পৰ্ৱ। কৰম পৰ্ৱ বছৰৰ তিনিটা সময়ত পাতে-ভাদ মাহৰ শুক্লা-একাদশী তিথিত 'জীতিয়াকৰম', আহিন মাহৰ বিজয়া দশমীৰ দিনা 'বুড়ীকৰম' আৰু আঘোণ মাহৰ পূর্ণিমা তিথিত 'ৰাস ঝুমুৰ' বুলি কৰম পৰ্ৱ পালন কৰে। এই উৎসৱত ঝাৱা তোলাটো অতি প্রয়োজনীয় অংশ। যিসকল কৰমতীয়ে এই পূজাত অংশগ্রহণ কৰিবলৈ বিচাৰে, তেওঁলোকে নির্দিষ্ট পূজাৰ তিনি, পাঁচ বা সাতদিনৰ পূর্বে মাদল বজাই ধূপ-দীপ-নৈৱেদ্যৰে সৈতে নৈৰ ঘাটলৈ গৈ গা-পা ধুই আৰতি কৰি, লগত নিয়া নতুন পাচিত প্রত্যেকেই একাঁজলি বালি ভৰায়, এই বালিতেই কৰমতী সকলে লগত নিয়া মাহ-সৰিয়হ নিজৰ চিন ৰাখি সিঁচি দিয়ে। পূজাৰ দিনলৈকে সিঁচি দিয়া এই মাহ - সৰিয়হ তিনি চাৰি আঙুল বাঢ়ে। ইয়াকে ঝাৱা তোলা বোলে। ঝাৱা তোলাৰ পিছত, আগতীয়াকৈ নিমন্ত্রণ দি থোৱা এডাল চিকামৰলীয়া গছৰ ডাল পূজা থলীতে পোতে। এই পূজাৰ বেদী তেওঁলোকে নির্দিষ্ট কোনো এঘৰত স্থাপন কৰে। কৰমপূজাৰ মূল দেৱতা কর্মা-ধর্মা। কহনী [১] বুঢ়াই কৰমতী সকলক কৰমপূজাৰ আখ্যান কৈ থাকে আৰু তাৰ মাজতে কৰমতী সকলে তেওঁৰ নির্দেশ মানি বেদীত অঞ্জলী দিয়ে। সর্বশেষত কহ্নী বুঢ়াক যথাযথ নিয়মেৰে বিদায় দি ঝুমুৰ নৃত্য - গীত আৰম্ভ কৰে। এই নৃত্য - গীতত ডেকা - বুঢ়া সকলোৱে অংশগ্রহণ কৰে। সূর্য উদয়ৰ আগেয়ে কৰমতী সকলে কৰমৰ ডাল উভালি লৈ কৰম পূজা সমাপ্ত কৰে।

২.০০.০১ টুচু পৰ্ৱ ঃ

চাহ-জনগোষ্ঠীৰ লোকসকলে টুচু পৰ্ৱ মকৰ সংক্রান্তিৰ দিনা পালন কৰে। অসমৰ চাহ-জনগোষ্ঠীৰ লোক সকলৰ এই টুচু পৰ্ৱ ঘাইকৈ স্ত্রী প্রধান উৎসৱ।

পূজাৰী বিহীন এই পূজা পৰিচালনাৰ বাবে এগৰাকী তিৰোতাক টুচুৰ মাক পাতি লয়। টুচু আচলতে এগৰাকী দেৱী। কোনো কোনো লোকে টুচুক শস্যৰ দেৱী বুলি মানে, কোনোৱে শিৱৰ জীয়েক, মনসাৰ ভনীয়েক, কালী, দুর্গা, সীতা, সাৱিত্রী আদি দেৱীৰ ৰূপত পূজা কৰে। কিছুমান ঠাইত টুচু দেৱীৰ প্রতিমা সাজি লয় যদিও বিশ্বনাথ জিলাৰ মাজুলীগড় চাহবাগিচাত টুচু দেৱীৰ প্রতীক হিচাপে বাঁহৰে ঘেৰ গুঠি ৰঙা - নীলা কাগজৰে মণ্ডপ সজাই দেৱীৰ প্রতীক নির্মাণ কৰে। টুচু দেৱীক ঘৰে ঘৰে লৈ যায় আৰু প্রত্যেক ঘৰে ধূপ-দীপেৰে পূজা অর্চনা, দান-দক্ষিণা দি মঙ্গল কামনা কৰে। ঘৰে ঘৰে লৈ যাওঁতে ঢোল, মাদল আদিৰ ছেৱত গৃহস্থৰ লগতে সকলো ৰাইজে গীত গাই ঝুমুৰ নৃত্য কৰি আনন্দ কৰে। টুচু পূজাত হোৱা বেছিভাগ গীতেই প্রণয়মূলক। এটি টুচু গীত তলত দিয়া হ'ল -

"শিশিৰে কি ফুটে ফুল
বিনা বৰিষণে,
বচনে কি মানে মন
বিনা দৰশনে।"

২.০০.০২ চড়ক পূজা ঃ

চাহ-জনগোষ্ঠীৰ লোকসকলে চ'ত মাহত চড়ক পূজা পালন কৰে। এই পূজাত ভাগ লোৱা পুৰুষসকলে পূজাৰ আগত সাতদিন ব্রত ৰাখে, এই ব্রতত সিজোৱা অন্ন খায়। সাতদিনৰ প্রতিদিনেই তেওঁলোকে শিৱপূজা কৰে। পূজাৰ প্রথম দিনা পাতভক্তাই নদীৰ ঘাটৰ পৰা ঘটত পানী লৈ আনে, সেইদিনা ৰাতি সকলোৱে নদীৰ ঘাটত শিৱপূজা কৰে। শিৱ পূজাৰ পিছদিনা ৰাতিপুৱা সকলোৱে পার্বতী দেৱীৰ পূজা কৰি গাত, জিভাত শলা সুমুৱাই, দিনৰ আগভাগতে পদযাত্রা কৰি শিৱ মন্দিৰত পূজা কৰিবলৈ আহে, পূজা কৰি গাত সুমুৱা শলাবোৰ উলিয়াই ভগৱানৰ ওচৰত মঙ্গল কামনা কৰে। এই পূজাৰ পিছদিনা কালী পূজা কৰে আৰু মূল মানুহজনৰ ওপৰত দেও লম্ভে, এই মানুহজনেই আপায়-অমঙ্গল হৈ থকা লোকসকলক নিস্তাৰৰ উপদেশ দিয়ে। পূজা সমাপন কৰি সকলোৱে একগোট হৈ বোকা খেল খেলে।

২.০০.০৩ দণ্ডপূজা ঃ

চাহ-জনগোষ্ঠীৰ মাজত প্রচলিত দণ্ডপূজা মূলতঃ উৰিষ্যাৰ। এই পূজাৰ মূল দেৱতা শিৱ আৰু কালী গোঁসানী। এই পূজা চ'ত মাহত আৰম্ভ হয়। এই পূজা অসমত বাস কৰা উড়িয়াসকলে পালন কৰে যদিও তেওঁলোকৰ লগত চাহ-জনগোষ্ঠীৰ অন্যান্য সম্প্রদায়েও ভাগ লয়। এই পূজা তেৰদিন ধৰি পালন কৰা হয় আৰু ইয়াত পুৰুষে অংশগ্রহণ কৰে। দণ্ডপূজাৰ মূল উদ্দেশ্য হৈছে- নিজৰ শৰীৰত কষ্ট দি অন্নৰ পৰিৱর্তে আখৈ আৰু গুৰ পানী খাই নিশাটো উজাগৰে থাকি, দিনত মাত্র কেইঘণ্টামান শুই, গোটেই নিশা ঈশ্বৰৰ বিভিন্ন বেশ ধৰি (ভাওনা কৰাৰ দৰে) ঈশ্বৰৰ গুণানুকীর্তন কৰিবলৈ ঘৰে ঘৰে পদযাত্রা কৰি, নিজৰ তথা পৰিয়ালৰ মনোকামনা পূৰৰ অর্থে প্রার্থনা কৰা। দণ্ডপূজাৰ অন্তিম দিনা কালী মন্দিৰত পূজা দি অঙঠাৰ মাজেদি ভক্তসকল পাৰ হৈ নিষ্কাম ভক্তিৰ পৰিচয় দিয়ে।

২.০০.০৪ সহৰাই পৰৱ ঃ

চাহ- জনগোষ্ঠীৰ এটা লেখত ল'বলগীয়া উৎসৱ হৈছে সহৰাই পৰৱ বা গৰয়াপূজা। এই পূজাৰ মূল উদ্দেশ্য গো-সেৱা। গৰুৰ মঙ্গলৰ কাৰণে গোহালিতে শিৱ, বাঘ, গ্রাম, ধৰম, বনদেৱতাৰ নাম লৈ কাতি মাহৰ ন-জোন ওলোৱাৰ দিনা বা ইয়াৰ পিছৰ পাঁচ বা সাতদিন এই পূজা অনুষ্ঠিত কৰে। ইয়াত 'জাহেলী গীত' গোৱা হয়। সহৰাই পৰৱ অসমীয়াৰ হুঁচৰি সদৃশ, এই পৰৱত বাগিচাৰ জ্যেষ্ঠসকলে ঘৰে ঘৰে সহৰাই গীত গাই মংগল কামনা কৰে।

৩.০০ জন্ম-মৃত্যু-বিবাহ সম্পর্কীয় অনুষ্ঠান ঃ

সামাজিক অনুষ্ঠানৰ ভিতৰত জন্ম-মৃত্যু-বিবাহ সম্পর্কীয় এই তিনিওটা উল্লেখযোগ্য অনুষ্ঠান। সামগ্রীকভাৱে চাহ-জনগোষ্ঠীৰ লোকসকলৰ এই অনুষ্ঠানকেইটাৰ ৰীতি-নীতি একেধৰণৰ। তথাপি সম্প্রদায়ভেদে দুই এটা ৰীতি-নীতিৰ মাজত পার্থক্য দেখা যায়।

৩.০০.০০ জন্ম সম্পর্কীয় অনুষ্ঠান ঃ

চাহ- জনগোষ্ঠীৰ লোকসমাজত নৱজাতকৰ জন্মৰ এই অনুষ্ঠানটোক 'চুৱা' বুলি কোৱা হয়। সন্তান জন্ম হোৱাৰ ছয় দিনৰ পৰা জন্ম সম্পর্কীয় এই অনুষ্ঠান পালন কৰা হয়। সন্তান ভূমিস্থ হোৱা দিন ধৰি ছয় দিনৰ দিনা অধিষ্ঠাত্রী ষষ্ঠী দেৱীৰ নামত এডোখৰ শিলক আধাৰ কৰি প্রসূতিগৰাকীয়ে অশৌচ গৃহতে পূজা-পাতল কৰে। ন দিনৰ দিনা পৰিয়ালৰ সকলোৱে নখ, চুলি কাটে। এই কার্যক নর্তা বোলে। সেইদিনাই মাক আৰু নৱজাতকক গা-ধুৱাই

নতুন কাপোৰ পিন্ধাই। সন্তান প্ৰসৱ কৰোৱা ধাইগৰাকীক মাতৃয়ে নিজহাতে উপহাৰ দিয়ে। ন দিনৰ দিনাই নৱজাতকৰ চুলি খুৰাবলৈ এটা কাঁহৰ বাটিত মিঠাতেল, হালধি আৰু মাননি দি ক্ষুৰক সন্মান জনাই চুলি খুৰোৱা হয়। এই চুলিখিনি এখন আগলতি কলাপাততে লৈ আওহতীয়া ঠাইত পোতা হয়। ইয়াৰ পাছত একৈশ দিনৰ দিনাখন একৈশা পালন কৰা হয়, এই অনুষ্ঠানত প্ৰসুতিৰে সৈতে নৱজাতকক সকলোৱে উপহাৰ দিয়ে। সেইদিনাই পৰিয়ালৰ লগতে ৰাইজক ভোজ-ভাত দি প্ৰকৃত চুৰা গুচোৱা হয়।

৩.০০.০১ বিবাহ সম্পৰ্কীয় অনুষ্ঠান ঃ

চাহ-জনগোষ্ঠীৰ লোকসমাজত বেলেগ সম্প্ৰদায়ৰ মাজত বিয়া হোৱাত বাধা আছে। এই ক্ষেত্ৰত উচ্চ-নিম্ন সম্প্ৰদায়ৰ বিচাৰ কৰা হয়। দৰা আৰু কইনা পক্ষৰ মাজত কথা-বতৰা পাতি বিয়া সঠিক কৰা হয়। এই সঠিক কৰণৰ সময়ত দুয়ো পক্ষৰ মূৰব্বী দুজনৰ কাপোৰত বহুতে তামোল-পান বান্ধি, খুন্দনাৰে ভাঙি-মেলি ৰাইজলৈ সন্মতি প্ৰকাশ কৰে। ইয়াক গুৱাচুপা বোলে। ইয়াৰ পিছত দুয়োপক্ষৰ সন্মতি হ'লে দৰাক কাপোৰ পিন্ধাবলৈ কইনা পক্ষৰ ৰাইজ আহে আৰু দৰা পক্ষৰ পৰাও কইনাক সাজ-পাৰ পিন্ধায়। ইয়াক 'কাপোৰ-পিন্ধনি' বোলে। কাপোৰ পিন্ধনিৰ বাবে লগত দিয়া শাৰী, ব্লাউজ, ফণী, আচী, খাৰু, আঙঠি, তেল, পাউদাৰ, নাৰিকল, দৈ, পিঠা-পনা আদি বস্তু সম্ভাৰক 'দধিভাৰ' বুলি কয়। বিয়াৰ দিনা কইনাই হালধি বুলোৱা শাৰী আৰু দৰাই বগা কামিজ, হালধি বুলোৱা ধূতি আৰু মূৰত পাগুৰি মাৰে। কইনাৰ ঘৰত হোমৰ বেদী সজা হয় আৰু দৰা-কইনাক তাত বহুৱায়। দৰাই কইনাক সেন্দুৰ দিয়ে আৰু এই কাৰ্যক সিন্দৰাদান বোলে। বৰমালা পিন্ধাই হোমৰ গুৰিত সাতপাক ঘূৰি বিবাহ কাৰ্য সম্পন্ন কৰা হয়। সম্প্ৰদায়ভেদে বিবাহৰ নীতি-নিয়ম ভিন ভিন। চাহ-জনগোষ্ঠীৰ গণ্ড সম্প্ৰদায়ে বিবাহ কাৰ্য শেষ হোৱাৰ পিছত কইনাক পু�ৰাহে দৰা ঘৰলৈ আনে, আনহাতে মুণ্ডাৰীসকলে ৰাতিয়েই কইনাক দৰা ঘৰলৈ লৈ আহে। বিবাহে আনুষ্ঠানিকতা নাপালে অৰ্থাৎ পলুৱাই আনিলে চাহ-জনগোষ্ঠীৰ মহিলাই সেন্দুৰ নলয়, উপযুক্ত নিয়ম কৰাৰ পিছতহে সেন্দুৰ লয়।

৩.০০.০২ মৃত্যু সম্পৰ্কীয় অনুষ্ঠান ঃ

চাহ-জনগোষ্ঠীৰ লোকসকলৰ মাজত কোনো লোকৰ হানি-বিঘিনি ঘটিলে বা মৰিলে পোতা আৰু দাহ কৰা দুয়োটা নিয়মেই প্ৰচলিত। কোনো এজন লোকৰ মৃত্যু হ'লে একে কুলৰ লোকে বটি লোৱা তিল, হালধি আৰু তেল সানি আৰু কিছুৰে ধুই পখালি শটোৰ ওপৰত বগা কাপোৰে ঢাকি দিয়ে। শ্মশান যিমানেই দূৰ বা ওচৰ নহওঁক বাটত তিনিবাৰ ৰৈ বা শটো মাটিত ৰাখি তিনিবাৰকৈ মুঠ ন বাৰ হৰি ধ্বনি দিয়াৰ নিয়ম।[২] শ্মশান পোৱাৰ পাছত শ্মশান দেৱতাৰ পৰা মৃতকক পুতিবলৈ বা দাহ কৰিবলৈ মাটি কিনাৰ নিয়ম। এই নিয়ম হোৱাৰ পিছত শটোক চিতাত উঠাই দিয়ে, পিতৃ-মাতৃৰ ক্ষেত্ৰত সবাতকৈ ডাঙৰ বা সৰুজনে মুখাগ্নি কৰে। শ্মশানৰ কাৰ্য শেষ কৰি নদী বা পুখুৰীত স্নান কৰি তিনিবাৰকৈ হৰিধ্বনি দি মৃতকৰ ঘৰলৈ ওলটি আহি আগতীয়াকৈ থোৱা তুলসীৰ পানী গাত ছটিয়াই সকলোৱে ঘৰা-ঘৰি যায়। তিনিদিনৰ দিনা তিলনি পাতে আৰু নিম তিতাৰে সৈতে সিজোৱা তিতাভাত খাই এই কাৰ্য সমাপন কৰে। দহ দিনৰ দিনা শুদিৰ হৈ চুলি-দাৰি কাটি, চাফ-চিকুণ হৈ মৃতকৰ সদ্গতিৰ বাবে পুৰুহিতৰ সহায়ত পৰিয়ালে পূজা পাতে আৰু ৰাইজক মাছেৰে ভোজ ভাত খুৱায়। গধুলি মৃতকৰ সদ্গতি সম্পৰ্কে জানিবলৈ 'ছাহিৰ অনা' পৰ্ব পালন কৰে। মৃতকক ৰাতিৰ আহাৰ দি আত্মীয় তিনি বা পাঁচজনে কাঁহী বজাই ঘৰলৈ উভতে। চাহ-জনগোষ্ঠীৰ সমাজত দহ দিনত মৃতকৰ সকলো শ্ৰাদ্ধৰ নিয়ম শেষ হয়।

৩.০০.০৩ উৎসৱ অনুষ্ঠানত পৰিধান কৰা সাজপাৰ আৰু অলংকাৰ ঃ

চাহ-জনগোষ্ঠীয় লোকসমাজত উৎসৱ-পাৰ্বনত পুৰুষ-মহিলা সকলোৱে কিছুমান নিৰ্দিষ্ট সাজপাৰ পৰিধান কৰে। পুৰুষসকলে ভৰিৰ সৰু গাঁঠিলৈকে পৰা বগা ধূতি, বগা কামিজ আৰু মূৰত পাগুৰি মাৰে। মহিলাসকলে ৰঙা পাৰি দিয়া বগা শাৰী পিন্ধে।

চাহ-জনগোষ্ঠীৰ লোকসকলে পৰিধান কৰা আ-অলংকাৰবোৰ সাধাৰণতে তাম আৰু ৰূপৰ হোৱা দেখা যায়। কেইবিধমান অলংকাৰ হ'ল— বতল, কাণফুল, ঝুমকা, কাণচি, কাণতাড়কা, পাগড়া, ঝুড়ী, নাকছড়াঁ, ফুলপঁতা, নাকফুল, হাঁসলি, সিকিমালা, চন্দ্ৰহাৰ, চুড়ী, বালা, আংঠী, পঁইৰী, কমৰ গট, মাটিয়া আদি।

৪.০০ অৱসৰ বিনোদন আৰু খেল-ধেমালি ঃ

চাহ-জনগোষ্ঠীৰ লোকসমাজত অৱসৰ বিনোদন আৰু খেল-ধেমালিৰ বাবে যথেষ্ট সমল আছে। ডেকা-বা

জ্যেষ্ঠসকলৰ খেল-ধেমালিৰ ভিতৰত কুকুৰা যুঁজ জনপ্ৰিয়। কুকুৰাৰ বাঁও ঠেঙত চুৰি বান্ধি যুঁজিবলৈ দিয়া হয়। এই যুঁজ ৰাজহুৱাভাৱে হয়। জিকিলে কুকুৰাৰ মালিকে হৰা কুকুৰাটো লাভ কৰে। চাহ-জনগোষ্ঠীৰ দুই এক সম্প্ৰদায়ৰ মাজত হাবিৰ জীৱ-জন্তু চিকাৰ কৰা খেল-গণ্ড, কয়া, ধেনু-কাড় মৰা আদিৰ জনপ্ৰিয় ভাৱে প্ৰচলন আছে। মাঘৰ বিহুৰ দিনা ধেনু-কাড় লৈ 'আখন যাত্ৰা' বুলি তেওঁলোকে চিকাৰ কৰিবলৈ যায়।

শিশু-কিশোৰৰ মাজত টাংগুটি, লুকা-ভাকু, কণীখেল, বিৰিংগুটি খেল, চেংগুটি খেল, বোকা ছটিওৱা খেল, ভোটাগুটি খেলৰ প্ৰচলন আছে। কিন্তু, বৰ্তমান যুগৰ তাগিদাত ফুটবল, ক্ৰিকেট ইত্যাদিৰ জনপ্ৰিয়তাও শিশুসকলৰ মাজত দেখা যায়।

৫.০০ লোক-ঔষধ ঃ

বিজ্ঞান-প্ৰযুক্তিৰ যুগত চাহ-জনগোষ্ঠীৰ লোকসকলে হাস্পতালৰ চিকিৎসাৰ উপৰিও প্ৰাথমিক হিচাপে লোক-ঔষধৰ ব্যৱহাৰত আজিও গুৰুত্ব দিয়া দেখা যায়। ইয়াৰ মূলতে আছে পৰম্পৰাগত বিশ্বাস। চাহ-জনগোষ্ঠীয় সমাজত লোক-ঔষধ দুই ধৰণে পোৱা যায়, সেয়া হৈছে বনৌষধি আৰু জৰা-ফুকা অৰ্থাৎ মন্ত্ৰ চিকিৎসা।

বনৌষধিৰে মাথা দৰদ, কাঁচ মৰা, বিহ ফুঁহা, চুটকা, জণ্ডিছ, গেষ্ট্ৰিক আদি বহুতো বেমাৰৰ চিকিৎসা কৰা হয়। গছৰ শিপা পাত, ডাল আদিৰ মিশ্ৰণত ৰোগ বিশেষৰ ঔষধ প্ৰস্তুত কৰা হয়। ঔষধবোৰ সাধাৰণতে শনিবাৰ, মঙ্গলবাৰে দিয়াৰ পৰম্পৰা আছে। কাণৰ বিষত কুণ্ডলী গছৰ লতাৰ তিনিটা আগ, নহৰু চাৰিফুটাৰে পিহি ৰস উলিয়াই গৰম কৰি চেকি কাণত দিলে বিষ ভাল হয়। চাহ গছৰ সৰু ঠানি চুঁচি পৰিষ্কাৰ কৰি জাৰিৰ ৰস উলিয়াই মিঠাতেলৰ লগত দাঁতৰ গুৰিতে লগালে বিষ কমে। কেঁচুৰা ল'ৰা-ছোৱালীক নহৰু তেল দি মালিছ কৰিলে কেঁচুৰাৰ শাৰীৰিক গঠন ভাল হয় বুলি বিশ্বাস আছে।

চাহ-জনগোষ্ঠীৰ লোকসমাজত মন্ত্ৰ-চিকিৎসা অৰ্থাৎ ঝাঁৰ-ফুকৰ বিশ্বাস বৰ্তমানেও আছে। ঝাঁৰ-ফুক কৰা ব্যক্তিজনক অঝা বা বেজ বুলি কোৱা হয়।

সাপেখুঁতা, জ্বৰ, ভূত-লম্ভা জাতীয় ৰোগৰ ক্ষেত্ৰত ৰোগীক জৰা হয়। বিহলঙনী, বাঢ়নী, কেঁচুমতা, সৰিয়হ, ফুল, জলকীয়া আদি সামগ্ৰীৰে ৰোগীক জৰা হয়। ভৰিৰ বিষ হ'লে মঙ্গলবাৰ বা শণিবৰে বাহী চোতাল সৰা বাঢ়নীৰ তিনিডাল কাঠি লৈ ৰোগীৰ ভৰি হালৰ ওপৰৰ পৰা তললৈ জৰা হয়। চাহ-জনগোষ্ঠীৰ সমাজত বেজে জাৰি দিয়া সামগ্ৰী ব্যৱহাৰ কৰিলে ৰোগ নিৰাময় হয় বুলি বিশ্বাস আছে, এই সামগ্ৰীৰ ভিতৰত তেল, পানী, কাপোৰ, তাবিজ

খাদ্যবস্তু প্রধান। মুখ লাগিলে পানী জাৰি খাবলৈ দিয়া হয়। ৰোগ বিশেষে পূজা-পাত লো বেজে কৰে। কুমন্ত্রজনিত ৰোগ, গাভৰুৰ গোপণীয় ৰোগ, সন্তান সম্ভৱা নোহোৱা আদিত বেজে গোপনে পূজা-পাতল কৰে। অঝা বা বেজ অনুসৰি লোক-ঔষধ দিয়াৰ দিনবাৰ ভিন্ন। কিছুমান অঝাই 'ঝুপা উঠা'ৰ যোগেদি ৰোগ নির্ণয় কৰে। প্রতিজন অঝাৰ ঘৰতে নির্দিষ্ট দেৱ-দেৱীৰ পূজা-অর্চনা কৰা হয়। চাউল, ফুল, পানী আদিত ৰোগ বাছনি কৰাও দেখা যায়।

চাহ-জনগোষ্ঠীৰ লোকসমাজত ডাইনী বৃত্তি প্রচলন লোকবিশ্বাস আছে। সাধাৰণতে অঝা বা বেজবোৰৰ মাজৰ দুই একে ডাইনী পোহে বুলি তেওঁলোকৰ বিশ্বাস। পুৰুষৰ তুলনাত মহিলাই ডাইনী বৃত্তি গ্রহণ কৰে বুলি ধাৰণা আছে। লোকবিশ্বাস অনুসৰি দেৱালীত অর্থাৎ অমাৱস্যাত ডাইনীয়ে বেছিকৈ কুবিদ্যা কৰিব পাৰে, গতিকে সেইদিনা বাহিৰত একো বস্তু নথয়। ডাইনীবিদ্যা সম্পর্কে বহুতো প্রবাদ, লোকবিশ্বাস চাহ-জনগোষ্ঠীৰ মাজত আছে। ওৰাং, চাওঁতাল আদি সম্প্রদায়ৰ মাজত এই বৃত্তি প্রচলনৰ কথা পোৱা যায়। বিজ্ঞানৰ যুগত বর্তমানেও এই ডাইনী প্রথাৰ লোকবিশ্বাসসমূহ সম্পূর্ণকৈ নাইকীয়া হৈ পৰা নাই।

৬.০০ লোকধর্ম ঃ

চাহ-জনগোষ্ঠীয় লোকসমাজত মূল্যবোধ, বিশ্বাস, আচৰণৰ একত্রীকৰণক লোকধর্ম আখ্যা দিব পাৰি। বিভিন্ন গোষ্ঠীৰ সংমিশ্রণত গঢ় লৈ উঠা এই চাহ-জনগোষ্ঠীয় সমাজখনত সংস্কৃতিৰ বিচিত্রতা দেখা যায়। গতিকে এনে এখন সমাজত মূল্যবোধ, বিশ্বাস, আচৰণৰ ভিন্নতা পৰিলক্ষিত হয়।

সম্প্রদায়ভেদে সকলোৱে নিজা নিজা ৰীতি বহন কৰি আহিছে। উদাহৰণস্বৰূপে উড়িয়া সকলে চামুণ্ডী, চণ্ডী, ত্রিনাথ মেলাৰ আয়োজন কৰে। চাওঁতাল সকলে সিং বোংগা নামৰ দেৱতাক বিশ্বাস কৰে আৰু সেই দেৱতাৰ আৰাধনা কৰে। চাহ-জনগোষ্ঠীৰ লোকসকলৰ মাজত বহুতো খ্রীষ্টান ধর্মাৱলম্বী লোক আছে, যিয়ে বৰদিন আড়ম্বৰপূর্ণভাৱে পালন কৰে।

চাহ-জনগোষ্ঠীয় লোক সমাজত সম্প্রদায়ভেদে ভিন ভিন উপাস্য দেৱ-দেৱী, আচাৰ-আচৰণ, লোকবিশ্বাস আছে। তাৰ ভিতৰত কিছুমান দেৱ-দেৱী হৈছে—কালী, মনসা, দুর্গা, শিৱ, পার্বতী, হনুমান, অনুকূল ঠাকুৰ, সূর্য আদি। ভিন ভিন উপাস্য দেৱীৰ আৰাধনাৰ আচাৰ-আচৰণতো পার্থক্য আছে। ওৰাংসকলে গ্রামপূজা, উড়িয়াসকলে দণ্ডপূজা, চাওঁতালসকলৰ অযোধ্যাপূজা, কন্ধসকলৰ দৌলযাত্রা, ভূমিজসকলৰ সঁহৰাই পৰৱ, খড়িয়াসকলৰ চাৰুল পৰৱ, হাৰি সকলৰ ফুছপূণীমা' ৰ পূজা ঘাঁচি, হাৰি, দন্দাসী সকলৰ মংলাপূজা ইত্যাদি উল্লেখযোগ্য। সম্প্রদায়ভেদে এই লোকসকলৰ মাজত ভিন ভিন মূল্যবোধ, বিশ্বাস, আচৰণ থাকিলেও অসমৰ সংস্কৃতিৰ সংমিশ্রণত চাহবাগিচাৰ অসমীয়া বুলি ৰীতি-নীতি, লোকবিশ্বাস পালনত সমন্বয় সাধন হৈছে। বর্তমান শংকৰদেৱৰ নৱবৈষ্ণৱ ধর্মৰ আদর্শও বহুতো চাহবাগিচাৰ লোকৰ মাজত প্রচলিত হৈছে।

৭.০০ উপসংহাৰ ঃ

অসমত এশ আঠটা চাহ-জনগোষ্ঠীয় সম্প্রদায়ে বসবাস কৰে। এই সম্প্রদায়সমূহৰ সামজিক লোকাচাৰ ভিন্ন হোৱাটো স্বাভাৱিক। এওঁলোকক ভাৰতৰ বিভিন্ন ৰাজ্যৰ পৰা চাহবাগিচাৰ বনুৱা হিচাপে অসমলৈ অনা হৈছিল। এই প্রত্যেক সম্প্রদায়ৰে আছে নিজা ভাষিক, সামাজিক, সাংস্কৃতিক ইতিহাস আছে। এনে ইতিহাসৰ স্বাক্ষৰ বহন কৰিও অসমৰ বুকুত এওঁলোকে সংস্কৃতিৰ আৰু এডাল ৰঙীণ সূঁতা গাঁঠি দি অসমৰ বাৰেৰহণীয়া সংস্কৃতিত স্থায়িত্ব বহন কৰাৰ উপৰিও অসমীয়া সমাজ-সংস্কৃতিও গ্রহণ কৰিছে। সামগ্রীকভাৱে অসমত চাহ-জনগোষ্ঠীয় সমাজৰ সংস্কৃতি গ্রহণ কৰি সমন্বয় সাধন কৰিছে।

'চাহ-জনগোষ্ঠীৰ সামাজিক লোকাচাৰ' শীর্ষক আলোচনাৰ জৰিয়তে তলত দিয়া সিদ্ধান্ত কেইটাত উপনীত হ'ব পৰা গ'ল—

১. চাহ-জনগোষ্ঠীৰ লোকসকলে মাতৃপূজাৰ ওপৰত বিশেষ গুৰুত্ব দিয়া দেখা যায়।

২. অসমৰ চাহ-জনগোষ্ঠীৰ লোকসকলৰ মাজত লোক ঔষধৰ প্রাধান্য বর্তমানেও কমা নাই। তেওঁলোকে বেজালী প্রবৃত্তিৰে বর্তমানেও বহু বেমাৰ ভাল হয় বুলি বিশ্বাস কৰে।

৩. চাহ-জনগোষ্ঠীয় সমাজত ডাইনী সম্পর্কীয় লোকবিশ্বাস বর্তমানেও পুহি ৰাখিছে। বহুতো ঠাইত বিজ্ঞানৰ পোহৰেও এই ডাইনী বিশ্বাস মযিমূৰ কৰিব পৰা হোৱা নাই।

৪. চাহ-জনগোষ্ঠীৰ লোকসকলৰ মাজত কুকুৰা যুঁজ বর্তমানেও অৱসৰ বিনোদনৰ খেল হিচাপে জনপ্রিয়। ❑

অন্ত্যটীকা ঃ

১. গনেশ চন্দ্র কুর্মী (সম্পা.) ঃ দেউৰাম তাছা ৰচনাৱলী, পৃ.১২৮

২. দেউৰাম তাছা ঃ চাহ-বাগিচাৰ পূজা পৰৱ, পৃ.৬৮

সহায়ক গ্রন্থপঞ্জী ঃ

১. অধিকাৰী, শুকদেৱ ঃ অসমৰ চাহ-জনগোষ্ঠী আৰু লোকজীৱন, জাগৰণ প্রকাশন, গুৱাহাটী, ২০১২

২. অধিকাৰী, শুকদেৱ ঃ চাহ-জনগোষ্ঠীৰ লোকগীত, লোক-পৰম্পৰা আৰু উৎসৱৰ ৰূপৰেখা, সৰস্বতী ডি.এন. প্রকাশন, গুৱাহাটী, ২০১৫

৩. কুর্মী, সুশীল ঃ চাহবাগিচাৰ কথা, অসম সাহিত্য সভা, যোৰহাট, প্রথম প্রকাশ, ১৯৮১

৪. কুর্মী, সুশীল ঃ চাহবাগিচাৰ জীৱন আৰু সংস্কৃতি, অসম সাহিত্য সভা, যোৰহাট, প্রথম প্রকাশ, ১৯৯১

৫. কুর্মী, জয়ৰামঃ সেউজ সংস্কৃতিৰ অৱলোকন, ইনজৰ প্রকাশন, শিৱসাগৰ, ২০১২

৬. তাছা, ডিম্বেশ্বৰ ঃ চাহ-জনগোষ্ঠীৰ সমাজ-সংস্কৃতি, অসম প্রকাশন পৰিষদ, গুৱাহাটী, ২০১২

৭. তাছা, দেউৰাম ঃ চাহবাগিচাৰ পূজা পৰৱ, অসম সাহিত্য সভা, যোৰহাট, প্রথম প্রকাশ, ১৯৮১

৮. বৰা, দেৱজিৎ (সম্পা.) ঃ উত্তৰ-পূর্বাঞ্চলৰ জনগোষ্ঠীয় লোক-সংস্কৃতি, এম.আৰ.পাব্লিকেশ্যন, গুৱাহাটী, প্রথম প্রকাশ, ২০১৪

৯. শর্মা দলৈ, হৰিনাথ ঃ বাৰেৰহণীয়া অসম, পদ্মপ্রিয়া লাইব্রেৰী, গুৱাহাটী, ২০০৩

আলোচনী ঃ

তাছা, কামাখ্যা প্রসাদ (সম্পা.) ঃ কেঁচা সোণা, অসম চাহ-জনজাতি ছাত্র সন্থাৰ কেন্দ্রীয় সম্বর্ধনা সভা উপলক্ষে প্রকাশিত স্মৃতি গ্রন্থ, সম্পাদক- কামাখ্যা প্রসাদ তাছা, ২০০০

তথ্যদাতাৰ তালিকা ঃ

ক্রমিক নং	নাম	বয়স	বৃত্তি
১.	অনিল পাণতাঁতী	৪৫	শিল্পী
২.	শুকুমাৰ মাঝি	৬০	বেজ
৩.	ৰাজেন পাতৰ	৬৫	অৱসৰপ্রাপ্ত শিক্ষক
৪.	কালু ভূমিজ	৫৬	চাহ শ্রমিক

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

প্ৰবন্ধ

অসমত উদ্যোগীকৰণৰ বিকাশত সত্ৰৰ ভূমিকা

শ্ৰীমতী উৰ্মিমালা মহন্ত

গৱেষক ছাত্ৰী
(কৃষ্ণকান্ত সন্দিকৈ ৰাজ্যিক মুক্ত বিশ্ববিদ্যালয়)
শুভম হেইটচ, জে-৭০৩
কাহিলিপাৰা, বৈদেশিক গৱেষণা
কাৰ্য্যালয়ৰ ওচৰত গুৱাহাটী-৭৮১০১৯
ম'বাইল ঃ ৮৬৩৮২৯২৬৫৯
ই-মেইল ঃ mahanta.urmimala@gmail.com

ড স্মৃতিশিখা চৌধুৰী

সহকাৰী অধ্যাপিকা
কৃষ্ণকান্ত সন্দিকৈ ৰাজ্যিক মুক্ত বিশ্ববিদ্যালয়
ই-মেইল ঃ smritichoudhury@kkhsou.in

সংক্ষিপ্ত সাৰ ঃ

অসমত নৱবৈষ্ণৱীয় আন্দোলনৰ প্ৰতিষ্ঠাপক শ্ৰীমন্ত শংকৰদেৱে সমাজলৈ এক নতুন ঢৌ কঢ়িয়াই আনিছিল যিয়ে অসমীয়া ইতিহাসৰ সমগ্ৰ গতিপথ সলনি কৰিছিল আৰু কঠোৰ দৃষ্টিভংগীক নতুন ব্যাপক ৰূপলৈ সলনি কৰি এক নতুন আধ্যাত্মিক নীতি-নিয়ম গঢ়ি তোলাত সহায় কৰিছিল আৰু সুস্থ সামাজিক আচৰণ দাঙি ধৰিছিল।

সমাজত জাতি, ধৰ্ম, বৰ্ণ বা অৰ্থনৈতিক মৰ্যাদা নিৰ্বিশেষে সকলোকে একত্ৰিত কৰি আপাত দৃষ্টিত বিশ্বাস কৰাই যে এই বিশ্বব্ৰহ্মাণ্ডত একমাত্ৰ পৰম শক্তি আছে যিটো হৈছে ভগৱান বিষ্ণু বা কৃষ্ণ। শ্ৰীমন্ত শংকৰদেৱে নিজৰ আধ্যাত্মিক আদৰ্শ আৰু মতাদৰ্শৰ সৈতে সমন্বয় আৰু ভাতৃত্ববোধেৰে জীয়াই থকাৰ এক শান্তিপূৰ্ণ আৰু সৌহাৰ্দ্যপূৰ্ণ পৰিৱেশ গঢ়ি তুলিব বিচাৰিছিল আৰু ৰাইজৰ মনত ভক্তি বা ভক্তিৰ আৱেগক আমন্ত্ৰণ জনাই, এই কথা মনত ৰাখি তেওঁ সত্ৰৰ সৃষ্টি কৰিছে (পঞ্চদশ শতিকাত শ্ৰীমন্ত শংকৰদেৱে সৃষ্টি কৰা মঠৰ দৰে সৰু অনানুষ্ঠানিক সংগঠন সত্ৰ)। সামাজিক আৰু আধ্যাত্মিক দিশৰ বাহিৰেও সত্ৰসমূহৰ ৰক্ষণাবেক্ষণ আৰু তেওঁলোকে আয় ক'ৰ পৰা আহৰণ কৰিব সেই উৎসসমূহৰ বাবে অৰ্থনৈতিক দিশৰ প্ৰতিও গুৰুত্বৰ চিন্তা আছিল। শংকৰদেৱে প্ৰতিখন সত্ৰতে উদ্যোগীকৰণৰ এক সুদৃঢ় ভেটি গঢ়ি তুলিছিল। ভাওনা (মঞ্চ প্ৰদৰ্শন), বাদ্যযন্ত্ৰ, মিউৰেল পেইন্টিং, বয়ন, পিতল আৰু ধাতু উদ্যোগ, কুটিৰ উদ্যোগ, দুগ্ধ উদ্যোগ, শীতল পাটি (কাৰ্পেট) নিৰ্মাণ, মৃৎশিল্প নিৰ্মাণৰ পৰা আৰম্ভ কৰি ইত্যাদি প্ৰতিখন সত্ৰই কেৱল সত্ৰৰ শিষ্যসকলকেই নহয়, পদ্ধতিগতভাৱে প্ৰশিক্ষণপ্ৰাপ্ত আৰু সজ্জিত গাঁৱৰ স্থানীয় লোকসকলকো জড়িত কৰি কিবা এটা উৎপাদন কৰাত নিয়োজিত আছিল। এই গৱেষণা পত্ৰখনৰ মূল উদ্দেশ্য হৈছে অসমৰ গ্ৰাম্য উদ্যোগীকৰণৰ প্ৰসাৰৰ ক্ষেত্ৰত সত্ৰৰ ভূমিকা অধ্যয়ন কৰা। এই অধ্যয়নটো প্ৰাথমিক আৰু গৌণ উভয় উৎসৰ ওপৰত ভিত্তি কৰি কৰা হৈছে। ব্যক্তিগতভাৱে মাজুলী (অসম)ৰ বিভিন্ন সত্ৰ পৰিদৰ্শন কৰি সাক্ষাৎকাৰৰ পৰা প্ৰাথমিক তথ্য সংগ্ৰহ কৰা হৈছিল। এই অধ্যয়নৰ বাবে "উত্তৰ কমলাবাৰী সত্ৰ" আৰু "গড়মুৰ সত্ৰ" বিবেচনা কৰা হৈছে।

মূল শব্দ ঃ

সত্র, গ্রাম্য উদ্যোগীকৰণ, বহনক্ষমতা, উত্তৰ কমলাবাৰী সত্র আৰু গড়মুৰ সত্র।

পাতনি ঃ

পঞ্চদশ শতিকাৰ মাজভাগত সমগ্র ভাৰত উপমহাদেশত বিয়পি পৰা ভক্তি আন্দোলনৰ ব্যাপক প্রভাৱ অসমতো মহান কিংবদন্তি সাধু শ্রীমন্ত শংকৰদেৱৰ সময়ত অনুভৱ কৰা হৈছিল। শংকৰদেৱৰ অনন্য সৃষ্টি আছিল সত্র প্রতিষ্ঠান আৰু নামঘৰ, যাৰ জৰিয়তে তেওঁ ধর্মীয়, সাংস্কৃতিক আৰু শৈক্ষিক কেন্দ্র হিচাপে কাম কৰিবলৈ আৰু সামাজিক অখণ্ডতা আৰু সাধাৰণ কল্যাণৰ প্রসাৰৰ বাবে বেনেডিক্টাইন মঠ কৰে। সেই অঞ্চলত কেঁচামালৰ উপলব্ধতাৰ ওপৰত ভিত্তি কৰি বিভিন্ন সত্রই বিভিন্ন বস্তু প্রস্তুত কৰাত নিয়োজিত হৈ থাকে। কেইবাখনো সত্রই শীতল পাটি (শীতল মেট) তৈয়াৰ কৰাত নিয়োজিত আছিল যিবোৰ সত্রসমূহত আৰু সাধাৰণ মানুহেও প্রার্থনা কৰাৰ সময়ত বা জিৰণি লৈ বহি থকাৰ সময়ত ব্যৱহাৰ কৰিছিল। মাজুলীৰ আউনীআটী সত্র আৰু কমলাবাৰী সত্রৰ দৰে বহু সত্রত আজিও বাঁহেৰে শীতল পাটি আৰু বিছনি (হাতৰ ফেন) বনোৱাৰ প্রথা প্রচলিত হৈ আছে, যাৰ ফলত পূৰ ভাৰতৰ যথেষ্ট সংখ্যক জনসংখ্যাই কর্মসংস্থাপন লাভ কৰিছে। শংকৰদেৱে আন বিভিন্ন ধৰণৰ বাদ্যযন্ত্র যেনে খোল, মৃদংগম, দবা, তাল আদি প্রৱর্তন কৰিছিল যিবোৰ বর্তমানেও অতি জনপ্রিয়। প্রতিখন সত্রৰ নিজস্ব কাৰুকার্য্যশৈলী থাকে আৰু এই বাদ্যযন্ত্রসমূহ নির্মাণ কৰি স্থানীয় বজাৰত বা বাহিৰৰ লোকৰ অর্ডাৰ অনুসৰি বিক্রী কৰি জীৱিকা উপার্জন কৰে (ৰাজকোৱা জে পি, ২০০৩)।

সাহিত্য পর্যালোচনা ঃ

সত্রৰ উদ্যোগীকৰণৰ কার্যকলাপৰ সৈতে জড়িত গৱেষণামূলক প্রৱন্ধ অতি কম হ'লেও বহু বিশিষ্ট পণ্ডিতে সত্রৰ অভিজ্ঞতাক কিছুমান গ্রন্থত সুন্দৰকৈ বর্ণনা কৰিছে। এই খণ্ডত আমি সেই কিতাপবোৰৰ আধাৰত সাহিত্য পর্যালোচনাৰ কথা উল্লেখ কৰিম।

(i). ড০ মহেশ্বৰ নেওগে (নেওগ এম, ২০১৮) শ্রীমন্ত শংকৰদেৱ আৰু তেওঁৰ সময়ৰ গ্রন্থত মহান সাধুজনৰ সময়ত সত্রৰ লোকসকলৰ জীৱিকাৰ অৱস্থাৰ ওপৰত পোহৰ পেলাইছে। উল্লেখ কৰা হৈছিল যে আত্মীয় বা সহানুভূতিশীল লোকৰ পৰা নগদ ধন বা নানা প্রকাৰৰ দান-বৰঙণি বিচৰাটো সত্রসমূহত প্রচলিত আছিল। জীৱিকাৰ অৱস্থা আৰু শ্রীমন্ত শংকৰদেৱৰ সময়ত অসমৰ সত্রসমূহৰ কলা আৰু কাৰুকার্য্যৰ অর্থনৈতিক জীৱনমুখীতা সম্পর্কীয় বিভিন্ন দিশ লেখকে সুন্দৰভাৱে উপস্থাপন কৰিছিল। য'ত তেওঁ নাটকীয় কলা আৰু কৌশল, পুতলা নাটক, আবৃত্তিমূলক পদ্য আৰু সাহিত্যৰ বিষয়ে উল্লেখ কৰিছে অংকীয়া ভাওনা বা নাটক, মাস্ক নির্মাণ, মিউৰেল পেইন্টিং, সাজ-পোছাক, অলংকাৰ আদি।

(ii). মিষ্টাৰ ৰাজখোৱাই (ৰাজখোৱা জে পি, ২০০৩) উল্লেখ কৰিছে যে শংকৰদেৱে অসমৰ সত্রসমূহৰ জীৱন-যাপনৰ অৱস্থাৰ প্রতি নতুন দৃষ্টিভংগী দি আৰু তেওঁৰ দ্বাৰা গ্রহণ কৰা কেইবাটাও পদক্ষেপেৰে প্রত্যক্ষ আৰু পৰোক্ষ দুয়োটা দিশতে সহায় কৰি নিজৰ সময়ৰ অর্থনীতিত কেনেদৰে অপৰিসীম অৱদান আগবঢ়াইছিল। তেওঁ কয় যে শংকৰদেৱ কুটিৰ উদ্যোগৰ এজন মহান প্রচাৰক আছিল আৰু এইদৰে বয়নক যথাযথ গুৰুত্ব দিছিল যিটো বিখ্যাত বৃন্দাবনী বস্ত্রৰ কামৰ পৰা স্পষ্ট যিটো ১২০ হাত দীঘল আৰু ৬০ হাত বহল আছিল (দুটা হাট এক গজৰ সমান)। তেওঁ নিজেই তাঁতিকুছিৰ শিপিনীসকলক প্রশিক্ষণ দি এই অসাধাৰণ বস্ত্রখন তৈয়াৰ কৰিছিল, য'ত সমগ্র কৃষ্ণ - লীলাক ক্রমাগতভাৱে চিত্রিত কৰা হৈছিল। ৰাজখোৱাই কোৱাৰ দৰে শংকৰদেৱৰ আন এক গুৰুত্বপূর্ণ অৱদান হ'ল বজৰাৱলী ভাষাত অংকীয়া ভাওনা বা নাট নামৰ নাটকৰ ৰচনা। শংকৰদেৱে নাম কীর্তনত সার্বজনীনভাৱে ব্যৱহৃত তাল বা জংঘলৰ দৰে বিভিন্ন ধৰণৰ বাদ্যযন্ত্রৰ প্রৱর্তন কৰি পিতল আৰু ধাতু উদ্যোগক প্রসাৰিত কৰিছিল। আজিও বহু সত্রই জীৱিকা উপার্জনৰ বাবে জংঘল নির্মাণৰ অভ্যাস কৰে। আন বিভিন্ন ধৰণৰ পিতল আৰু বেল ধাতুৰ সামগ্রী যেনে বান কাহি, ৰূপৰ লুটা, ঘটি, চৰাই, তামৰ কলহ (তামৰ পৰা তৈয়াৰী পানীৰ জগৰ প্রকাৰ), বৰকাহি (তামৰ ডাঙৰ বাচন) তৈয়াৰ কৰা হৈছিল। আজিও অসমৰ কেইবাখনো সত্রত এই উদ্যোগৰ ৰূপটো ফুলি উঠিছে।

(iii). ড এছ এন শর্মা (Sarma. S.N, 1966)ৰ গ্রন্থখন অসমৰ নৱবৈষ্ণৱী সংস্কৃতি আৰু সত্রৰ অনুষ্ঠান আৰু ইয়াৰ ধর্মীয়, সামাজিক আৰু অর্থনৈতিক কার্যকলাপৰ ওপৰত

নিহিত হৈ থকা এই প্ৰতিষ্ঠানসমূহৰ গুৰুত্ব সম্পৰ্কে এক মাষ্টাৰ-ৱৰ্ক, যিয়ে এক প্ৰাঞ্জল ধাৰণা দিয়ে তেওঁলোকৰ জীৱিকাৰ অৱস্থাৰ বিষয়ে। ইয়াত উল্লেখ কৰা হৈছে যে সত্ৰ চৌহদৰ ভিতৰত বাস কৰা বৈবাহিকসকলে নিজৰ হাতেৰে কাম কৰিব লাগিছিল আৰু নিজৰ বাবে ৰন্ধা-বঢ়া আৰু ধোৱাৰ প্ৰয়োজনীয় কামবোৰ কৰিব লাগিছিল। বিভিন্ন প্ৰাৰ্থনা সেৱাৰ মাজৰ ব্যৱধানসমূহ গছ ৰোপণ, হস্তশিল্প আদি বিভিন্ন ধৰণৰ কামত নিজকে নিয়োজিত কৰি ব্যৱহাৰ কৰা হৈছিল।এই গ্ৰন্থখনে দেখুৱাইছে যে সত্ৰৰ প্ৰতিষ্ঠানসমূহৰ গুৰুত্ব কেৱল ইয়াৰ ধৰ্মীয় অপপ্ৰচাৰ আৰু কাৰ্য্যকলাপৰ ওপৰত নিৰ্ভৰশীল নহয় ৰৰঞ্চ ইয়াৰ ক্ষেত্ৰতো বহুখিনি অৰিহণা যোগাইছে অসমীয়া মানুহৰ সাংস্কৃতিক বিকাশ। ই এক চহকী সাহিত্য প্ৰদান কৰিছিল, ৰৰগীত আৰু সত্ৰীয়া নৃত্যৰ দৰে শাস্ত্ৰীয় সংগীতৰ কলাক পুনৰুজ্জীৱিত আৰু জনপ্ৰিয় কৰি তুলিছিল, ভাওনাৰ ৰূপত নাটকীয় পৰিবেশনৰ প্ৰৱৰ্তন কৰিছিল, হস্তশিল্পক উৎসাহিত কৰিছিল আৰু পাণ্ডুলিপি চিত্ৰকলাৰ কলাৰ প্ৰৱৰ্তন কৰিছিল ইত্যাদি। ইয়াত সামাজিকভাৱে পিছপৰা লোকসকলক তেওঁলোকৰ জীৱিকাৰ অৱস্থা উন্নত কৰি জীৱন যাপনৰ উন্নত অৰ্থ প্ৰদান কৰি তেওঁলোকৰ সন্মুখত জীৱনৰ উন্নত আৰু উচ্চ আৰু সুস্থ আচৰণ উপস্থাপন কৰি উন্নীতকৰণৰ কথা লক্ষ্য কৰা হৈছে।

(iv). শ্ৰীশ্ৰী আউনী আটী সত্ৰ, মাজুলীৰ বৰ্তমানৰ সত্ৰাধিকাৰ ড পীতাম্বৰ দেৱ গোস্বামী (গোস্বামী পি. ডি. ২০১৬) বৰ্তমান পৰিৱৰ্তিত সামাজিক অৱস্থাত শংকৰদেৱৰ ধৰ্ম দৰ্শনৰ প্ৰাসংগিকতা সম্পৰ্কে আমাক এক ধাৰণা দিছে। তেওঁ উল্লেখ কৰে যে শংকৰদেৱে শিল্পকৰ্মৰ জৰিয়তে ধন সৃষ্টি আৰু নিজৰ জীৱিকা উপাৰ্জনৰ উদাহৰণ দাঙি ধৰিছিল। তেওঁ বিশ্বক দেখুৱাইছিল যে প্ৰকৃতি, কৰ্ম আৰু জীৱন-যাপনৰ পৰিস্থিতি কেনেকৈ উন্নত ভৱিষ্যত গঢ়ি তোলাৰ বাবে একেলগে যাব পাৰে। তেওঁ অসমীয়া সমাজখনক স্বাৱলম্বী কৰি তোলাৰ লগতে সত্ৰৰ লোকসকলৰ সামাজিক জীৱন সুস্থিৰ কৰি তোলাত সহায় কৰিছিল।

(v). Cheolwoo Park (2017), কোৰিয়াত কৰা তেওঁৰ অধ্যয়নত উল্লেখ কৰিছে যে, যুৱক-যুৱতীসকলে উদ্যোগীকৰণৰ দ্বাৰা কৰিব পৰা আত্মসহায়কতাৰ গুৰুত্ব উপলব্ধি কৰিব লাগে আৰু উদ্যোগীকৰণৰ বিকাশৰ সুবিধা আৰু প্ৰভাৱৰ বিষয়ে জানিব লাগে যাতে আয় আৰু ৰাজহ আহৰণ কৰা হয় তেওঁলোকৰ পৰিৱেশত উপলব্ধ সকলো সম্পদ আৰু উৎপাদনৰ কাৰকৰ সঠিক ব্যৱহাৰৰ জৰিয়তে। উদ্ভাৱনী ক্ষমতা, উদ্যমী মনোভাৱ, বিপদ লোৱাৰ ক্ষমতাৰ দ্বাৰা তেওঁলোকে ব্যৱসায়, জীৱন আৰু অৰ্থনীতিত নতুন মূল্য

সংযোজন কৰিব পাৰে। লেখকে এইটোও মত প্ৰকাশ কৰিছে যে সময়ৰ প্ৰয়োজনীয়তাৰ প্ৰতি সঁহাৰি জনাই চোৱাংচোৱা তথ্য উদ্যোগক প্ৰসাৰিত কৰিব লাগে আৰু বিশ্বৰ প্ৰতিযোগিতামূলক ক্ষমতা বৃদ্ধি কৰিব লাগে। এই দিশটো লক্ষ্য ৰাখি আৰু সাহিত্য পৰ্যালোচনাৰ ভিত্তিত তলত দিয়া উদ্দেশ্যৰ ওপৰত ভিত্তি কৰি এই অধ্যয়ন কৰা হৈছে।

পঞ্চদশ শতিকাৰ পৰা সত্ৰৰ জৰিয়তে অসমৰ গ্ৰাম্য উদ্যোগীকৰণৰ বিকাশৰ বিষয়ে অধ্যয়ন কৰা পদ্ধতিঃ

এই অধ্যয়নৰ বাবে গ্ৰহণ কৰা পদ্ধতিটো প্ৰাথমিক আৰু মাধ্যমিক দুয়োটা তথ্যৰ ওপৰত ভিত্তি কৰি কৰা হৈছে। অসমৰ দুখন সত্ৰ ক্ৰমে গড়মুৰ সত্ৰ আৰু উত্তৰ কমলাবাৰী সত্ৰত অনুষ্ঠিত সাক্ষাৎকাৰৰ পৰা প্ৰাথমিক তথ্য সংগ্ৰহ কৰা হৈছিল। প্ৰতিখন সত্ৰৰ অধীনত সত্ৰ সমিতিৰ সদস্যসকলৰ মাজত সাক্ষাৎকাৰ লোৱা হৈছিল। গৌণ তথ্যসমূহ অসমৰ বিশিষ্ট গ্ৰন্থসমূহৰ পৰা সংগ্ৰহ কৰা হৈছিল য'ত সত্ৰসমূহৰ দৃশ্যপটসমূহ সুন্দৰকৈ চিত্ৰিত কৰা হৈছিল আৰু এই গ্ৰন্থসমূহৰ প্ৰকাশ ১৯৬৬ চনৰ পৰা ২০১৬ চনলৈকে।

সত্ৰসমূহৰ জীৱিকাৰ বিষয়সমূহ— ধাৰণাটোৰ এক আভাস ঃ

ভাৰতৰ দৰে দেশৰ বাবে জীৱিকাৰ সমস্যা দেশৰ উন্নয়ন আৰু বহনক্ষমতাৰ বাবে অন্যতম প্ৰধান চিন্তা। জীৱিকা হৈছে জীৱিকাৰ মাধ্যম (www.ifrc.org)। ই হৈছে অৰ্থনৈতিক কাৰ্য্যকলাপৰ এটা গোট, য'ত নিজৰ আৰু ঘৰৰ প্ৰয়োজনীয়তা পূৰণৰ বাবে পৰ্যাপ্ত সম্পদ সৃষ্টি কৰিবলৈ নিজৰ এনডাউমেণ্ট ব্যৱহাৰ কৰি আত্মনিয়োগ বা মজুৰি-নিয়োগ জড়িত হৈ থাকে, সাধাৰণতে বাৰে বাৰে কৰা হয় আৰু সেইবাবেই ই এক জীৱনশৈলীত পৰিণত হয়। অসমত প্ৰায় পাঁচশ সত্ৰই নিজৰ কাম-কাজ সম্পাদন

কৰি আছিল। এই সত্রসমূহৰ কিছুমানৰ অৱস্থা ভাল আছিল যদিও ইয়াৰে কিছুমানৰ উন্নয়নমূলক হস্তক্ষেপৰ প্ৰয়োজন। এই অধ্যয়নত তেওঁলোকে কেনেদৰে গ্ৰাম্য অসমত উদ্যোগীকৰণৰ মনোভাৱক প্ৰসাৰিত কৰিছে সেয়া চাবলৈ প্ৰয়াস কৰা হৈছে।

সত্রসমূহৰ প্ৰাৰম্ভিক বিকাশৰ পৰ্যায়ঃ

শ্ৰীমন্ত শংকৰদেৱে নিজৰ সময়ত অসমৰ সত্রসমূহৰ অৰ্থনৈতিক উত্থানত বহু পৰিমাণে অৱদান আগবঢ়াইছিল আৰু সত্র আৰু কাষৰীয়া অঞ্চলৰ জনসাধাৰণৰ জীৱন ধাৰণৰ মান বৃদ্ধিৰ পথ প্ৰশস্ত কৰিছিল। এই ধৰ্মীয় আৰু সামাজিক অনুষ্ঠানসমূহৰ আৰ্থ-সামাজিক অৱস্থাই গতি লাভ কৰি সমান্তৰালভাৱে অসমৰ সত্রসমূহৰ কলা আৰু কাৰুকাৰ্য্যৰ অৰ্থনৈতিক জীৱনমুখীতাও বিকশিত হ'বলৈ ধৰিলে (Neog M., 2018)। মহান কিংবদন্তিজনে প্ৰৱৰ্তন কৰা মতে কুটিৰ উদ্যোগে এক বৃহৎ গতি লাভ কৰিছিল। তেওঁৰ প্ৰথম নাট্য সৃষ্টি চিহ্না যাত্ৰাৰ মঞ্চায়নৰ জৰিয়তে ধৰ্মীয়, নাট্যৰ লগতে ঘৰুৱা ব্যৱহাৰৰ বিভিন্ন সামগ্ৰীৰ উৎপাদনত উৎসাহ যোগাইছিল যিটো চিত্ৰকলাৰ জৰিয়তে বৈকুণ্ঠৰ নাটকীয় উপস্থাপন আছিল। মাজুলী আৰু শিৱসাগৰৰ বহু সত্রত আজিও এইবোৰ প্ৰচলিত হৈ আছে। সত্রসমূহৰ জনসাধাৰণৰ অনন্য কাৰুকাৰ্য্যৰ নিখুঁত নিদৰ্শন হ'ল কমলাবাৰী সত্রত নিৰ্মিত খেল নাও নামৰ বিশাল ক্ৰীড়া নাওখন যিখন আজিও গুৱাহাটীৰ ৰাজ্যিক সংগ্ৰহালয়ৰ চৌহদত প্ৰদৰ্শিত হৈ আছে। ভাস্কৰ্য্য আৰু স্থাপত্য সৃষ্টিৰ কামত নিয়োজিত আছিল শিপিনীজনে নাম ঘৰৰ বিভিন্ন ছবি, মূৰ্তি, খুঁটাত, দেৱালৰ চিলিঙৰ ডিজাইন আৰু নিৰ্মাণৰ কাম কৰিছিল। নাম ঘৰৰ সন্মুখত বা সত্রৰ প্ৰৱেশদ্বাৰত প্ৰকাণ্ড প্ৰকাণ্ড তোৰণৰ গেট বা সুন্দৰ ডিজাইনৰ টোৰাণ নিৰ্মাণৰ কামতো ব্যস্ত আছিল যিটো মানুহৰ উপাৰ্জনৰ ডাঙৰ উৎস আছিল।

স্থানীয় ৰাইজৰ বাবে কৰ্মসংস্থাপনৰ সুযোগো সৃষ্টি কৰিছিল। শংকৰদেৱ আৰু তেওঁৰ অনুগামীসকলে অসমৰ ৰেচম ব্যৱহাৰ কৰি ডাঙৰ ৰূপত আৰু অতি জনপ্ৰিয় মুগা, এৰী আৰু পাটৰ দৰে বিভিন্ন সূতা প্ৰস্তুত কৰি ধাৰাবাহিক খেতিৰ পৃষ্ঠপোষকতা কৰিছিল। সেই সময়ত বহু সত্রত ৰেচম পালনৰ প্ৰচলন আছিল। গামুছা নামৰ অতি জনপ্ৰিয় অসমীয়া পৰম্পৰাগত টাৱেলখন সেই সময়ৰ পৰাই অসংখ্য ধৰণৰ ডিজাইনৰে তৈয়াৰ কৰা হৈছিল। গামুছা নিৰ্মাণে সত্রৰ লোকসকলক উপাৰ্জনৰ ভাল উৎস প্ৰদান কৰিছিল আৰু মহিলা লোকসকলে বয়ন উদ্যোগত জড়িত হৈছিল যিয়ে বৃহৎ সংখ্যক লোকক কৰ্মসংস্থাপনৰ সুযোগ প্ৰদান কৰে।

সত্রসমূহৰ আধুনিক বিকাশৰ পৰ্যায় ঃ

পিছৰ বছৰবোৰত দেখা গ'ল যে গুৰু বা গুৰু বা অনুষ্ঠানটোৰ মুৰব্বীক নিয়মীয়াকৈ কৰ দিয়াৰ পৰম্পৰা গঢ় লৈ উঠিছিল যাক গুৰু-কাৰ বুলি কোৱা হৈছিল। আনকি ভাৰতীয় শাস্ত্ৰীয় নৃত্য হিচাপে গণ্য কৰা সত্ৰীয়া নৃত্যৰ দৰে সত্ৰীয়া কলা আৰু সংস্কৃতিৰ ওপৰত ছাত্ৰ-ছাত্ৰীক প্ৰশিক্ষণ দি আৰু ছাত্ৰ-ছাত্ৰীক বৰগীত আৰু অন্যান্য বাদ্যযন্ত্ৰ যেনে খুল, তাল আৰু বাহী আদি সংগীত ৰূপৰ প্ৰশিক্ষণ দিও সত্রসমূহৰ টিউটৰ বা প্ৰতিষ্ঠাপকসকলে প্ৰদান কৰিব পাৰে সত্ৰীয়া সংস্কৃতিৰ ওপৰতজ্ঞ ানে একে সময়তে জীৱন-যাপনৰ এটা ভাল উৎস উপাৰ্জন কৰে। দেখা যায় যে শংকৰদেৱৰ প্ৰতিটো সৃষ্টি, সেয়া সংগীত হওক, নাটক হওক, যোগ হওক, চিত্ৰই হওক, ভাওনা হওক বা যিকোনো ধৰণৰ পণ্ডিত বা দাৰ্শনিক ৰচনাই সত্রসমূহত প্ৰৱৰ্তন কৰা আজিও প্ৰচলিত হৈ আছে আৰু তেওঁৰ শিষ্যসকলক অৰ্থনৈতিকভাৱে স্বৰূপ হোৱাৰ পথ প্ৰশস্ত কৰিছে self-sufficient এই প্ৰক্ৰিয়াই সত্রসমূহক অৰ্থনৈতিকভাৱে কাৰ্য্যক্ষম একক কৰি তুলিছে। উদাহৰণ স্বৰূপে শিৱসাগৰৰ খাটপাৰ সত্র আৰু মাজুলীৰ সমগুৰি সত্রত আজিও প্ৰচলিত এই মুখা নিৰ্মাণ শিল্পৰূপে বিশ্বজুৰি স্বীকৃতি লাভ কৰি আছে। অসমৰ গ্ৰাম্য উদ্যোগীকৰণৰ আৰ্হি হিচাপে সত্র আন আন উদ্যোগীকৰণৰ দৰে গ্ৰাম্য উদ্যোগীকৰণেও বিভিন্ন মানুহৰ মনত বিভিন্ন অৰ্থ ৰচনা কৰে। গ্ৰাম্য উদ্যোগীকৰণক গ্ৰাম্য অঞ্চলত উদীয়মান উদ্যোগীকৰণ বুলি সংজ্ঞায়িত কৰিব পাৰি। খাদী আৰু গ্ৰামোদ্যোগ আয়োগৰ (কেভিচি) মতে,- গাঁও উদ্যোগ বা গ্ৰাম্য উদ্যোগ মানে গ্ৰাম্য অঞ্চলত অৱস্থিত যিকোনো উদ্যোগ, যাৰ জনসংখ্যা ১০,০০০ তকৈ অধিক নহয় বা এনে আন সংখ্যা যিয়ে কোনো সামগ্ৰী উৎপাদন কৰে বা শক্তিৰ ব্যৱহাৰৰ সৈতে বা অবিহনে কোনো সেৱা আগবঢ়ায় আৰু য'ত

এজন শিল্পী বা শ্রমিকৰ প্রতিজনৰ বাবে নির্দিষ্ট মূলধনী বিনিয়োগ কৰা দেখা যায় যে শংকৰদেৱৰ প্রতিটো সৃষ্টি, সেয়া সংগীত হওক, নাটক হওক, যোগ হওক, চিত্রই হওক, ভাওনা হওক বা যিকোনো ধৰণৰ পণ্ডিত বা দার্শনিক ৰচনাই সত্রসমূহত প্রৱর্তন কৰা আজিও প্রচলিত হৈ আছে আৰু তেওঁৰ শিষ্যসকলক অর্থনৈতিকভাৱে স্বৰূপ হোৱাৰ পথ প্রশস্ত কৰিছে আত্ম-নির্ভৰশীল এই প্রক্রিয়াই সত্রসমূহক অর্থনৈতিকভাৱে কার্য্যক্ষম একক কৰি তুলিছে। উদাহৰণ স্বৰূপে শিৱসাগৰৰ খাটপাৰ সত্র আৰু মাজুলীৰ চামগুৰি সত্রত আজিও প্রচলিত এই মুখা নির্মাণ শিল্পৰূপে বিশ্বজুৰি স্বীকৃতি লাভ কৰি আছে। অসমৰ গ্রাম্য উদ্যোগীকৰণৰ আর্হি হিচাপে সত্র আন আন উদ্যোগীকৰণৰ দৰে গ্রাম্য উদ্যোগীকৰণেও বিভিন্ন মানুহৰ মনত বিভিন্ন অর্থ ৰচনা কৰে। গ্রাম্য উদ্যোগীকৰণক গ্রাম্য অঞ্চলত উদীয়মান উদ্যোগীকৰণ বুলি সংজ্ঞায়িত কৰিব পাৰি। খাদী আৰু গ্রামোদ্যোগ আয়োগৰ (কেভিচি) মতে,- গাঁও উদ্যোগ বা গ্রাম্য উদ্যোগ মানে গ্রাম্য অঞ্চলত অৱস্থিত যিকোনো উদ্যোগ, যাৰ জনসংখ্যা ১০,০০০ তকৈ অধিক নহয় বা এনে আন সংখ্যা যিয়ে কোনো সামগ্রী উৎপাদন কৰে বা শক্তিৰ ব্যৱহাৰৰ সৈতে বা অবিহনে কোনো সেৱা আগবঢ়ায় আৰু য'ত এজন শিল্পী বা শ্রমিকৰ প্রতিজনৰ বাবে নির্দিষ্ট মূলধনী বিনিয়োগ হাজাৰ টকাৰ অধিক নহয়" (খাংকা.এছ.এছ., ২০০২)। শ্রম উদ্যোগসমূহ শ্রম নিবিড় হোৱাৰ বাবে, নিয়োগ সৃষ্টিৰ ক্ষেত্রত উচ্চ সম্ভাৱনা থকাৰ বাবে অনুন্নত দেশসমূহত গ্রাম্য উদ্যোগীকৰণৰ অতি প্রয়োজন। কর্মসংস্থাপন প্রদান কৰি এই উদ্যোগসমূহেও গ্রাম্যাঞ্চলত আয় আহৰণৰ সম্ভাৱনা অধিক। ইয়াৰ দ্বাৰা গ্রাম্য আৰু চহৰৰ মাজত আয়ৰ বৈষম্য হ্রাস কৰাত সহায় হয়। এই উদ্যোগসমূহে গাঁও বা দুর্গম অঞ্চলত অর্থনৈতিক কার্যকলাপৰ বিচ্ছিন্নতাক উৎসাহিত কৰে যাৰ ফলত সুষম আঞ্চলিক উন্নয়নক প্রসাৰিত কৰা হয়। গ্রাম্য উদ্যোগীকৰণৰ সহায়ত গাঁও গণৰাজ্যসমূহো গঢ়ি তোলা হয় আৰু দেশৰ কলা আৰু সৃষ্টিশীলতা আৰু চহকী ঐতিহ্যৰ প্রসাৰৰ ক্ষেত্রত সহায় কৰে। এই প্রক্রিয়াই গ্রাম্য-নগৰীয়া প্রব্রজন ৰোধ কৰাত সহায় কৰিব পাৰে আৰু বস্তিৰ বৃদ্ধি,

/

সামাজিক উত্তেজনা আৰু বায়ুমণ্ডল প্ৰদূষণ হ্ৰাস কৰি চহৰসমূহত অসমতাপূৰ্ণ বৃদ্ধি হ্ৰাস কৰিব পাৰে। শেষত, গ্ৰাম্য উদ্যোগীকৰণ বা উদ্যোগসমূহ পৰিৱেশ অনুকূ ল হোৱাৰ বাবে ধ্বংস নোহোৱাকৈ উন্নয়ন হ'ব পাৰে অৰ্থাৎ সেই সময়ৰ আটাইতকৈ আকাংক্ষিত যদিও সত্ৰসমূহে অসমৰ বহু দুৰ্গম অঞ্চলত গ্ৰাম্য উদ্যোগীকৰণৰ বিকাশ ঘটাইছে, সেয়া সংগঠিতভাৱে নহয়। তেওঁলোকে উদ্যোগীকৰণৰ ব্যাপক প্ৰচাৰ কৰিছে, কিন্তু মূলতঃ ব্যৱসায় সম্প্ৰসাৰণ কৰাতকৈ নিজৰ জীৱিকা পূৰণৰ বাবে। উদ্যোগীকৰণ বিকাশৰ বাবে চেলউ পাৰ্কে (২০১৭) কোৱাৰ দৰে যুৱক- যুৱতীসকলে আইচিটি দক্ষতাৰ সৈতে আহিব লাগে যিয়ে দেশৰ অৰ্থনৈতিক উন্নয়নত সহায় কৰিব, কিন্তু আমি সত্ৰসমূহত কোনো আধুনিক প্ৰযুক্তি বা আইচিটি ভিত্তিক সঁজুলিৰ ব্যৱহাৰ দেখা নাই তেওঁলোকৰ সামগ্ৰী আৰু সেৱা। তলৰ খণ্ডটোত আমি দুটা সত্ৰৰ পৰা উদাহৰণ দি এই ক্ষেত্ৰত সত্ৰসমূহে কেনেদৰে কাম কৰি আছে সেই বিষয়ে আলোচনা কৰিম। সত্ৰসমূহ, উদ্যোগীতা আৰু অৰ্থনৈতিক উন্নয়ন। শংকৰদেৱে ৫০০ বছৰ পূৰ্বে গ্ৰাম্য অসমত উদ্যোগীকৰণৰ কাম আৰম্ভ কৰিছিল। নাম কীৰ্তনত সাৰ্বজনীনভাৱে ব্যৱহৃত তাল বা জংঘলৰ দৰে বিভিন্ন ধৰণৰ বাদ্যযন্ত্ৰৰ প্ৰৱৰ্তন কৰি তেওঁ পিতল আৰু ধাতু উদ্যোগক প্ৰসাৰিত কৰিছিল। আজিও বহু সত্ৰই জীৱিকা উপাৰ্জনৰ বাবে জংঘল নিৰ্মাণৰ অভ্যাস কৰে। আন বিভিন্ন ধৰণৰ পিতল আৰু বেল ধাতুৰ সামগ্ৰী যেনে- বান কাহি, ৰূপৰ লুটা, ঘটি, চৰাই, তামৰ কলহ (তামৰ পৰা তৈয়াৰী পানীৰ জগৰ প্ৰকাৰ), বৰকাহি (তামৰ ডাঙৰ বাচন) তৈয়াৰ কৰা হৈছিল। আজিও অসমৰ কেইবাখনো সত্ৰত এই উদ্যোগৰ ৰূপটো ফুলি উঠিছে। সত্ৰসমূহৰ পেছাদাৰী শিল্পীসকলে আন বিভিন্ন ঘৰুৱা সামগ্ৰী নিৰ্মাণ কৰি আছিল আৰু এই পৰম্পৰা এতিয়াও চলি আছে। জীৱিকা আৰু অৰ্থনীতিৰ উৎস মূলতঃ অসমৰ সত্ৰসমূহৰ কৃষি। যি মাটিৰ পৰা কৃষি উৎপাদিত সামগ্ৰী বিক্ৰী কৰি উপাৰ্জন কৰে। সত্ৰসমূহে সেই মাটিখিনি স্থানীয় অঞ্চলৰ মিছিং জনজাতিসকলক ধান, চুপাৰি, শাক-পাচলি আদি খেতি কৰিবলৈ দিয়ে।শিষ্যসকলৰ আন আন জীৱিকাৰ উৎস হ'ল হ'ৱন ভোজন, অৱিহণা, ব্যক্তিগত ব্যৱসায়, চাকৰি, ফেনৰ দৰে বাঁহৰ সামগ্ৰী তৈয়াৰ কৰি পোৱা উপাৰ্জন ।

অতি কোমল বয়সৰ পৰাই যেতিয়া শিষ্যসকলক সত্ৰলৈ অনা হয়, তেতিয়াৰ পৰাই তেওঁলোকক বিশেষ শিক্ষক বা গুৰুৰ অধীনত প্ৰতিটো শাখা আৰু কলাৰ প্ৰশিক্ষণ দিয়া হয়। সময়ে সময়ে তেওঁলোকক ব্যক্তিগতভাৱে পৰ্যবেক্ষণ আৰু জল্পনা-কল্পনা কৰা হয় আৰু যেতিয়া শিষ্যসকলৰ প্ৰতিভা আৰু সম্ভাৱনাৰ বিষয়ে জানিব পৰা যায়, তেতিয়া তেওঁলোকক যিবোৰ বিভাগত ঈশ্বৰৰ মেধা বা আগ্ৰহী, সেইবোৰ বিভাগত অধিক প্ৰশিক্ষণ দিয়া হয়। তেওঁলোকে প্ৰতিজন ব্যক্তিক নিজৰ স্বাৰ্থৰ শ্ৰেষ্ঠ বিচাৰক বুলি গণ্য কৰে যাক নিজৰ সুবিধাৰ বাবে ইয়াক অনুসৰণ কৰিবলৈ এৰি দিয়া উচিত। উদাহৰণস্বৰূপে যদি কোনো শিষ্যক শিল্প, শিল্প বা হস্তশিল্পত পাকৈত বুলি ধৰা পৰে, তেন্তে সেই অনুসৰি সত্ৰাধিকাৰে তেওঁলোকক শিল্পকলাৰ প্ৰশিক্ষণৰ বাবে বিশেষ শিক্ষক নিযুক্তি দিব যাতে তেওঁলোকক অধিক নিপুণ কৰি তোলা হয় আৰু পুনৰ যদি কোনোবাই খোলৰ দৰে সংগীতত আগ্ৰহী বা পাকৈত পোৱা যায়, ঢোল বা তাল তাৰ পিছত তেওঁলোকক সেই অনুসৰি প্ৰশিক্ষণ দিয়া হয়। এইদৰে যুৱক-যুৱতীসকলক ভৱিষ্যতৰ বাবে প্ৰশিক্ষণ দিয়া হয়।

গড়মুৰ সত্ৰ ঃ

১৬৫৬ চনত জয়ধ্বজ সিংহই প্ৰতিষ্ঠা কৰা মাজুলীৰ চাৰিখন প্ৰধান সত্ৰৰ ভিতৰত গড়মূৰ সত্ৰ অন্যতম। গড়ৰ অৰ্থাৎ মথাউৰি আৰু মুৰৰ অৰ্থ মূৰ। সেই হিচাপে ই প্ৰাচীন কালত অসমৰ অন্যতম ধনী সত্ৰ আছিল য'ত হাজাৰ হাজাৰ ৰাজহমুক্ত মাটি আৰু ৰজাসকলে প্ৰদান কৰা অন্যান্য স্থাৱৰ সম্পত্তি আছিল। লিপিবদ্ধ কৰা হৈছে যে শিৱসিংহই (১৭১৪-১৭৪৪) সেই সময়ত ৩০,০০০ পুৰা (১পুৰা- ২.৬৬ একৰ) ৰাজহমুক্ত মাটি সত্ৰলৈ দান কৰিছিল। সেই দিনবোৰত সত্ৰৰ পৰিচালনা আৰু প্ৰশাসন কেৱল সত্ৰৰ সত্ৰাধিকাৰৰ ওপৰত ন্যস্ত কৰা হৈছিল যিয়ে নিজৰ পদ আৰু মৰ্যাদাৰ প্ৰতিফলন ঘটোৱা কিছুমান বিশেষ চিহ্ন লগোৱাৰ লগতে কোনো বৈশিষ্ট্যৰ দৰে নহয় ৰাজপ্ৰসাদ স্থাপনৰ সৈতে মিল থকা সকলো বৈশিষ্ট্যই ধৰি ল'বলৈও অনুমতি পাইছিল অন্যান্য সত্ৰ। এই কাৰণেই সত্ৰখন ৰজাঘৰীয়া সত্ৰ নামেৰে পৰিচিত

হৈছিল। যদিও কৃষি আয় আৰু জীৱিকাৰ মূল উৎস হৈ আহিছে, তথাপিও হস্তশিল্প, মুখা নির্মাণ, পাণ্ডুলিপি লিখা, শিষ্যসকলৰ পৰা দান আদি খণ্ড আছে আৰু দান পাত্ৰ, সংগ্ৰহালয় আদিত পর্যটকসকলে ইয়াৰ আর্থিক বেক আপত যোগ দিয়ে। এই সত্ৰৰ শিষ্যসকল দক্ষ, পৰিশ্ৰমী আৰু উদ্ভাৱনীমূলক আৰু সত্ৰ আৰু অঞ্চলটোৰ অর্থনৈতিক উত্থানত অপৰিসীম অৱিহণা যোগাইছে। আত্মনিয়োগ বা গ্ৰাম্য উদ্যোগীকৰণে আজিকালি এক ধাৰা সৃষ্টি কৰিছে আৰু শিষ্যসকল অতি পৰিশ্ৰমী। ইয়াৰে বহুতেই স্থানীয়ভাৱে নতুন ক্ষুদ্ৰ উদ্যোগ আৰম্ভ কৰিছে।

হাতেৰে নির্মিত সামগ্ৰী আৰু সামগ্ৰীয়ে কেৱল স্থানীয় বজাৰতে নহয়, বিশ্বজুৰি ৰাজহ আহৰণৰ পথ মুকলি কৰিছে। হস্তশিল্পৰ সামগ্ৰী আৰু স্থানীয় শিপিনীৰ চাহিদা বাঢ়িছে। এই সত্ৰসমূহে গ্ৰাম্য নিয়োগৰ ক্ষেত্ৰত গুৰুত্বপূর্ণ ভূমিকা গ্ৰহণ কৰিবলৈ আৰম্ভ কৰিছে আৰু সমগ্ৰ অঞ্চলটোৰ আর্থ-সামাজিক অৱস্থাৰ উন্নতি সাধন কৰিছে যাৰ ফলত সামগ্ৰিকভাৱে দেশৰ উন্নয়নত সহায় কৰিছে।

উত্তৰ কমলাবাৰী সত্ৰ ঃ

এই সত্ৰৰ বাবে জীৱিকাৰ মূল উৎস হ'ল কৃষি। তেওঁলোকে সেই মাটিখিনি স্থানীয় সমাজৰ মানুহক, মাজুলীত খেতিৰ বাবে বসবাস কৰা নিৰুদ্দেশ জনগোষ্ঠীক সমান ভাগৰ লাভত দিয়ে। এক প্ৰকাৰে তেওঁলোকে উৎপাদিত সামগ্ৰীৰ আধা অংশ নিজৰ মাটিৰ পৰা আৰু সময়ত উপার্জন কৰি মাজুলীৰ স্থানীয় লোকসকলক তেওঁলোকৰ পিঠা-মাখন উপার্জনৰ বাবে কর্মসংস্থাপন প্ৰদান কৰে।

সত্ৰ চৌহদত সুতা, নাৰিকল, তৈলবীজ, আম গছ, পেঁপা গছ আদি বিভিন্ন গছ ৰোপণ কৰা হয়। বহুতো শিষ্যৰ নিজৰ ব্যক্তিগত গৰু থাকে যাৰ পৰা তেওঁলোকে খোৱাৰ বাবে গাখীৰ পায়। আনকি গাখীৰ বিক্ৰী কৰি কিছু উচিত পৰিমাণৰ ধন উপার্জন কৰে।

সত্ৰৰ স্বকীয়তা হ'ল সকলো শিষ্যই আত্মনির্ভৰশীল আৰু কঠোৰ পৰিশ্ৰমী আৰু নিজৰ সত্ৰ আৰু নিজকে সমর্থন কৰিবলৈ কিবা নহয় কিবা এটা ব্যৱস্থা কৰে। উত্তৰ কমলাবাৰী শংকৰদেৱ কৃষ্টি সংঘ নামেৰে এখন সাংস্কৃতিক সমিতি আছে। এই সমিতিখনেই সকলো সাংস্কৃতিক বিনিময় আৰু কার্য্যকলাপৰ বাবে দায়বদ্ধ।

যিকোনো ধৰণৰ স্থানীয়, ৰাষ্ট্ৰীয় বা আন্তঃৰাষ্ট্ৰীয় অনুষ্ঠানৰ বাবে যিকোনো সাংস্কৃতিক অনুষ্ঠানৰ বাবে পঠিয়াবলগীয়া সদস্যসকলক তেওঁলোকে নির্বাচন কৰে। প্ৰতি বছৰে ডিচেম্বৰ মাহত এনে সাংস্কৃতিক অনুষ্ঠান (Ras Utsova)ৰ সময়ত বিদেশী আৰু স্থানীয় পর্যটকসকলে সত্ৰখনলৈ আহিছিল। এনে অনুষ্ঠানৰ পৰা সত্ৰই বহুত ৰাজহ আদায় কৰে।

উপসংহাৰ ঃ

বছৰ বছৰ ধৰি ই দেখিলে যে যদিও সত্ৰসমূহত চলি থকা সামাজিক আৰু সাংস্কৃতিক কার্য্যকলাপে জনসাধাৰণক অর্থনৈতিকভাৱে উত্থান দি প্ৰগতিশীল জীৱন যাপনৰ দিশত আগবাঢ়িছিল, তথাপিও ক্ৰমান্বয়ে এই অগ্ৰগতিৰ বাটত বহুতো বাধা আৰু সমস্যাৰ উন্মেষ ঘটিছিল বৰঞ্চ স্থবিৰতালৈ লৈ গৈছিল।

যদিও এইটো কিয় আৰু কেনেকৈ হ'ল তাৰ কাৰণ কোনেও সঠিকভাৱে আঙুলিয়াই দিব নোৱাৰে কিন্তু এটা ধাৰণা নিশ্চিত কৰিব পাৰি যে সমস্যাবোৰ নিশ্চয় অযোগ্যতা, অসামঞ্জস্য, সত্ৰসমূহৰ ভুল প্ৰশাসন, ন'-হাউ আৰু কাৰুকার্য্যৰ অভাৱ, দক্ষতাৰ অভাৱৰ বাবেই উদ্ভৱ হৈছে, কঠোৰ পৰিশ্ৰমৰ অভাৱ, সামগ্ৰীসমূহৰ স্থানীয় বজাৰ, এই কাৰকসমূহে হয়তো এই ধর্মীয় প্ৰতিষ্ঠানসমূহৰ জীৱিকাৰ অৱস্থাত বাধাৰ সৃষ্টি কৰি প্ৰগতিশীল উন্নয়নৰ বাটত বাধাৰ সৃষ্টি কৰিলেহেঁতেন।

এইটো এটা গুৰুতৰ চিন্তাৰ বিষয় যিটো আমাৰ অসমীয়া সমাজত বসবাস কৰা জনসাধাৰণ আৰু চৰকাৰ উভয়ৰে গুৰুতৰ মনোযোগৰ প্ৰয়োজন যিয়ে সত্ৰসমূহৰ জনসাধাৰণৰ জীৱন-যাপনৰ অৱস্থা উন্নত কৰাৰ বাবে বিভিন্ন উন্নয়নমূলক কার্যসূচী আৰু আঁচনি গ্ৰহণ কৰিব পাৰে আৰু তাৰ বাবে কিছু পুনৰুজ্জীৱনৰ পদক্ষেপ আৰু ব্যৱস্থা গ্ৰহণ কৰিব পাৰে এই মৃত্যুমুখী ইউনিটবোৰ যিবোৰ আমাৰ ৰাজ্যৰ প্ৰকৃত ধন আৰু সম্পত্তি। চৰকাৰে হস্তশিল্প আৰু স্থানীয় উৎপাদিত সামগ্ৰীৰ বাবে বিশ্বব্যাপী বজাৰ সৃষ্টি কৰাৰ কথা ভাবিব পাৰে। যদিও সত্ৰসমূহে তেওঁলোকৰ দ্বাৰা উৎপাদিত বিভিন্ন হাতেৰে নির্মিত সামগ্ৰী বিক্ৰী কৰি ৰাজহ আহৰণ কৰিছে, উদ্যোগীকৰণৰ বৃদ্ধি এতিয়াও আহিবলগীয়া আছে।

পৰিচালনাৰ ক্ষেত্ৰতজ্ঞ ান বা বিশেষজ্ঞ তাৰ অভাৱৰ বাবেই এনে হ'ব পাৰে। সকলো সত্ৰই ব্যক্তিগতভাৱে কাম কৰি আছে। এই কাৰণতে একেটা সামগ্ৰীৰ মূল্যৰ তাৰতম্য বিভিন্ন ঠাইত থাকে। বহনক্ষম স্থান লাভ কৰিবলৈ সত্ৰসমূহে কৌশলগতভাৱে একেলগে কাম কৰিব লাগে। যদিও দুয়োখন সত্ৰতে স্থানীয় পৰ্যটকৰ লগতে বহু বিদেশী পৰ্যটক আছে, তথাপিও আধুনিক প্ৰযুক্তি আৰু আন্তঃগাঁথনিৰ ক্ষেত্ৰত পিছ পৰি আছে। সত্ৰসমূহৰ পৰ্যাপ্ত ভূমি আৰু অনন্য সৃষ্টিশীলতা আছে, কিন্তু তেওঁলোকৰ সামগ্ৰী আৰু সেৱাসমূহৰ প্ৰচাৰৰ বাবে পেছাদাৰী প্ৰশিক্ষণৰ প্ৰয়োজন। এই সত্ৰসমূহত কোনো ই-কমার্চৰ সুবিধা নাই বা ডিজিটেল লেনদেনৰ সুবিধাও নাই। তেওঁলোকে গ্ৰহণ কৰা উদ্যোগীকৰণৰ কামবোৰ কঠোৰ পৰিশ্ৰমী বৃদ্ধিতকৈ জীয়াই থকাৰ বাবেহে বেছি। বহনক্ষম বৃদ্ধিৰ বাবে এই সত্ৰসমূহে এক উমৈহতীয়া ব্ৰেণ্ডিঙৰ সৈতে একেলগে কাম কৰি বজাৰ অধিগ্ৰহণ কৰিব লাগে। ❑

তথ্যসূত্ৰ:

1) বৰকটকী সঞ্জীব কুমাৰ (2015)। শ্ৰীমন্ত শংকৰদেৱ আৰু শ্ৰীশ্ৰী মাধৱদেৱ, চন্দ্ৰকান্ত প্ৰেছ প্ৰাইভেট লিমিটেড, গুৱাহাটী।
2) চৌধুৰী নৱজ্যোতি দেৱ (২০১৬)। অসমৰ সত্ৰ সাংস্কৃতিক, চন্দ্ৰ প্ৰকাশ, গুৱাহাটী।
3) চেলউ পার্ক (২০১৭), উদ্যোগীকৰণৰ উদ্দেশ্যৰ ওপৰত উদ্যোগীকৰণৰ প্ৰভাৱৰ ওপৰত এক অধ্যয়ন আইচিটি মেজৰৰ ওপৰত গুৰুত্ব আৰোপ কৰা এছিয়া পেচিফিক জার্নেল অৱ ইনোভেচন এণ্ড এণ্টাৰপ্ৰেনিউৰশ্বিপ ভল. ১১ নং ২, ২০১৭ পৃষ্ঠা ১৫৯-১৭০
4) গোস্বামী পীতাম্বৰ দেৱ (২০১৬)। দ্য ব্লেজিং টেলেণ্ট শ্ৰীমন্ত শংকৰদেৱ, বি.এম প্ৰিণ্টাৰছ, গুৱাহাটী।
5) কুৰাটকো, ডি.এফ. (২০১৬)। উদ্যোগীকৰণঃ তত্ত্ব, প্ৰক্ৰিয়া, আৰু অনুশীলন। চেংগেজ লার্নিং।
6) খাংকা এছ.এছ. (২০০২) উদ্যোগীকৰণ বিকাশ, এছ. চান্দ এণ্ড কোম্পানী পাব্লিকেচন লিমিটেড, ৰাম নগৰ নতুন দিল্লী
7) নেওগ মহেশ্বৰ (২০১৮) দ্বিতীয় সংস্কৰণ। শংকৰদেৱ আৰু তেওঁৰ সময় (অসম, গুৱাহাটীত বৈষ্ণৱ বিশ্বাস আৰু আন্দোলনৰ আদিম ইতিহাস, এল বি এছ পাব্লিকেচন, পানবজাৰ গুৱাহাটী, অসম।
8) ফুকন বিমল (২০১০)। শ্ৰীমন্ত শংকৰদেৱ। বৈষ্ণৱ সন্ত অফ অসম, প্ৰগতি আর্ট প্ৰেছ, হায়দৰাবাদ।
9) ৰাজকোৱা জ্যোতিপ্ৰসাদ (২০০৩)। শংকৰদেৱঃ হিজ লাইফ প্ৰেচিংছ এণ্ড প্ৰেকটিছ, বি.এছ.পাব্লিকেচন, গুৱাহাটী।
10) Sarma.S.N (1966).The Neo-Vaisnavite Movement and The Satra Institution Of Assam, নবাজীবান প্ৰেছ, কলিকতা।
11) www.ifrc.org
12) httpÊ.//dainikjanambhumi.co.in/26092019/index.php

ISSN 2321-4945
UGC CARE Listed Journal
RNI NO. ASSBIL/2009/31008

প্রবন্ধ

নগেন শইকীয়াৰ ‘ধূলিৰ ধেমালি’ আত্মজীৱনীত তদানীন্তন সমাজ জীৱনৰ প্রতিচ্ছবি ঃ এক অধ্যয়ন

হিৰণ্য কুমাৰ বৰা

গৱেষক, অসমীয়া বিভাগ
অসম বিশ্ববিদ্যালয়, ডিফু চৌহদ
ম'বাইল ঃ ৮৬৩৮২১০৩৯৩
ই-মেইল ঃ hironyaborah300@gmail.com

প্রণিতা কাকতি

ছাত্রী, অসমীয়া বিভাগ
ডিব্রুগড় বিশ্ববিদ্যালয়
ম'বাইল ঃ ৮৮২২০৪৯৮০৫
ই-মেইল ঃ pranitakakati462@gmail.com

সংক্ষিপ্তসাৰ ঃ

জীৱনী সাহিত্যৰ অন্যতম শাখা হ'ল - 'আত্মজীৱনী সাহিত্য'। আত্মজীৱনী হ'ল এগৰাকী ব্যক্তিৰ জীৱনৰ স্বয়ংকৃত দলিল, য'ত তেওঁ নিজৰ জীৱনৰ বাস্তৱ ঘটনাৰাজিত সত্য আৰু শুদ্ধ ৰূপত লিপিবদ্ধ কৰে। অৱশ্যে আত্মজীৱনী যদিও ব্যক্তিজীৱনৰ অভিজ্ঞতা আৰু তথ্যসমৃদ্ধ ৰচনা, তথাপি ইয়াৰ মাজত কলাসূলভ নান্দনিক গুণ থাকে; যিয়ে আত্মজীৱনীক বুৰঞ্জী সাহিত্যৰ পৰা পৃথক কৰে। এগৰাকী ব্যক্তিৰ জীৱনৰ বাস্তৱ ঘটনাৱলীৰ প্রকৃত তথ্য লাভৰ ক্ষেত্রত একমাত্র নির্ভৰযোগ্য সমল হিচাপে আত্মজীৱনীৰ গুৰুত্ব অপৰিসীম।

অসমীয়া সাহিত্য জগতত স্বকীয় প্রতিভাৰে উজ্জ্বল হৈ থকা সাহিত্যিকসকলৰ ভিতৰত অন্যতম হ'ল নগেন শইকীয়া। নগেন শইকীয়াৰ অন্যান্য সাহিত্যকর্মৰ বিষয়ে যথেষ্ট গৱেষণামূলক অধ্যয়ন হৈছে যদিও তেখেতৰ আত্মজীৱনীখনৰ বিষয়ে গৱেষণামূলক অধ্যয়ন তুলনামূলকভাৱে যথেষ্ট কম। অসমীয়া সাহিত্যৰ এগৰাকী উল্লেখযোগ্য সাহিত্যিক হিচাপে নগেন শইকীয়াৰ আত্মজীৱনীখনৰ গৱেষণামূলক অধ্যয়নৰ যথেষ্ট প্রয়োজনীয়তা আছে কাৰণ, তেখেতৰ আত্মজীৱনীখনৰ বিষয়ে কৰা অধ্যয়নে ব্যক্তিগৰাকীৰ জীৱন তথা সাহিত্যৰাজিৰ লগতে তদানীন্তন সমাজ ব্যৱস্থাটোৰ সম্পর্কেও বহু তথ্য যোগান ধৰিবলৈ সক্ষম হ'ব। আমাৰ এই আলোচনা পত্রত নগেন শইকীয়াৰ আত্মজীৱনী 'ধূলিৰ ধেমালি' ত প্রকাশিত তদানীন্তন সমাজ জীৱনৰ প্রতিচ্ছবি সম্পর্কে আলোচনাৰ প্রয়াস কৰা হ'ব।

বীজ শব্দ ঃ

আত্মজীৱনী, নগেন শইকীয়া, গ্রাম্য সমাজ, ৰাজনৈতিক অৱস্থা

০.১ বিষয়ৰ পৰিচয় ঃ

আত্মজীৱনী হ'ল ব্যক্তি জীৱনৰ স্বয়ংকৃত দলিল। এগৰাকী ব্যক্তিয়ে যেতিয়া তেওঁৰ জীৱনৰ বাস্তৱ ঘটনাৱলীক নিজস্বভাৱে লিপিবদ্ধ কৰে, তেনে ৰচনাৰাজিক 'আত্মজীৱনী' বুলি অভিহিত কৰা হয়। অৱশ্যে আত্মজীৱনী যদিও এগৰাকী ব্যক্তিৰ জীৱনৰ ঘটনা আৰু অভিজ্ঞতা সমৃদ্ধ ৰচনা, কিন্তু ইয়াৰ মাজত সাহিত্যিক গুণ থকাটো অতি প্রয়োজনীয়, কাৰণ সাহিত্যিক গুণবিৰজিত একোখন আত্মজীৱনী আৰু বুৰঞ্জীৰ মাজত বিশেষ পার্থক্য নাথাকে।

অসমীয়া আত্মজীৱনী সাহিত্যৰ ইতিহাসলৈ লক্ষ্য কৰিলে দেখা যায় যে, এই শ্ৰেণীৰ প্ৰথম ৰচনা হ'ল জোনাকীত প্ৰকাশিত হেমচন্দ্ৰ বৰুৱাৰ 'আত্মজীৱন চৰিত'। অৱশ্যে এই 'আত্মজীৱন চৰিত' প্ৰথম আত্মজীৱনীমূলক ৰচনা যদিও ই পৰিপূৰ্ণ আত্মজীৱনী নহয়। অসমীয়া ভাষাৰ আত্মজীৱনীৰ পথিকৃৎ হ'ল 'হৰকান্ত শৰ্মা মজুমদাৰ বৰুৱা' (১৮১৫-১৯০২)।[১] তেওঁৰ আত্মজীৱনীখনৰ নাম হ'ল — 'সদৰামীনৰ আত্মজীৱনী'। এই আত্মজীৱনীখন যদিও ১৮৯০ চনতে সম্পূৰ্ণ হয়, কিন্তু ১৮৬০ চনতহে কুমুদচন্দ্ৰ বৰদলৈৰ সম্পাদনাত প্ৰকাশিত হয়। গতিকে প্ৰকাশৰ ফালৰ পৰা অসমীয়া সাহিত্যৰ প্ৰথম আত্মজীৱনী হ'ল — লক্ষ্মীনাথ বেজবৰুৱাৰ 'মোৰ জীৱন সোঁৱৰণ'। ইয়াৰ পৰৱৰ্তী সময়ত অসমীয়া সাহিত্যৰ জগতখনত ৰজনীকান্ত বৰদলৈৰ 'আত্মজীৱন চৰিত', হৰিবিলাস আগৰৱালা ডাঙৰীয়াৰ আত্মজীৱনী (১৯৬৭), বেনুধৰ ৰাজখোৱাৰ 'মোৰ জীৱন দাপোণ' (১৯৬৯), পদ্মনাথ গোহাঞিবৰুৱাৰ 'মোৰ জীৱন সোঁৱৰণি' (১৯৭১), নলিনীবালা দেৱীৰ এৰি অহা দিনবোৰ (১৯৭৭), মহেশ্বৰ নেওগৰ 'জীৱনৰ দীঘ আৰু বাণী' (১৯৮৮), মামনি ৰয়চম গোস্বামীৰ 'আধালেখা দস্তাবেজ' (১৯৮৮), ভবেন্দ্ৰ নাথ শইকীয়াৰ 'জীৱন বৃত্ত' আদি ভালেসংখ্যক ব্যক্তিৰ আত্মজীৱনী প্ৰকাশিত হৈছে।

সাম্প্ৰতিক অসমীয়া আত্মজীৱনী সাহিত্যৰ নতুন সংযোজন হ'ল — নগেন শইকীয়াৰ 'ধূলিৰ ধেমালি' (২০০৩)। তেওঁৰ দুটা খণ্ডত প্ৰকাশিত আত্মজীৱনীখনৰ প্ৰথমটো খণ্ড 'ধূলিৰ ধেমালি'ত ব্যক্তিগৰাকীৰ শৈশৱকালৰ পৰা কৈশোৰকালৰ এচোৱালৈক পাৰ হৈ অহা জীৱনৰ স্মৃতিৰ বৰ্ণনা আছে। আমাৰ এই আলোচনা পত্ৰখনত নগেন শইকীয়াৰ আত্মজীৱনীৰ প্ৰথমখণ্ড 'ধূলিৰ ধেমালি'ত প্ৰকাশিত তদানীন্তন সমাজ জীৱন সম্পৰ্কে বিশ্লেষণৰ প্ৰয়াস কৰা হ'ব।

০.২ বিষয় অধ্যয়নৰ গুৰুত্ব আৰুঅধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য ঃ

অসমীয়া সাহিত্যৰ ক্ষেত্ৰখনত নিৰলসভাৱে সাহিত্য চৰ্চা কৰি থকা ব্যক্তিসকলৰ মাজত এগৰাকী উল্লেখযোগ্য ব্যক্তি হ'ল নগেন শইকীয়া। তেখেতৰ সাহিত্যৰাজিৰ সংখ্যা বিশাল আৰু তাৰ স্বৰূপ বহুধা বিভক্ত। অসমীয়া সাহিত্যৰ ন-পুৰণি গ্ৰন্থ সম্পাদনাৰ পৰা আৰম্ভ কৰি গল্প, কবিতা, মিতভাষ আদি সৃষ্টিশীল সাহিত্য তথা সাহিত্য সমালোচনা, গৱেষণাধৰ্মী প্ৰবন্ধ আদিৰ উপৰি 'বিষয় শঙ্কৰদেৱ'ৰ দৰে গ্ৰন্থ ৰচনা কৰি নগেন শইকীয়াই অসমীয়া সাহিত্যৰ ভঁড়াল সমৃদ্ধ কৰিছে। নগেন শইকীয়াৰ এই সৃষ্টিৰাজিৰ ভিতৰত গল্প, প্ৰবন্ধকেস ধৰি বহুকেইটা শাখাৰ সম্পৰ্কে ইতিমধ্যে গৱেষণামূলক অধ্যয়ন যদিও তেখেতৰ আত্মজীৱনীখনৰ সম্পৰ্কত গৱেষণামূলক অধ্যয়ন তুলনামূলকভাৱে কম।

যিহেতু এই আত্মজীৱনীখনৰ মাধ্যমেৰে সাহিত্যিক নগেন শইকীয়াৰ শৈশৱৰ পৰা কৈশোৰৰ এচোৱা সময়লৈ জীৱনত লাভ কৰা বাস্তৱ অভিজ্ঞতাৰ বৰ্ণনা আছে, তদুপৰি এই আত্মজীৱনীখনৰ মাজত তেখেতৰ সামাজিক দৃষ্টিভঙ্গী,

জীৱনবোধ , উপস্থাপনশৈলী, সাহিত্য-প্ৰতিভা আদিৰ লগতে তদানীন্তন সময়ৰ সমাজ-ৰাজনৈতিক দিশটোও জড়িত হৈ আছে, সেয়েহে নগেন শইকীয়াৰ অন্যান্য সাহিত্যকৰ্মৰ দৰেই 'ধূলিৰ ধেমালি' আত্মজীৱনীখনৰ বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়নৰ যথেষ্ট গুৰুত্ব আছে।

"নগেন শইকীয়াৰ 'ধূলিৰ ধেমালি' আত্মজীৱনীত তদানীন্তন সমাজ জীৱনৰ প্ৰতিচ্ছবি ঃ এক অধ্যয়ন"

শীৰ্ষক আলোচনা পত্ৰখনৰ মাধ্যমেৰে নগেন শইকীয়াৰ সমসাময়িক সমাজখনৰ প্ৰতিচ্ছবি ফুটাই তোলাই

আমাৰ আলোচনাৰ মুখ্য উদ্দেশ্য।

০.৪ অধ্যয়নৰ পৰিসৰ ঃ

*"নগেন শইকীয়াৰ 'ধূলিৰ ধেমালি' আত্মজীৱনীত তদানীন্তন সমাজ জীৱনৰ প্ৰতিচ্ছবি ঃ এক অধ্যয়ন"*শীৰ্ষক আলোচনা পত্ৰখনৰ পৰিসৰে নগেন শইকীয়াৰ আত্মজীৱনীৰ প্ৰথম খণ্ড 'ধূলিৰ ধেমালি' গ্ৰন্থখনৰ মাজেৰে প্ৰকাশিত লেখকৰ সমসাময়িক সমাজব্যৱস্থা আৰু ৰাজনৈতিক বাতাবৰণৰ দিশসমূহ সামৰি লৈছে।

০.৫ অধ্যয়নৰ পদ্ধতি আৰু তথ্য আহৰণৰ উৎস ঃ

*"নগেন শইকীয়াৰ 'ধূলিৰ ধেমালি' আত্মজীৱনীত তদানীন্তন সমাজ জীৱনৰ প্ৰতিচ্ছবি ঃ এক অধ্যয়ন"*শীৰ্ষক আলোচনা পত্ৰখনৰ অধ্যয়নৰ পদ্ধতি হিচাপে বিশ্লেষণাত্মক পদ্ধতি অৱলম্বন কৰা হ'ব আৰু তথ্য আহৰণৰ উৎস হিচাপে মুখ্য উৎস হিচাপে 'ধূলিৰ ধেমালি' (প্ৰথম খণ্ড) গ্ৰন্থখন

আৰু গৌণ উৎস হিচাপে ‘ধূলিৰ ধেমালি’ আত্মজীৱনীখনৰ আলোচনা সম্বলিত বিভিন্ন কাকত, আলোচনী তথা নগেন শইকীয়াৰ সাহিত্য আৰু জীৱন সম্পৰ্কীয় বিভিন্ন প্ৰবন্ধৰ সহায় লোৱা হ’ব।

১.০০ মূল বিষয়ৰ আলোচনা ঃ

জীৱনী সাহিত্যৰ অন্যতম শাখা হ’ল ‘আত্মজীৱনী’। সাধাৰণ দৃষ্টিৰে ক’বলৈ গ’লে ‘আত্মজীৱনী হ’ল জীৱনকেন্দ্রিক সাহিত্য’।[২] এগৰাকী ব্যক্তিয়ে যেতিয়া তেওঁৰ জীৱনৰ ঘটনাৱলীক নিজস্বভাৱে লিপিবদ্ধ কৰে, তেনে ৰচনাৰাজিক আত্মজীৱনী বুলি অভিহিত কৰা হয়। যিহেতু এজন ব্যক্তিয়ে নিজৰ জীৱনক যিদৰে জানে, অন্য এজনৰ পক্ষে সেইদৰে জনা সম্ভৱ নহয়, গতিকে এখন আত্মজীৱনীৰ মাধ্যমেৰেহে এগৰাকী ব্যক্তিৰ জীৱনৰ যথার্থ ৰূপ প্ৰতিফলিত হোৱা সম্ভৱ। সেই দৃষ্টিকোণৰ পৰা আত্মজীৱনী এক নিৰ্ভৰযোগ্য সাহিত্য।

যদিও আত্মজীৱনী এগৰাকী ব্যক্তিৰ জীৱনৰ ঘটনা আৰু অভিজ্ঞতা সমৃদ্ধ ৰচনা, কিন্তু এনে ৰচনাৰাজি কেৱল তথ্যকেন্দ্রিক নহয়। আত্মজীৱনী ৰচনা কৰোঁতে এগৰাকী আত্মজীৱনীকাৰে অতি কৌশলেৰে তেওঁৰ জীৱনৰ তথ্যসমূহ সাহিত্যিক গুণসমৃদ্ধভাৱে উপস্থাপন কৰে আৰু লেখকৰ এনে কৌশলেই আত্মজীৱনীক বুৰঞ্জীৰ পৰা পৃথক কৰি তোলে।

আত্মজীৱনীত লেখকে প্ৰয়োগ কৰা এই সাহিত্যিক গুণাৱলীয়েহে প্ৰকৃতাৰ্থত আত্মজীৱনীক সৃষ্টিশীল সাহিত্যৰ অন্তৰ্ভুক্ত কৰে। আত্মজীৱনী যিহেতু এগৰাকী ব্যক্তিৰ নিজৰ জীৱনৰ কথা, গতিকে আত্মজীৱনীত আত্মনিষ্ঠতা থকাতো অতি প্ৰয়োজনীয়। সেয়ে, ৰয় পাস্কেলে আত্মজীৱনীৰ প্ৰসঙ্গত কৈছে — ‘আত্মজীৱনী এনে এবিধ জীৱন-বৃত্তান্ত, য’ত লেখকে তেওঁৰ জীৱনৰ কথাবোৰ যেনেকৈ বুজে আৰু গ্ৰহণ কৰে, তেনেকৈ অংকন কৰে।’[৩] অৱশ্যে আত্মজীৱনী যদিও সত্যনিৰ্ভৰ সাহিত্য বুলি ধৰা হয়, তথাপি মানুহৰ নিজৰ দোষ লুকুৱাবলৈ যত্ন কৰাটো এক স্বাভাৱিক দুৰ্বলতা হোৱা হেতুকে এই দুৰ্বলতাৰ পৰা আত্মজীৱনীকাৰ সকলো মুক্ত হ’ব নোৱাৰে। এইক্ষেত্ৰত চমাৰছেট মমে তেওঁৰ The Summing up গ্ৰন্থত উল্লেখ কৰিছে ঃ No one can tell the whole truth about himself.[৪] অৰ্থাৎ কোনো মানুহেই নিজৰ বিষয়ে সম্পূৰ্ণ সত্য প্ৰকাশ কৰিব নোৱাৰে। আনকি ব্ৰাৰ্ট্ৰাণ্ড ৰাছেলৰ দৰে দাৰ্শনীকেও আত্মজীৱনীত নিজৰ বিষয়ে মিছা কথা লিখিথৈ যোৱা বুলি এল.এল. ৰাইজ আৰু পল জনছনৰ দৰে পণ্ডিতে অভিযোগ কৰিছে।[৫] গতিকে আত্মজীৱনীকাৰ এগৰাকীয়ে যেতিয়া তেওঁৰ জীৱন সম্পৰ্কে লিপিবদ্ধ কৰিবলৈ আগবাঢ়ি আহে, এইক্ষেত্ৰত তেওঁ নিজৰ বিষয়ে সম্পূৰ্ণ সত্য আৰু শুদ্ধ তথ্য প্ৰকাশ কৰিবলৈ যথেষ্ট সাহসী হোৱা প্ৰয়োজন।

সাহিত্যৰ অন্যান্য বিভাগসমূহৰ দৰেই আত্মজীৱনী সাহিত্যৰো এক সুকীয়া স্থান আছে। একোখন আত্মজীৱনীৰ পৰিসৰ কেৱল এগৰাকী নিৰ্দিষ্ট ব্যক্তিৰ জীৱনৰ অভিজ্ঞতাৰ প্ৰতিফলনতে সীমাবদ্ধ নাথাকে, ৰৱঞ্চ ই আত্মজীৱনীকাৰৰ জীৱনৰ লগতে তেওঁৰ সমসাময়ীক সমাজ জীৱনৰো এখন বাস্তৱ চিত্ৰৰ প্ৰতিফলন কৰে। সেয়েহে সামাজিক দৃষ্টিকোণৰ পৰাও আত্মজীৱনীৰ গুৰুত্ব অপৰীসীম। আমাৰ এই আলোচনাপত্ৰৰ জৰিয়তে সাহিত্যিক নগেন শইকীয়াৰ আত্মজীৱনী ‘ধূলিৰ ধেমালি’ত প্ৰকাশিত তদানীন্তন সমাজ-ৰাজনৈতিক পৰিৱেশৰ বিষয়ে আলোচনাৰ প্ৰয়াস কৰা হ’ব।

১.০১ ‘ধূলিৰ ধেমালি’ত গ্ৰাম্য সমাজৰ চিত্ৰ ঃ

আত্মজীৱনী যদিও এগৰাকী ব্যক্তি জীৱনৰ জীৱন্ত দলিলস্বৰূপ আৰু উক্ত ব্যক্তিগৰাকীৰ জীৱনৰ ঘটনা আৰু অভিজ্ঞতাৰ ভিত্তিতে আত্মজীৱনী ৰচিত হয়, কিন্তু ইয়াৰ পৰিধিয়ে আত্মজীৱনীকাৰ গৰাকীৰ জীৱনৰ লগতে তেওঁৰ সমসাময়িক সমাজ ব্যৱস্থাকো সামৰি লয়। যিহেতু ব্যক্তি জীৱনক অহৰ্নিশে স্পষ্ট কৰি থকা সমাজখনৰ ভেটিতেই ব্যক্তিগৰাকীৰ অতীত আৰু বৰ্তমানৰ ঘটনাবোৰ সংঘটিত

হয়, সেয়েহে স্বাভাৱিকতে উক্ত ঘটনাৰ বৰ্ণনা কৰোঁতে তদানীন্তন সমাজ জীৱনো চিত্ৰিত হৈ উঠে। নগেন শইকীয়াৰ 'ধূলিৰ ধেমালি' আত্মজীৱনীখনতো সামাজিক ব্যৱস্থাটোৱে বিশেষভাৱে গুৰুত্ব লাভ কৰিছে। আত্মজীৱনীকাৰ শইকীয়াই সমকালীন সমাজ ব্যৱস্থাটোৰ সূক্ষ্মভাৱে পৰ্যবেক্ষণ কৰি তাৰ এখন স্পষ্ট ছবি তেওঁৰ আত্মজীৱনীখনত তুলি ধৰিছে। এইক্ষেত্ৰত তদানীন্তন সমাজত প্ৰচলিত ৰীতি-নীতি, আদৰ্শ, কু-সংস্কাৰ, সামাজিক বৈষম্য, সামাজি সমন্বয় আদি প্ৰতিটো দিশৰ অৱলোকনৰ দ্বাৰা তেওঁৰ সমসাময়িক সমাজখনৰ প্ৰতিৰূপ পাঠকৰ সমুখত দাঙি ধৰাৰ যত্ন কৰিছে।

তদানীন্তন সমাজত প্ৰচলিত সামাজিক কু-সংস্কাৰৰ বৰ্ণনা দিবলৈ গৈ নগেন শইকীয়াই জন্মৰ পাছত তেওঁক প্ৰতীকীভাৱে বিক্ৰী কৰাৰ ঘটনা বৰ্ণনা কৰিছে। তদানীন্তন সমাজত প্ৰচলিত ৰীতি অনুসৰি সন্তান জন্ম হ'লে সেই সময়ত নিজৰ সম্প্ৰদায়তকৈ তলৰ বুলি ভবা কোনো আন সম্প্ৰদায়ৰ তিৰোতাক সন্তানটো এপইচা বা আধা পইচাত বিক্ৰী কৰা হয়। ইয়াৰ লগত জড়িত লোকবিশ্বাস অনুসৰি এনেদৰে সন্তানটি প্ৰতীকী ৰূপত বিক্ৰী কৰিলে সন্তানৰ অপায়-অমঙ্গল নহয় আৰু যিহেতু বিক্ৰীৰ পাছত সন্তানটো ইগৰাকী মানুহৰ অধিকাৰলৈ যায়, সেয়েহে যম বা যমদুতে আহি প্ৰকৃত মাক-দেউতাকৰ পৰা সন্তানটি কাঢ়ি নিব নোৱাৰে। নগেন শইকীয়াৰ অনুসৰি যিহেতু তেওঁৰ জন্মৰ পূৰ্বে মাতৃৰ দুটি কন্যা সন্তানৰ মৃত্যু হৈছিল, সেয়েহে সামাজিক ৰীতি অনুসৰি তেওঁৰ দেউতাকে উক্ত বিশ্বাস মানি তেওঁলোকৰ পৰিয়ালৰ শৰণ দিয়া গোসাঁই, ভোলানাথ মহন্তৰ দ্বিতীয় পত্নী বেঙেনাআটী আইৰ ওচৰত এপইচাত বিক্ৰী কৰিছিল। এই ঘটনাৰ বৰ্ণনাই তদানীন্তন সমাজত প্ৰচলিত অন্ধবিশ্বাসৰ এক সুন্দৰ উদাহৰণ দাঙি ধৰে। আত্মজীৱনীখনৰ প্ৰথম অধ্যায়তে নগেন শইকীয়াই তদানীন্তন সমাজত প্ৰচলিত জাতিভেদ প্ৰথাৰ এখন বাস্তৱ চিত্ৰও তেওঁৰ বৰ্ণনাৰ মাজেৰে তুলি ধৰিছে। তদানীন্তন সমাজব্যৱস্থাত থকা এই শ্ৰেণীবৈষম্য সম্পৰ্কে উল্লেখ কৰি তেওঁ লিখিছে —

"জনা বুজা হোৱাৰে পৰা অনুভৱ কৰিছোঁ — আমাৰ সমাজ জীৱনত শ্ৰম কৰাজনক কেনেভাৱে হীন জ্ঞান কৰা হৈছিল। আমাৰ সামাজীক জীৱনত শাৰীৰিক শ্ৰম নকৰাকৈ খোৱা সকলেই আছিল উচ্চ জাতৰ। নিজৰ জীৱিকাৰ বাবে শাৰীৰিক শ্ৰম কৰা সকল তেওঁলোকতকৈ তলৰ; আৰু শ্ৰমক জীৱিকাৰ বৃত্তি স্বৰূপে লোৱাসকলক ক্ৰমাৎ তলৰ স্তৰলৈ ঠেলি দিয়া হৈছিল। সামাজিক জীৱনত ব্ৰাহ্মণ আৰু কায়স্থসকলৰ পিছতেহে স্থান আছিল বৰকলিতাসকলৰ, এই সকলৰ আকৌ কঁহাৰ, কমাৰ, কুমাৰ, সোণাৰি আদি বৃত্তিজীৱীসকলক খেতি-বাতি কৰি খোৱাসকলে নিজৰ সমান বুলি গণ্য নকৰিছিল। কলিতাসকলৰ পিছতে কেওঁটসকলৰ আৰু তেওঁলোকৰ পিছত স্থান আছিল কোঁচসকলৰ। সামাজিক স্তৰৰ এই অনুক্ৰমটোকে মই আমাৰ গাঁওখনত প্ৰৱৰ্তিত থকা দেখিছিলোঁ। আমাৰ বৰদেউতাহঁতে নিজৰ খাবৰ বাবে কাকডোঙা নদীত ৰৌ মাছ মাৰিছিল; কিন্তু মাছ মাৰি বিক্ৰী কৰাসকলক সমান জ্ঞান কৰাৰ কথা ভাবিব নোৱাৰিছিল।"[৬]

তদানীন্তন সময়ৰ এই জাতিভেদ প্ৰথাৰ কটকটীয়া নীতিৰ ব্যাখ্যা দাঙি ধৰি তেওঁ বিয়া-বাৰুৰ সময়ত সংহতি বিচাৰ কৰা আৰু অন্য সংহতিৰ মাজত সম্পৰ্ক স্থাপন নকৰাৰ কথা উল্লেখ কৰিছে। নগেন শইকীয়াই তেখেতৰ আত্মজীৱনীখনত বৰ্ণনা কৰা সামাজিক কু-সংস্কাৰজনিত ঘটনা হ'ল তন্ত্ৰ-মন্ত্ৰ আৰু বেজ-বেজালীৰ প্ৰতি থকা সেই সময়ৰ মানুহৰ বিশ্বাসৰ লগত জড়িত ঘটনা। নগেন শইকীয়াই উল্লেখ কৰা অনুসৰি মতি টকীজৰ সমুখত সুৰেণ নামৰ এগৰাকী নাপিত আছিল। জনবিশ্বাস অনুসৰি তেওঁ বোলে সাপৰ মন্ত্ৰ জানিছিল। যদি কাৰোবাক সাপে কামুৰে, তেন্তে সুৰেণ নাপিতক খবৰ দিবলৈ যোৱা ব্যক্তিজনক চৰ এটা মাৰি দি তাতে মন্ত্ৰ জাপিবলৈ আৰম্ভ কৰিছিল। লগে লগে সৰ্পদ্ৰংষ্টজনৰ বিষ নামিবলৈ ধৰে। এই ঘটনাৰ উ পৰিও তেওঁলোকৰ গাঁৱৰ অম্বুৰাম বৰা নামৰ গাঁওবুঢ়াজনে 'বাছনি' মাৰি চোৰ ধৰা ঘটনাৰ বৰ্ণনাৰ মাজেৰেও তদানীন্তন সময়ত মানুহৰ মাজত থকা তন্ত্ৰ-মন্ত্ৰ, বেজ-বেজালীৰ প্ৰতি থকা অন্ধবিশ্বাসৰ বাস্তৱ ছবিখন প্ৰতিফলিত হৈছে।[৭]

নগেন শইকীয়াৰ আত্মজীৱনীৰ সমসাময়িক সমাজ জীৱনৰ প্ৰতিচ্ছবিৰ কথা আলোচনা কৰোঁতে গুৰুত্ব দিবলগা আন এক উল্লেখযোগ্য দিশ হ'ল — তদানীন্তন সময়ত অসমীয়া সমাজত প্ৰচলিত যৌথ পৰিয়াল ব্যৱস্থাৰ চিত্ৰণ। এই ক্ষেত্ৰত নগেন শইকীয়াই নিজস্ব পৰিয়ালটোৰ কথাই সুন্দৰভাৱে উপস্থাপন কৰিছে। নগেন শইকীয়া নিজৰ উপৰিপুৰুষৰ বৰ্ণনা প্ৰদান কৰাৰ ক্ষেত্ৰত সকলোৰে পৰিচয়

প্রদান কৰিবলৈ গৈ উল্লেখ কৰিছে যে — "সি যি হওক, মোৰ জন্মৰ সময়ত বোলে আমাৰ এই যুটীয়া পৰিয়ালটোত ষাঠিজনমান মানুহ আছিল। অর্থাৎ দৈনিক দুবেলা ষাঠিজনৰ বাবে একোটা ভোজ ৰান্ধিবলগীয়া হৈছিল। আৰু এই ভোজটো দৈনিক দুবাৰকৈ ৰান্ধিবলগীয়া হৈছিল 'আইতা'ই।"[৮]

যুটীয়া পৰিয়াল ব্যৱস্থাৰ বর্ণনাৰ উপৰিও নগেন শইকীয়াই আত্মজীৱনীখনত তদানীন্তন সময়ৰ অসমীয়া সমাজত জ্যেষ্ঠ সকলক কনিষ্ঠ সকলে কৰা সম্বোধন সম্পর্কে উল্লেখ কৰিছে — "তেতিয়া ভাইবোৱাৰীহঁতে জেঠায়েকহঁতক কোনো সম্বোধন ধৰি পোনে পোনে মতাৰ ৰীতি নাছিল। আওপকীয়াকৈ "ডাঙৰীয়া" বুলি কৈছিল। ওৰণীৰে মুখ ঢাকি "ডাঙৰীয়াক পানী অকণমান দিমনে?" "ডাঙৰীয়াক তামোল এখন দিবলৈ আহিছিলোঁ" — বুলিহে কিবা ক'বলগীয়া হ'লে কৈছিল। আনকি বয়সস্থ সকলৰ আগত নিজৰ গিৰিহঁতকো পত্নীয়ে "আপুনি" বুলি পোনে পোনে কথা নকৈছিল। তাত জলপান খাবৰ পৰত যদি বৰদেউতাৰ আগত বৌৱে দেউতাক কিবা লাগে নেকি সুধিবৰ হয় "আপোনাক কিবা দিমনে" বুলি নকৈ "নিজকে দিম নে" বুলিহে সুধিছিল।"[৯]

(নগেন শইকীয়া ৰচনাৱলী, পৃঃ ১৬)

যদিও গাঁৱলীয়া সমাজব্যৱস্থাত মানুহৰ মাজত জাতিভেদ প্রথাৰ প্রচলন আছিল, কিন্তু সকলো মানুহৰ মাজত থকা সামাজিক ঐক্য সম্পর্কে নগেন শইকীয়াই তেওঁৰ আত্মজীৱনীত বর্ণনা কৰিছে। এইক্ষেত্রত তেওঁৰ গাঁৱৰ আলিটোৰ উত্তৰপাৰে থকা "ইছলাম ধর্মৰ লোকসকলৰ মাজত গঢ়ি উঠা সু-সম্পর্কৰ কথা ব্যাখ্যা কৰি কৈছে — "কিন্তু পৰস্পৰৰ মাজত বিশ্বাসৰ বান্ধোনটো আছিল দৃঢ়। মৰম-স্নেহো আছিল। কোনোবা ঢুকালে, কাৰোবাৰ ঘৰত বিয়া-বাৰু হ'লে, কিবা ঘটনা-দুর্ঘটনা হ'লে, বেমাৰ-আজাৰ হ'লে খা-খবৰ লোৱা, দিহা-বুদ্ধি দিয়া, সহায়-সাৰথি কৰাৰ ক্ষেত্রত কোনেও কৃপণালী কৰা নাছিল। একেখন কাঁহীতে নাখাইছিল; কিন্তু সেইবাবেই শত্রুতা নাছিল।"

নগেন শইকীয়াৰ আত্মজীৱনীখনত উল্লিখিত এনে কিছুমান ঘটনা আৰু বর্ণনাই দৰাচলতে তেওঁৰ সমসাময়িক গ্রাম্য সমাজত প্রচলিত ৰীতি-নীতি, আচাৰ-ব্যৱহাৰ, সামাজিক সংস্কাৰ অথবা কু-সংস্কাৰ আদিৰ মাধ্যমেৰে উক্ত সমাজ জীৱনৰ বাস্তৱ ছবি ডাঙি ধৰিবলৈ সক্ষম। উল্লেখযোগ্য যে তেওঁৰ জীৱনৰ ঘটনা আৰু অভিজ্ঞতা প্রকাশৰ মুহূর্ততো যে লেখকগৰাকীৰ মনত সমাজবোধৰ চেতনাই গভীৰভাৱে ক্রিয়া কৰি আছিল, এনে বর্ণনাসমূহৰ জৰিয়তে সেই কথাও স্পষ্ট হৈ পৰে।

১.০২ 'ধূলিৰ ধেমালি'ত প্রকাশিত তদানীন্তন ৰাজনৈতিক অৱস্থাৰ প্রতিচ্ছবি ঃ

নগেন শইকীয়াৰ আত্মজীৱনী 'ধূলিৰ ধেমালি'ত যিদৰে উক্ত সময়ছোৱাত অসমীয়া গ্রাম্য জীৱনৰ প্রতিচ্ছবি পৰিলক্ষিত হৈছে তাৰ সমান্তৰালভাৱেই আত্মজীৱনীকাৰৰ জীৱনৰ ঘটনাৰ বর্ণনাসমূহৰ লগতে সেই সময়ৰ ৰাজনৈতিক ব্যৱস্থাটোৰ প্রতিচ্ছবিও অতি স্পষ্ট ৰূপত পৰিলক্ষিত হৈছে। বিশেষতঃ দ্বিতীয় বিশ্বযুদ্ধ, ভাৰতৰ স্বাধীনতা আন্দোলন আৰু স্বাধীনতাৰ পৰৱর্তী সময়ৰ ভাৰতীয় তথা অসমীয়া সমাজ ব্যৱস্থা আত্মজীৱনীখনৰ পটভূমিৰ অন্তর্ভুক্ত হোৱা বাবে সেই সময়ৰ নানান ৰাজনৈতিক ঘটনা-পৰিঘটনাৰ সৈতে প্রত্যক্ষ বা পৰোক্ষভাৱে আত্মজীৱনীকাৰৰ জীৱনটো সাঙোৰ খাই পৰাৰ বাবেই এনেসমূহ ঘটনা পৰিঘটনাই আত্মজীৱনীখনৰ মাজত স্থান পাইছে। এইক্ষেত্রত আত্মজীৱনীকাৰ নগেন শইকীয়াই ১৯৬০ চনৰ ভাষা আন্দোলনৰ সময়ত স্বাধীনতাৰ পূর্বৰেপৰা অসমত আহি বসবাস কৰি হাড়ে-হিমজুৱে অসমীয়া হৈ পৰা লোকসকলক কিদৰে এচাম অসমীয়া মানুহে আক্রমণৰ লক্ষ্য কৰি লৈছিল, তাৰ বর্ণনা কৰিছে। ১৯৪৭ চনৰ বহু পূর্বৰে পৰাই নগেন শইকীয়াৰ গাঁৱত বসবাস কৰা বীৰেশ্বৰ দত্ত, যি গৰাকী ব্যক্তিয়ে ১৯৪৭ চনৰ ১৫ আগষ্টৰ ৰাতি বাৰ বজাত স্বাধীন ভাৰতৰ বিজয় উল্লাসত 'বন্দে মাতৰম' ধ্বনি দিছিল; সেইজন বীৰেশ্বৰ দত্তকে ১৯৬০ চনৰ ভাষা আন্দোলনৰ 'ভাষাপ্রেমী দুর্বৃত্ত'ই আক্রমণ কৰা ঘটনাই হ'ল তাৰ উৎকৃষ্ট উদাহৰণ। এনে ঘটনাসমূহে যে প্রকৃতার্থত বৃহত্তৰ অসমীয়া জাতি গঠন প্রক্রিয়াত অন্তৰাই হিচাপে থিয় দিছিল, সেই কথা অনুধাৱন কৰাৰ লগতে নগেন শইকীয়াই পোনপটীয়াভাৱে এনে ঘটনাক উদ্‌গনি জনোৱা বুলি কলিকতীয়া কাকতক দোষাৰোপ কৰিছে।[১০]

তদানীন্তন সময়ৰ ৰাজনৈতিক জগতখন বিশেষভাৱে

প্রভাৱ বিস্তাৰ কৰা এটা দল আছিল কমিউনিষ্ট দল। ভাৰতীয় স্বাধীনতা আন্দোলনৰ ক্ষেত্ৰত বিশেষ ভূমিকা গ্ৰহণ কৰা এই দলটোৰ কাৰ্যপ্ৰণালীক নগেন শইকীয়াই আত্মজীৱনীখনত কঠোৰভাৱে সমালোচনা কৰিছে। পুঁজিবাদী অৰ্থব্যৱস্থাত বিৰুদ্ধাচৰণ কৰি সাম্যবাদ প্ৰতিষ্ঠাৰ আদৰ্শসমূহত ৰাখি আগবঢ়া কমিউনিষ্ট দলে পৰৱৰ্তী সময়ত কিদৰে মূলসুঁতিৰ পৰা পথভ্ৰষ্ট হৈ নিজৰ মাজতে সংঘাতৰ সৃষ্টি কৰিছিল সেই কথা ব্যাখ্যা কৰি তেওঁ লিখিছে— "পাছত ডাঙৰ হৈ অনুভৱ কৰিছোঁ কমিউনিষ্ট দলে কেনেকৈ গাঁৱৰ সামান্য আঢ্যৱন্ত মানুহকো শ্ৰেণী শত্ৰু বুলি ভাবিবলৈ অত্যন্ত ভুল আৰু মাৰাত্মক শিক্ষা দিছিল। তেওঁবিলাকৰ ৰাজনৈতিক শিক্ষা শুদ্ধ হোৱা হ'লে এনেধৰণৰ অবাঞ্ছনীয় হত্যাকাণ্ড নহ'লহেঁতেন। ৰাজনৈতিক ভাৰতক হিংসাৰ পথলৈ লৈ যোৱাত কমিউনিষ্ট দলে প্ৰধান ভূমিকা লৈছিল। সমগ্ৰ পৃথিৱীত এহাতে ষ্টেলিনৰ কমিউনিষ্ট নীতি আৰু আনহাতে হিটলাৰৰ উগ্ৰ জাতীয়তাবাদী নীতি এই দুয়োটাই ৰাজনৈতিক সন্ত্ৰাস বিয়পাই গ'ল। এতিয়া তাৰফলত মানুহৰ সভ্যতাই এহাতৰ হ'ল দুহাতে কাঢ়িবলগীয়া হৈছে।"[১১]

নগেন শইকীয়াই 'ধূলিৰ ধেমালি'ত প্ৰসঙ্গক্ৰমে বিভিন্ন ঠাইত ১৯৬০ চনৰ ভাৰত আন্দোলনৰ বিষয়টি উত্থাপন কৰিছে। "১৯৬০ চন অসমবাসীৰ বাবে এটা দুঃস্বপ্নৰ সময়" বুলি অভিহিত কৰি নগেন শইকীয়া অসম আন্দোলনৰ সময়ত অসমীয়া আৰু বঙালী সকলৰ মাজত হোৱা সংঘাটৰ জীৱন্ত বৰ্ণনা আত্মজীৱনীখনত দাঙি ধৰিছে।

তেওঁৰ অনুসৰি "অসমৰ ৰাজ্য ভাষা অসমীয়া হ'ব লাগে" বুলি দাবী উত্থাপন হোৱাৰ লগে লগে প্ৰথমে শ্বিলঙত এচাম বঙালীয়ে সমদলত "অসমীয়া ভাষা গাধৰ ভাষা" বুলি শ্লগান দিয়ে আৰু ইয়েই অসমৰ হিংসাৰ জুই জ্বলাই। এই সংঘাতৰ কৰুণ পৰিণতি হিচাপেই ৰঞ্জিৎ বৰপূজাৰী আৰু অনিল বৰাৰ দৰে প্ৰতিভাবান যুৱকৰ অকাল মৃত্যু হয় বুলি নগেন শইকীয়াই উল্লেখ কৰিছে। এই ক্ষেত্ৰতো তেওঁ প্ৰতক্ষ্যভাৱে এই হিংসা বিয়পোৱাত অধিক বৰঙনি যোগোৱা বুলি কলিকতীয়া সংবাদ মাধ্যমক দোষাৰোপ কৰিছে। অসমীয়া ভাষাক ৰাজ্যিক ভাষাৰ মৰ্যাদা প্ৰদানৰ বাবে আৰম্ভ হোৱা ভাষা আন্দোলনে জাতিগত সংঘৰ্ষৰ ৰূপ লোৱাৰ ফলত অসমীয়া জাতিৰে কিদৰে ক্ষতি হ'ল তাৰ বৰ্ণনা কৰি নগেন শইকীয়াই লিখিছে —

"অসমীয়া ভাষাক ৰাজ্যিক ভাষাৰ মৰ্যাদা দিয়াৰ এই আন্দোলনত হাইলাকান্দিৰ এঘাৰজন লোকে প্ৰাণ হেৰুৱালে অসমীয়াত বিৰোধী শক্তিৰ হাতত। এই আন্দোলনৰ ফলত অসমীয়া মানুহেই অধিক ক্ষতিগ্ৰস্ত হ'ল কেইবাফালৰ পৰাও। প্ৰথম কথা কলিকতাৰ শক্তিশালী প্ৰচাৰ মাধ্যমে অসমীয়া মানুহক হিংস্ৰ আৰু দুৰ্দান্ত ৰূপত সমগ্ৰ ভাৰতবৰ্ষতে দাঙি ধৰিলে, আনহাতে থলুৱা ভাষা-ভাষীসকলৰ মনৰ মাজতো অসমীয়া মানুহৰ বিপক্ষে এটা বিদ্বেষৰ মনোভাৱ জগাই তুলিলে।"[১২]

আত্মজীৱনীৰ ঘটনাৱলীৰ মাজত ঠাই পোৱা তদানীন্তন সময়ৰ এক অন্যতম ঘটনা হ'ল চীন-ভাৰতৰ ১৯৬২ চনৰ যুদ্ধৰ ঘটনা। নগেন শইকীয়াই 'ধূলিৰ ধেমালি'ত ১৯৬২ চনৰ চীন-ভাৰতৰ যুদ্ধ সম্পৰ্কে উল্লেখ কৰি কিদৰে চীনে মেকমোহন লাইন অতিক্ৰম কৰি অৰুণাচল পাইছিলহি আৰু এই যুদ্ধৰ ভয়ত তেজপুৰৰ পগলা ফাটেকৰ দুৱাৰ কিদৰে মুকলি কৰি দিয়া হৈছিল সেই কথাৰ ব্যাখ্যা কৰিছে। তদুপৰি এই যুদ্ধত অসমৰ অনিশ্চিত ভৱিষ্যতৰ সময়ত কিদৰে তদানীন্তন প্ৰধানমন্ত্ৰী জৱাহৰলাল নেহৰুৱে দায়সৰা মন্তব্য কৰি "মাই হার্ট গ'জ উইথ আছাম" বুলি কৈছিল সেই সম্পৰ্কেও উল্লেখ কৰিছে। ইয়াৰ উপৰি চীন-ভাৰতৰ যুদ্ধৰ সময়তো কমিউনিষ্ট পার্টীয়ে কিদৰে চীনকেই নিৰ্ল্লজভাৱে সমৰ্থন কৰিছে তাৰ ব্যাখ্যা কৰি কমিউনিষ্ট আদৰ্শক কঠোৰভাৱে সমালোচনা কৰিছে। এই সমূহ ৰাজনৈতিক ঘটনা পৰিঘটনাৰ উপৰিও নগেন শইকীয়াই আত্মজীৱনীখনৰ দশম অধ্যায়ত ১৯৬২ চনত দেশজুৰি আৰম্ভ হোৱা তৃতীয় পৰ্যায়ৰ লোকসভা নিৰ্বাচন সম্পৰ্কেও উল্লেখ কৰিছে।

উল্লেখিত এনে নানান ৰাজনৈতিক পৰিঘটনাই লেখক গৰাকীৰ ৰাজনৈতিক দৃষ্টিভঙ্গী আৰু ৰাজনৈতিক প্ৰেক্ষাপটৰ প্ৰতি থকা সচেতনতা প্ৰকাশৰ লগতে উক্ত সময়চোৱাৰ অসম তথা ভাৰতবৰ্ষৰ ৰাজনৈতিক পৰিৱেশটোৰ এক আভাষ প্ৰদান কৰিবলৈ সক্ষম হৈছে ।

২.০০ উপসংহাৰ ঃ

আত্মজীৱনী হ'ল সাহিত্যৰ এক উল্লেখযোগ্য বিধা। ইয়াক যদিও এগৰাকী ব্যক্তিৰ জীৱনৰ স্বয়ংকৃত দলিল হিচাপে অভিহিত কৰা হয়, কিন্তু একোগৰাকী ব্যক্তিৰ ব্যক্তিগত জীৱন সম্পৰ্কীয় কথা-বতৰাৰ লগতে ই

সমসাময়িক সমাজ ব্যৱস্থাটোৰো বাস্তৱ প্ৰতিচ্ছবি দাঙি ধৰিবলৈ সক্ষম হয়। সেই দিশৰ পৰা "সাহিত্য সমাজৰ দাপোন" বোলা কথাষাৰৰ গুৰুত্ব প্ৰকৃতাৰ্থত প্ৰতিপাদিত হোৱা দেখা যায়। নগেন শইকীয়াৰ আত্মজীৱনী 'ধূলিৰ ধেমালি'লৈ লক্ষ্য কৰিলে দেখা যায় যে, এই আত্মজীৱনীখনেও লেখকৰ ব্যক্তিগত জীৱনৰ বিভিন্ন তথ্যৰ লগতে তেখেতৰ সমসাময়িক সময়ৰ অৰ্থনৈতিক, ৰাজনৈতিক, সামাজিক আদি বিভিন্ন ঘটনা প্ৰবাহক নিজৰ বুকুত সামৰি তদানীন্তন সময়ৰ এখন জীয়া ছবি ভৱিষ্যতৰ পাঠক সমাজলৈ সাঁচি ৰাখিছে। সেই দৃষ্টিকোণৰ পৰা 'ধূলিৰ ধেমালি' আত্মজীৱনীখনৰ সাহিত্যিক মূল্য অপৰিসীম। ❑

প্ৰসঙ্গসূত্ৰ ঃ

১. নগেন শইকীয়া ৰচনাৱলী, ধূলিৰ ধেমালি, পৃঃ ৭-৮
২. উল্লিখিত. পৃষ্ঠাঃ ৪৩
৩.উল্লিখিত. পৃষ্ঠাঃ ১০৩
৪.উল্লিখিত. পৃষ্ঠাঃ ২০
৫.উল্লিখিত. পৃষ্ঠাঃ ৯০
৬. নগেন শইকীয়া ৰচনাৱলী, ধূলিৰ ধেমালি, পৃঃ ৭-৮
৭. উল্লিখিত. পৃষ্ঠাঃ ৪৩
৮.উল্লিখিত. পৃষ্ঠাঃ ১০৩
৯.উল্লিখিত. পৃষ্ঠাঃ ২০
১০.উল্লিখিত. পৃষ্ঠাঃ ৯০
১১.উল্লিখিত. পৃষ্ঠাঃ ৯২
১২.উল্লিখিত. পৃষ্ঠাঃ ৯৭

গ্ৰন্থপঞ্জী

ক) মুখ্য উৎস ঃ বৰুৱা, বিৰেণ (সম্পা.). নগেন শইকীয়া ৰচনাৱলী. সাৰস্বত ন্যাস পৰিষদ. বৰ্ণমালা. ডিব্ৰুগড়. ২০১৭
খ) গৌণ উৎস ঃ কলিতা, ৰঞ্জন. গৱেষকৰ হাতপুথি. দ্বিতীয় প্ৰকাশ. লোকনাথ এণ্টাৰপ্ৰাইজ. গুৱাহাটী. ২০১৭ দাস, অমলচন্দ্ৰ (সম্পা.). অসমীয়া জীৱনী আৰু আত্মজীৱনী অধ্যয়ন. পূৰ্বাঞ্চল প্ৰকাশ. গুৱাহাটী. ২০১৮ বৰগোহাঞি, হোমেন (সম্পা.). অসমীয়া সাহিত্যৰ বুৰঞ্জী (ষষ্ঠ খণ্ড). আনন্দৰাম বৰুৱা ভাষা-কলা-সংস্কৃতি সংস্থা. গুৱাহাটী. ১৯৯৩
বৰা, জয়ন্ত কুমাৰ. সাহিত্যৰ নানা দিশ. বনলতা. গুৱাহাটী. ২০১০
বৰা, মহেন্দ্ৰ. গৱেষণা প্ৰণালী তত্ব. দ্বিতীয় সংস্কৰণ. বনলতা. গুৱাহাটী. ২০০৯
শৰ্মা, গোবিন্দ প্ৰসাদ. জীৱনী আৰু আত্মজীৱনী অসমীয়া আৰু প্ৰাশ্চাত্য. বনলতা. গুৱাহাটী. ২০০৯
শৰ্মা দলৈ, হৰিনাথ. অসমীয়া সাহিত্যৰ পূৰ্ণ ইতিহাস. পদ্মাপ্ৰিয়া লাইব্ৰেৰী. নলবাৰী. ২০০২
শৰ্মা, সত্যেন্দ্ৰনাথ. অসমীয়া সাহিত্যৰ সমীক্ষাত্মক ইতিবৃত্ত. সৌমাৰ প্ৰকাশ. গুৱাহাটী. ২০১৩

কবিতা

নৱবর্ষৰ অপেক্ষাত

নৱবর্ষৰ অপেক্ষাত
ধ্বংসস্তূপৰ মাজত
আজিও অধীৰ আগ্রহেৰে
বাট চাই আছো মই
কি কৈছা?
আকৌ এটি নৱবর্ষৰ আগমন হ'ল?
মানে? ঠাট্টা কৰিছা মোক?
কেনেকুৱা নৱবর্ষ? কেনেকুৱা পৰিবর্তন?
পৰিবর্তন হ'ব মাথো এটা নতুন বর্ষৰ
আৰু?.....আৰু কি পৰিবর্তন হ'ব?
আমাৰ মনবোৰৰ, আমাৰ লোভ-লালসাৰ জানো পৰিবর্তন হ'ব?
নে পৰিবর্তন হ'ব? অসমী আইৰ বুকু ৰাঙলী কৰা হাতবোৰৰ?
হিংসা-জর্জৰ পৰিস্থিতিৰ অৱসান হ'বনে?
নাৰীৰ বাবে মুক্ত বিচৰণ সম্ভৱ হ'বনে?
কি কৈছে? সূৰুযৰ মৃত্যু হৈছিল কেতিয়া?
এৰা, ঠিকেই কৈছা কিন্তু যেতিয়াৰ পৰাই
হত্যা, হিংসা, বলাৎকাৰীৰ বীজাণু অসমী আইৰ
চোতালত জনমিল, সুৰুজৰ মৃত্যু হৈছিল তেতিয়াই।
আজি সূৰুযে দিব পাৰিবনে এজাক ক্ষুধার্ত শিশুক
এমুঠি সপোন? দিব পাৰিবনে সোণালী শৈশৱ?
যদি নোৱাৰে তেন্তে এনে সূৰুজৰ মূল্যই বা কিমান?
সেয়ে বন্ধু, নক'বা মোক নৱবর্ষক আদৰাৰ কথা
আদৰিবই লাগে যদি শান্তিক আদৰা
সম্প্রীতিক আদৰা
মনৰ পৰা হিংসা, ব্যভিচাৰ, দূর্নীতিবোৰ মচি
মিলনৰ এনাজৰীডাল পুনৰ গোঁথা।
পাৰা যদি আহা সকলো জাতি-ধর্ম নির্বিশেষে
অসমী আইৰ চকুপানী মচি
এটি ন-সূৰুজক আদৰো
সঁচা অর্থত
এটি নৱবর্ষক আদৰো। ❑

ড° ৰাজীৱ শইকীয়া

ভাৰপ্রাপ্ত পৰীক্ষা সচিব
অসম ৰাষ্ট্রভাষা প্রচাৰ সমিতি
ৰূপনগৰ, গুৱাহাটী-৩২
ম'বাইল ঃ ৭০০২২৭২৮০৫

उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ और विश्वनाथ चारिआलि राष्ट्रभाषा प्रबोध विद्यालय परिचालना समिति के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित संगोष्ठी में कई हिंदी शिक्षकों को सम्मानित किया गया। प्रशस्ति पत्र के साथ शिक्षक गण।

POSTAL REGISTRATION NO. GH/127/2022-24 ❖ Date of Publication : 31st March, 2023 ❖ RNI No. ASSBIL/2009/31008

असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गुवाहाटी

संपादकीय कार्यालय :

प्रधान संपादक, द्विभाषी राष्ट्रसेवक, असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, सेवा मंदिर पथ, रूपनगर, गुवाहाटी-781032

मो. 9101541395 / 9101541380, ई-मेल : rastrasewak51@gmail.com